ISSN : 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का
समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल

वर्ष 22 | अंक 1 | जून 2024

www.mpissr.org

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

संरक्षक

प्रोफेसर गोपालकृष्ण शर्मा

सम्पादक

प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक

डॉ. आशीष भट्ट

डॉ. सुदीप मिश्र

सलाहकार मण्डल

प्रोफेसर अनिल कुमार वर्मा

समाज एवं राजनीति अध्ययन केन्द्र, कानपुर (उ.प्र.)

प्रोफेसर बदरीनारायण

गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रोफेसर राम शंकर

पं. एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

प्रोफेसर संजय लोढ़ा

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर संजीव कुमार शर्मा

चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

प्रोफेसर हिमांशु रॉय

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गणेश कावडिया

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

प्रोफेसर अरुण चतुर्वेदी

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर उत्तमसिंह चौहान

मध्य प्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रोफेसर सन्दीप जोशी

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

वर्ष 22 जून 2024 अंक 1

सम्पादक
प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक
डॉ. आशीष भट्ट
डॉ. सुदीप मिश्र

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
(भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार
एवं उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन का स्वायत्त शोध संस्थान)
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन द्वारा प्रकाशित ***मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल*** अन्तर्विषयक प्रकृति का समीक्षीत अर्द्धवार्षिक जर्नल है। जर्नल के प्रकाशन का उद्देश्य समाज विज्ञानों में अध्ययन एवं अनुसन्धान को बढ़ावा देना तथा समसामयिक विषयों पर लेखकों एवं शोधार्थियों को लेखन एवं सन्दर्भ हेतु समुचित अवसर प्रदान करना है।

यह जर्नल यूजीसी-कन्सोर्टियम फॉर एकेडमिक एण्ड रिसर्च एथिक्स - समूह-एक (UGC-CARE - Group-I) में सूचीबद्ध है।

समाज विज्ञानियों एवं शोधार्थियों से भारतीय एवं क्षेत्रीय सन्दर्भों पर सम-सामयिक विषयों यथा - सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, विकासात्मक, प्रशासनिक मुद्दों, समस्याओं एवं प्रक्रियाओं पर शोधपरक आलेख, पुस्तक समीक्षा आदि आमन्त्रित हैं।

निदेशक
म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)
दूरभाष - (0734) 2510978
e-mail: mpissrhindijournal@gmail.com, mailboxmpissr@gmail.com
web: mpissr.org

जर्नल में प्रकाशित शोध आलेखों में प्रस्तुत किये गये तथा व्यक्त किये गये विचार और टिप्पणियाँ सन्दर्भित लेखकों की हैं। इन्हें सम्पादक अथवा संस्थान के विचारों के प्रतिनिधित्व के रूप में नहीं लिया जाना चाहिये।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक		प्रति अंक	
संस्थागत	रु. 400.00	संस्थागत	रु. 200.00
व्यक्तिगत	रु. 300.00	व्यक्तिगत	रु. 150.00

जर्नल के प्रकाशन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद् (शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार) के प्रति संस्थान आभार व्यक्त करता है।

UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)

वर्ष 22 जून 2024 अंक 1

भारतीय राजनीति में बहुजन समाज पार्टी का योगदान :
उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में एक आलोचनात्मक अध्ययन 1
- रूपेश रंजन

मतदान व्यवहार और भारत में चुनावी अध्ययन का विकास : सैद्धान्तिक विश्लेषण 13
- राकेश कुमार एवं सिद्धार्थ मुखर्जी

अर्थशास्त्र और भारतीय ज्ञान परम्परा : एक सिंहावलोकन 25
- नीता तपन

प्राचीन धर्मग्रन्थों में भारत के भौगोलिकता की अवधारणा :
महाभारत एवं विष्णुपुराण के विशेष सन्दर्भ में 33
- संगीत कुमार रागी

सामाजिक समावेशन हेतु बहुसांस्कृतिक शिक्षा 48
- अनामिका यादव एवं शिरीष पाल सिंह

बच्चों की घरेलू भाषा और शिक्षक : एक समीक्षा 61
- छाया राजोरा

लैंगिक भूमिकाएँ, खाद्य व्यवहार एवं महिला स्वास्थ्य :
एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 76
- सौम्या पांडे

भारतीय समाज एवं संस्कृति : एक दृष्टि
(असहमति की बहुलता के विशेष सन्दर्भों में) 85
- पुनीत कुमार

भारत में शहरीकरण व औद्योगीकरण के कारण कृषि भूमि का ह्रास
तथा कृषक समाज पर पड़ने वाले इसके प्रभाव का अध्ययन 96
- ऋतु रानी

प्रकृति की संरक्षक एवं पूजक बैगा जनजाति : मध्य प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में **105**
- नूतन केवट एवं रंजू हासिनी साह

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जनजातीय भाषाओं की दशा और दिशा **115**
- मनोहर भी. येरकलवार

दुर्ग-भिलाई शहरी क्षेत्र में बाँस से निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करने वाली महिलाओं की आय का अध्ययन **124**
- वन्दना धुर्वे एवं चन्द्रिका नाथवानी

अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन **135**
- शिव नन्दन सिंह, नीतू पटेल एवं गौरव राव

भारत में सड़क दुर्घटनाएँ : एक सामाजिक समस्या **148**
- हसमुख पांचाल

कृषि पर्यटन : ग्रामीण विकास एवं पर्यटन का एक उभरता क्षेत्र **160**
- आसीन खाँ एवं अनिल कुमार यादव

कार्ययोजित महिलाओं के कार्य एवं परिवार में असन्तुलन के कारक : विद्यालयीन अध्यापिकाओं पर एक अध्ययन **172**
- संजय कुमार एवं पंकज सिंह

भारतीय नारी सशक्तीकरण में डॉ. अम्बेडकर का अतुलनीय योगदान **185**
- अनिता कुमारी

अठारहवीं शताब्दी के दौरान मेवात में कृषि उत्पादन प्रणाली : अरसत्ता दस्तावेजों पर आधारित **194**
- पूजा साहू

पुस्तक समीक्षा

भाषा का बुनियादी ताना-बाना : एक संकलन (हृदयकान्त दीवान तथा रजनी द्विवेदी (सम्पा.)) **207**
- सुमित गंगवार

प्रारम्भिक शिक्षा : व्यक्तित्व विकास के विविध चरण (आशुतोष दुबे (सम्पा.)) **218**
- प्रिया जौहरी

नीला कॉर्नफ्लॉवर (वीरेन्द्र प्रताप यादव) **224**
- अमित राय

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 1-12)
UGC-CARE (Group-I)

भारतीय राजनीति में बहुजन समाज पार्टी का योगदान : उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में एक आलोचनात्मक अध्ययन

रूपेश रंजन*

भारतीय राजनीति के लिए वर्ष 2014 में हुआ 16वीं लोकसभा का चुनाव परिवर्तनकारी सिद्ध हुआ। इस चुनाव में 1984 के बाद पहली बार किसी पार्टी को पूर्ण बहुमत मिला और यह सम्भव किया नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी ने। इस चुनाव में भाजपा को अकेले 282 सीटों पर जीत मिली थी। पार्टी की इस अप्रत्याशित सफलता में सबसे बड़ा योगदान उत्तर प्रदेश का रहा। राज्य की 80 लोकसभा सीटों में से भाजपा को 71 सीटों पर जीत मिली जबकि दो सीट इसकी सहयोगी अपना दल (सोनेलाल) के खाते में गयी। वर्ष 2014 में शुरू हुआ भाजपा का विजय रथ 2019 के लोकसभा और 2017 और 2022 के उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव में भी जारी रहा। उत्तर प्रदेश में भाजपा के मजबूत होने के बाद वैसे तो नुकसान वहाँ की सभी विपक्षी पार्टियों का हुआ है लेकिन सबसे ज्यादा प्रभावित बहुजन समाज पार्टी हुई है। वर्ष 2007 के विधानसभा चुनाव में मायावती के नेतृत्व में 206 सीटें जीतकर पूर्ण बहुमत की सरकार बनाने वाली

*शोधार्थी, सेंटर फॉर पोलिटिकल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail: rupesh.ranjan108@gmail.com

बसपा का चुनावी प्रदर्शन उसके बाद से लगातार खराब होता गया है। वर्ष 2012 के विधानसभा चुनाव में समाजवादी पार्टी के द्वारा हारकर सत्ता से बाहर होने के बाद से बसपा को 2017 और 2022 के विधानसभा और 2014 तथा 2019 के लोकसभा चुनाव में हार का सामना करना पड़ा है। प्रस्तुत आलेख उत्तर प्रदेश को केन्द्र में रखकर इस बात को समझने का प्रयास करता है कि आखिर किन कारणों से बहुजन समाज पार्टी की लगातार हार हो रही है, पार्टी किस प्रकार की आन्तरिक और बाहरी चुनौतियों का सामना कर रही है, और राज्य की राजनीति में बसपा का क्या भविष्य हो सकता है? इस आलेख को अन्वेषणात्मक विधि के माध्यम से लिखा गया है। इसके साथ ही 2022 के विधानसभा चुनाव से पहले लेखक ने उत्तर प्रदेश में गुणात्मक शोध प्रविधि के माध्यम से डाटा एकत्रित किया था उसका भी उपयोग इस आलेख में किया गया है।

बीज शब्द - बहुजन समाज पार्टी, जाति, भाजपा, हिन्दुत्व, सामाजिक न्याय, साम्प्रदायिकता।

उत्तर प्रदेश की राजनीति में बहुजन समाज पार्टी का उदय

वर्ष 1947 में भारत की आजादी के बाद पश्चिम के ज्यादातर राजनीतिक पंडितों ने यह टिप्पणी की कि भारत में लोकतन्त्र नहीं चल सकता है। उनके अनुसार किसी भी देश में लोकतन्त्र के काम करने के लिए शिक्षा, आर्थिक विकास जैसी बुनियादी आधारों का होना आवश्यक है (लिपसेट, 1959)। चूँकि भारत में स्वतन्त्रता के समय इन कारणों का अभाव था इसलिए यहाँ इस बात की आशंका व्यक्त की गई थी कि लोकतन्त्र चरमरा जायेगा। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ, तमाम चुनौतियों के बावजूद कांग्रेस के नेतृत्व मे लोकतन्त्र को संस्थागत रूप दिए जाने का काम किया जाने लगा। स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस पार्टी देश में शासन करने वाली पार्टी बनकर उभरी और केन्द्र और राज्यों में उसकी सरकार बनी (कोठारी, 1964)। 1950 के दशक में जहाँ दक्षिण भारत के राज्यों में कांग्रेस पार्टी को भाषा और वैचारिक स्तर पर चुनौती मिलनी शुरू हो गई थी, जबकि हिन्दी भाषी राज्यों में कांग्रेस पार्टी 1947 से 1989 तक लगभग अजेय बनी रही।[1] कांग्रेस के शासनकाल में हिन्दी भाषी राज्यों की राजनीति रूढ़ीवादी थी और उत्तर प्रदेश इस रूढ़ीवादी राजनीति का गढ़ था। प्रख्यात राजनीतिक वैज्ञानिक क्रिस्टोफ जेफ्रेलोट अपनी किताब 'इंडियाज साइलेंट रिवोल्यूशन : द राइज ऑफ लो कास्ट्स इन नॉर्थ इंडियन पोलिटिक्स' में लिखते हैं कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की रूढ़ीवादी राजनीति की तीन मुख्य वजह थीं। पहला, उत्तर प्रदेश कांग्रेस के ज्यादातर बड़े नेता - गोविन्द वल्लभ पन्त, कमलापति त्रिपाठी, चन्द्रभानू गुप्ता, सम्पूर्णानन्द, आदि जाति व्यवस्था को लेकर महात्मा गाँधी के विचार से प्रभावित थे। यह नेता जातिगत भेदभाव के खिलाफ तो थे लेकिन वर्ण व्यवस्था को समाज के आदर्श के रूप में देखते थे। इन्होंने कभी भी दलित-पिछड़े वर्ग से नेतृत्व पैदा करने की कोशिश नहीं की। दूसरी वजह यह थी कि आजादी के बाद कांग्रेस एक आन्दोलन से एक पार्टी के रूप में बदल हो गई थी और चुनाव जीतने के लिए स्थानीय स्तर पर तथाकथित सवर्ण जातियों से आने वाले जमींदार और प्रभावशाली लोगों पर निर्भर थी। तीसरी वजह यह थी कि कांग्रेस ने आजादी के बाद उत्तर प्रदेश के शहरी इलाकों में शुरू हो रही अम्बेडकरवादी राजनीति को पनपने का मौका ही नहीं दिया। कांग्रेस ने उत्तर

प्रदेश में अम्बेडकरवादी चेतना से प्रेरित नेता मसलन रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के बुद्धप्रिय मौर्या, और चेधिलाल साठी इत्यादि को अपनी पार्टी में शामिल कर किसी भी अन्य स्वायत्त राजनीति की सम्भावना को खत्म कर दिया (जेफ्रेलोट, 2003)।

कांग्रेस के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में चल रही इस रूढ़ीवादी राजनीति को 1980 के दशक में मजबूत वैचारिक चुनौती कांशीराम ने दी।[2] कांशीराम का जन्म 15 मार्च 1934 को पंजाब के रोपड़ जिले (अब रूपनगर) के पिर्थिपुर बंगा गाँव में एक निम्न-मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद कांशीराम को पूना स्थित भारत सरकार के रक्षा संयन्त्र में अच्छी नौकरी मिल गई। यहाँ नौकरी करने के दौरान ही कांशीराम ने दलितों के साथ होने वाले भेदभाव को बहुत करीब से देखा और अपना जीवन समाज के वंचित-शोषित वर्गों के उत्थान के लिए समर्पित कर दिया। कांशीराम, भीमराव अम्बेडकर की इस बात से प्रभावित थे कि राजनीतिक सत्ता हासिल करके ही समाज के शोषित वर्गों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाया जा सकता है। राजनीतिक सत्ता को उन्होंने वो चाबी कहा जो दलितों और पिछड़ों के लिए बन्द हर ताले को खोल सकती है (नारायण, 2014)। कांशीराम एक कुशल रणनीतिकार थे। वह इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि स्वतन्त्रता आजादी के बाद से लगातार तथाकथित सवर्ण जातियों के शासन ने अम्बेडकरवादी चेतना को कमजोर किया है। इसलिए दलितों और पिछड़ों की स्वायत्त राजनीति शुरू करने से पहले उन्होंने इस वर्ग में सामाजिक चेतना जगाने का निश्चय किया। कांशीराम स्वयं एक सरकारी कर्मचारी थे, अत: उन्होंने सबसे पहले दलित और आदिवासी समाज से आने वाले उन लोगों तक पहुँचने की योजना बनाई जिन्होंने संवैधानिक अधिकारों का इस्तेमाल कर अपनी आर्थिक स्थिति को कुछ हद तक सही कर लिया था। कांशीराम ने इसी बात को ध्यान में रख कर 1971 में पिछड़े, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदाय से आने वाले सरकारी कर्मचारियों का संगठन बनाया।। इस संगठन को बनाने के बाद कांशीराम ने देश भर का दौरा करके इन समाज से आने वाले लोगों को अपने साथ जोड़ने का काम किया। इस संगठन की सफलता को देखते हुए कांशीराम ने इसे 1978 में राष्ट्रीय स्तर पर ले जाने का निश्चय किया और उन्होंने बामसेफ (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटीज कम्युनिटीज एम्प्लाइज फेडरेशन) की स्थापना की। बामसेफ का ध्येय था 'समाज को वापस देना'। बद्री नारायण अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि बहुत जल्द बामसेफ एक बड़ा संगठन बन गया और इसके करीब दो लाख सदस्य हो गये थे।। बामसेफ का पहला राष्ट्रीय अधिवेशन 2-4 दिसम्बर 1979 को नागपुर में हुआ, जहाँ कांशीराम ने इसे एक आन्दोलन बताया जिसका मकसद वंचितों-शोषितों को उनका अधिकार दिलाना था ताकि वो ब्राह्मणवादी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती दे सकें। चूँकि बामसेफ के ज्यादातर सदस्य सरकारी कर्मचारी थे इसलिए वह व्यस्था के खिलाफ न तो खुल कर प्रदर्शन कर सकते थे और न ही नौकरी में रहते हुए चुनाव लड़ सकते थे, इसलिए कांशीराम ने इसे एक प्रबुद्ध मंडल के रूप में उपयोग करने का निर्णय किया।

कांशीराम ने बामसेफ के बाद एक और संगठन बनाने का निर्णय किया जो अपने कार्यों में ज्यादा राजनीतिक हो, और इसी सोच के साथ उन्होंने 6 दिसम्बर 1981 को दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (डीएस4) बनाया। यह संगठन पूर्ण रूप से तो एक राजनीतिक दल नहीं था परन्तु इसके कार्य बामसेफ से ज्यादा राजनीतिक थे। डीएस4 के बनने के बाद कांशीराम ने यह घोषणा की कि कोई भी कर्मचारी इसका सदस्य नहीं होगा और द्विज जातियों को छोड़ कर सभी इसके सदस्य हो सकते हैं। डीएस4 की कुल 10 शाखा बनाई गईं जिनमें जागृति मोर्चा, महिला और छात्र शाखा महत्वपूर्ण थे। जागृति मोर्चा ने ग्रामीण इलाकों में सामाजिक चेतना को जगाने के लिए कई कार्यक्रम चलाये और दलित, अल्पसंख्यक, पिछड़े और आदिवासी समाज से आने वाले लोगों को अपने साथ जोड़ने के लिए ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया छोड़ बाकी सब हैं डीएस4।[3] समाज के वंचित-शोषित तबके तक अपनी बात को पहुँचाने के लिए डीएस4 के कार्यकर्ताओं ने 1983-84 में एक बड़ी साइकिल यात्रा निकाली। इस यात्रा के पहले जत्थे ने 6 दिसम्बर 1983 को कन्याकुमारी, दूसरे ने 18 दिसम्बर 1983 को कारगिल, तीसरे जत्थे ने 19 जनवरी 1984 को नागालैंड की राजधानी कोहिमा से और चौथे ने 22 जनवरी 1984 को गुजरात के पोरबन्दर से अपनी यात्रा शुरू की और 15 मार्च 1984 को दिल्ली के वोट क्लब मैदान में इन सभी जत्थों का एक महासम्मेलन हुआ जिसमें कांशीराम ने दलितों-पिछड़ों की स्वायत्त राजनीति का आह्वान किया (नारायण, 2014)।

1982 में जब कांशीराम दलितों, पिछड़ों को एकजुट करने में लगे हुए थे, उसी समय उन्होंने अपनी किताब 'चमचा युग' लिखी। इस किताब में उन्होंने कांग्रेस और महात्मा गाँधी की राजनीति की आलोचना करते हुए लिखा कि इनकी राजनीति की वजह से दलित और पिछड़े समाज से सिर्फ चमचे नेता ही पैदा हुए हैं। कांशीराम ने उस समय के बड़े दलित नेता बाबू जगजीवनराम, रामविलास पासवान आदि को चमचा कहते हुए लिखा कि यह लोग सिर्फ अपने निजी स्वार्थों के लिए सवर्ण जातियों के सिपहसालार बने रहे।

बामसेफ और उसके बाद डीएस4 की सफलता को देखने के बाद कांशीराम ने एक पूर्ण राजनीतिक दल शुरू करने का निश्चय किया और 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की। देश की बहुसंख्यक आबादी जिसे राजनीतिक रूप से कांशीराम ने बहुजन कहा उनके ऊपर कैसे अल्पसंख्यक सवर्णों का शासन है इसको समझाने के लिए कांशीराम प्रतीकात्मक रूप से कलम का इस्तेमाल करते थे। उनका कहना था कलम बहुजन की तरह है जबकि उसका ढक्कन उन सवर्ण पार्टियों की तरह है जो हमारे ऊपर शासन करते हैं (जेफ्रेलोट, 2003)। कांशीराम के नेतृत्व में बसपा की पूरी राजनीति प्रतिनिधित्व की थी। अपनी विचारधारा को सरल और सहज तरीके से लोगों तक पहुँचाने के लिए बसपा ने कई नारे गढ़े मसलन, जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी, वोट से लेंगे पीएम सीएम, आरक्षण से लेंगे एसपी डीएम। इस प्रकार के नारों ने दलित-पिछड़ी जातियों में राजनीतिक चेतना को जगाने का काम किया। 1980 के दौर में उत्तर प्रदेश में बसपा का उभार एक ऐसे समय में हुआ जब कांग्रेस का एक पार्टी के रूप में पतन होना शुरू हो गया था।

उसके 'विरोधाभासों का गठबन्धन' (ब्रास, 1980) जिसके तहत कांग्रेस पार्टी हिन्दी भाषी राज्यों में सवर्ण, दलित और अल्पसंख्यक समुदायों को अपने पाले में रखती थी वह टूटने लगा था। राम मन्दिर आन्दोलन की वजह से सवर्ण जातियाँ भाजपा के पाले में चली गईं, वहीं अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय ने मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी का दामन थाम लिया, वहीं दलित समुदाय ने कांग्रेस के वोट बैंक बनने की जगह कांशीराम के नेतृत्व में खुद को स्वायत्त बहुजन राजनीति के अगुआ के तौर पर देखना शुरू कर दिया था। एक पार्टी के रूप में बसपा के लिए उत्तर प्रदेश में पहली परीक्षा 1989 के विधानसभा चुनाव के रूप में आई। बसपा ने इस चुनाव में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए 9.41 प्रतिशत मत के साथ 13 सीटों पर जीत हासिल की। वहीं, उसी वर्ष हुए लोकसभा के चुनाव में बसपा को उत्तर प्रदेश में 9.32 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। इसी लोकसभा चुनाव में मायावती पहली बार बिजनौर से जीत कर सांसद बनी थीं।[4] बसपा के लिए बहुजन राजनीति के लिए उत्तर प्रदेश में सबसे बड़ा मौका 1993 के विधानसभा चुनाव के बाद आया, जब इसने समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर भारतीय जनता पार्टी के विजयी रथ को रोक दिया। 1984 में अस्तित्व में आयी पार्टी एक दशक से भी कम समय में भारत के सबसे बड़े राज्य में सत्ता की साझीदार बन गयी थी। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी का गठबन्धन 1993 के विधानसभा चुनाव में भाजपा को रोकने में तो कामयाब हो गया था लेकिन आन्तरिक कलह की वजह यह गठबन्धन की सरकार दो वर्ष में ही गिर गयी।[5] समाजवादी पार्टी से गठबन्धन टूटने के बाद कांशीराम ने भाजपा के सहयोग से सरकार बनाने का फैसला किया और 3 जून 1995 को मायावती, एक दलित महिला, पहली बार जनसंख्या के हिसाब से देश के सबसे बड़े राज्य की मुख्यमन्त्री बनीं। मायावती के मुख्यमन्त्री बनने को उस वक्त के प्रधानमन्त्री पी. वी. नरसिंहा राव ने 'लोकतन्त्र का चमत्कार' कहा था।

तालिका 1

उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव में बसपा का प्रदर्शन

वर्ष	सीट जीतीं	मत प्रतिशत
1989	13	9.41
1991	12	9.44
1993	67	11.12
1996	67	19.64
2002	98	23.06
2007	206	30.43
2012	80	25.91
2017	19	22.23
2022	1	12.88

स्रोत - भारत का निर्वाचन आयोग

तालिका 2
उत्तर प्रदेश के लोकसभा चुनाव में बसपा का प्रदर्शन

वर्ष	सीट जीतीं	मत प्रतिशत
1989	2	9.32
1991	1	8.7
1996	6	20.61
1998	4	20.91
1999	14	22.08
2004	19	24.67
2009	20	27.42
2014	0	19.77
2019	10	19.43

स्रोत- भारत का निर्वाचन आयोग

उत्तर प्रदेश में बसपा का कुशल शासन

1995 से 2012 तक मायावती चार बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमन्त्री रहीं। इनमें से तीन बार 1995, 1997, और 2002 में भाजपा के सहयोग से जबकि 2007 में बसपा ने 206 सीट जीत कर पूर्ण बहुमत के साथ अपने दम पर सरकार बनायी थी। उत्तर प्रदेश की मुख्यमन्त्री रहते हुए मायावती ने कई बेहतरीन प्रशासनिक काम किये। इनमें सबसे प्रमुख काम था सफलतापूर्वक अम्बेडकर ग्राम योजना को लागू करना। इस योजना के तहत दलितों तक सड़क, पानी, बिजली, विद्यालय जैसी मूलभूत चीजों को पहुँचाया गया।[6] इसके अलावा मायावती ने मुख्यमन्त्री रहते हुए महामाया गरीब आर्थिक मदद योजना, महामाया गरीब बालिका मदद योजना, सावित्रीबाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना, निवेश मित्र, निजी क्षेत्रों में 30 प्रतिशत आरक्षण जैसी प्रगतिशील योजनाओं को लागू किया (राहिल, 2018)। मुख्यमन्त्री रहते हुए मायावती के शासनकाल की सबसे बड़ी विशेषता थी उत्तर प्रदेश में सजग कानून व्यवस्था को बनाये रखना। अपने शासनकाल के दौरान मायावती उत्तर प्रदेश में सामाजिक सौहार्द को कायम रखने में कामयाब रहीं। हालाँकि इस बात पर बहुत कम चर्चा होती है लेकिन यह सत्य है कि उत्तर प्रदेश में रामजन्मभूमि आन्दोलन के बाद से कोई भी साम्प्रदायिक दंगा मायावती की सरकार में नहीं हुआ। चाहे 2006 का मऊ-गोरखपुर दंगा हो या 2013 का मुजफ्फरनगर दंगा, यह सभी दंगे समाजवादी पार्टी के शासनकाल में हुए (पाई एवं कुमार, 2018)। 2022 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के दौरान अपने क्षेत्र कार्य के दौरान प्रयागराज निवासी और दिल्ली के जामिया मिल्लिया इस्लामिया से पढाई करने वाले अरुण सिंह यादव ने बताया कि उत्तर प्रदेश में असामाजिक तत्वों पर सबसे पहले कार्यवाही मायावती की सरकार में ही हुई थी। समाजशास्त्री विवेक कुमार अपनी पुस्तक 'कास्ट एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया : ए पर्सपेक्टिव फ्रॉम बिलो' में लिखते हैं कि बसपा और मायावती की सरकार ने इस मिथ्या को भी तोड़ने का काम किया कि सदियों से वंचित-शोषित लोग शासन करने के योग्य

नहीं होते हैं। बसपा की सरकार ने यह दिखाया कि शासन करने का अधिकार कुछ लोगों का ही नहीं होता है (कुमार वी., 2014)।

सिर्फ राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक लोकतन्त्र पर भी जोर

उत्तर प्रदेश में बसपा की कार्य प्रणाली ने राजनीतिक के साथ-साथ सामाजिक लोकतन्त्र को भी मजबूती देने का काम किया। बसपा को राजनीतिक विद्वानों के द्वारा अमूमन 'दलित पार्टी' (पाई, 2002) कहकर सम्बोधित किया जाता है। जबकि सच्चाई यह है कि बसपा की राजनीति सिर्फ दलितों की नहीं थी। कांशीराम की बहुजन राजनीति में दलित, पिछड़े, आदिवासी, अल्पसंख्यक सभी आते थे। कांशीराम दलितों के साथ-साथ सभी तबकों के प्रतिनिधित्व के हिमायती थे, इसीलिए बसपा की स्थापना के एक वर्ष बाद ही 1985 में देश की संसद के सामने उन्होंने मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू करने को लेकर एक बड़ा जेल-भरो आन्दोलन किया था।

उत्तर प्रदेश की मौजूदा राजनीति को अगर हम देखें तो पता चलता है कि अब यहाँ की राजनीति में छोटे-छोटे दल बड़ी संख्या में उभर रहे हैं जिन्हें नजर अन्दाज करना बड़ी पार्टियों के लिए सम्भव नहीं है। इन सभी पार्टियों का अपना-अपना प्रभाव क्षेत्र है। इन सभी छोटी-छोटी पार्टियों के अति-पिछड़े समाज से आने वाले नेताओं में एक बात सामान्य है कि सभी नेता कांशीराम की पाठशाला से निकल कर सामने आए हैं। सुहल्देव भारतीय समाज पार्टी के ओमप्रकाश राजभर, निषाद पार्टी के संजय निषाद, दारा सिंह चौहान, स्वामी प्रसाद मौर्य, महान दल के केशवदेव मौर्या, जनवादी सोशलिस्ट पार्टी के संजय चौहान आदि ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत बहुजन समाज पार्टी से की थी। समाज के दलित और अति-पिछड़े वर्गों में लोकतान्त्रिक चेतना को जगा कर, उनको अपने हक-अधिकार को संवैधानिक तरीके से हासिल करने के लिए प्रेरित करके बसपा ने भारतीय लोकतन्त्र को जमीनी स्तर पर मजबूती देने का काम किया और यह बसपा की राजनीति की सबसे बड़ी विरासत है।

बसपा का राजनीतिक पतन

भारतीय राजनीति में अतुलनीय योगदान देने के बावजूद बहुजन समाज पार्टी का लगातार राजनीतिक पतन हो रहा है। 2007 के बाद से पार्टी को उत्तर प्रदेश में तीन विधानसभा और दो लोकसभा चुनावों में हार का सामना करना पड़ा है। 2022 का विधानसभा चुनाव पार्टी के लिए भयावह रहा, इस चुनाव में न सिर्फ पार्टी को 403 में से सिर्फ एक सीट पर जीत मिली बल्कि उसके मत प्रतिशत में भी भारी गिरावट हुई।[7] 2007 के बाद से उत्तर प्रदेश में अगर बसपा की राजनीति को देखें तो उसमें कई खामियाँ नजर आती हैं। उत्तर प्रदेश में बसपा की मौजूदा राजनीति की सबसे बड़ी खामी यह है कि यह पार्टी रणनीतिक रूप से पूर्व के समय में कैद नजर आती है। 2007 से लेकर 2022 तक बसपा ने एक ही रणनीति के साथ

चुनाव लड़ा है। पार्टी खुद को बदलती राजनीतिक परिस्थिति के हिसाब से बदल नहीं पायी है। 2007 में बसपा की जीत का श्रेय मायावती के द्वारा बनाये गए सामाजिक समीकरण को दिया गया, जिसके तहत बसपा ने बड़े पैमाने पर सवर्णों, विशेषकर ब्राह्मणों को पार्टी से जोड़ने का प्रयास किया। उस चुनाव में बसपा स्वयं को बहुजन से सर्वजन की तरफ लेकर आयी। पार्टी ने कई ब्राह्मण महासम्मेलन किए और 'हाथी नहीं गणेश है, ब्रह्मा-विष्णु-महेश है' जैसे लोक-लुभावन नारे दिए। जब 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के नतीजे आए तो बसपा को 206 सीटों पर जीत मिली और मायावती ने तब से दलित, ब्राह्मण और कुछ हद तक मुस्लिम मतदाताओं को साथ लाने को अपनी जीत की गारंटी समझ ली। पार्टी तब से लेकर अभी तक इन्ही तीन समुदायों के इर्द-गिर्द अपना राजनीतिक समीकरण बना रही है। इसकी सबसे अच्छी बानगी हमें 2022 के विधानसभा चुनाव में बसपा द्वारा किये गए टिकट वितरण में दिखी। इस चुनाव में बसपा ने तथाकथित सवर्ण जातियों को 110 टिकट दिए, जिनमें 70 टिकट ब्राह्मण को, 28 राजपूत को, 10 बनिया और एक भूमिहार का टिकट शामिल थे। इसके अलावा बसपा ने 86 टिकट मुस्लिम समुदाय को दिये वहीं उत्तर प्रदेश की आबादी में लगभग 50 फीसदी की हिस्सेदारी रखने वाली पिछड़ी जातियों को बसपा ने सिर्फ 114 टिकट दिये। इन 114 टिकटो में भी ज्यादातर यादव, कुर्मी और लोधी जैसी किसानी करने वाली जातियों के हिस्से गयीं जबकि निषाद, पाल, बिन्द, केवट, गडेरिया, राजभर जैसी जातियों को बसपा ने बहुत कम टिकट दिये (कुमार ए., 2022)। चुनाव से पहले बसपा इस मुगालते में आ गयी कि उत्तर प्रदेश की योगी आदित्यनाथ की सरकार से ब्राह्मणों में नाराजगी है। बसपा का यह आकलन जमीनी हकीकत से पूरी तरह अलग था। चुनाव के दौरान बनारस, प्रयागराज, कानपुर और अम्बेडकर नगर में ब्राह्मण मतदाताओं से बात करने पर यह साफ पता चल रहा था कि वह भाजपा की सरकार से खुश हैं और उसे अपने पहले विकल्प के रूप में देखते हैं। वैसे भी राम जन्मभूमि आन्दोलन के बाद से उत्तर प्रदेश की सवर्ण जातियों ने भाजपा को ही अपनी पहली पार्टी के रूप में देखा है। यहाँ तक कि 2007 के उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव में भी सीएसडीएस-लोकनीति के आँकड़ों के अनुसार बसपा को सिर्फ 17 प्रतिशत ब्राह्मणों का मत प्राप्त हुआ था (कुमार एस., 2009)। बसपा से अधिक 19 प्रतिशत ब्राह्मणों का मत कांग्रेस को प्राप्त हुआ था। यह 17 प्रतिशत मत भी बसपा को इसलिए मिला था क्योंकि उस समय भाजपा उत्तर प्रदेश में राजनीतिक रूप से हाशिये पर थी और अपने नेतृत्व को लेकर काफी पसोपेश में थी। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व के बाद से हिन्दी भाषी राज्यों तथाकथित सवर्ण जातियों का लगभग एकमुश्त वोट भाजपा के साथ है लेकिन बसपा अभी तक दलित, ब्राह्मण और मुस्लिम का समीकरण बनाने की नाकाम कोशिश कर रही है। उत्तर प्रदेश में 2022 के विधानसभा चुनाव के दौरान क्षेत्रीय कार्य करते हुए यह बात स्पष्ट तौर पर समझ में आ रही थी कि मुस्लिम मतदाता तमाम शिकायतों के बावजूद समाजवादी पार्टी के पक्ष में लामबन्द थे क्योंकि उनको समाजवादी पार्टी ही भाजपा को चुनौती देती हुई दिख रही थी। इस चुनाव में समाजवादी पार्टी के टिकट पर जीते हुए 111 विधायकों में से 32 विधायक

मुस्लिम थे (यादव, 2022)। राजनीतिक वैज्ञानिक ए.के. वर्मा के अनुसार पिछले एक-डेढ़ दशक में उत्तर प्रदेश में 'तीसरा राजनीतिक उभार' हुआ है जिसके तहत संख्या में छोटी जातियों में भी राजनीतिक चेतना आयी है और वो भी अपना राजनीतिक प्रतिनिधित्व लेने के लिए लामबन्द हो रहे हैं (वर्मा, 2016)। कांशीराम की राजनीति ने इन समूहों में इस राजनीतिक चेतना को जगाने में बड़ी भूमिका निभाई, लेकिन आज बसपा के पास इन जातियों को साथ में लाने की कोई प्रायोजित रणनीति नहीं दिखती है।

2022 के विधानसभा चुनाव में बसपा द्वारा सबसे ज्यादा टिकट पाने वाली पाँच जातियों में मुस्लिमों को एक अलग वर्ग में रखा गया है।

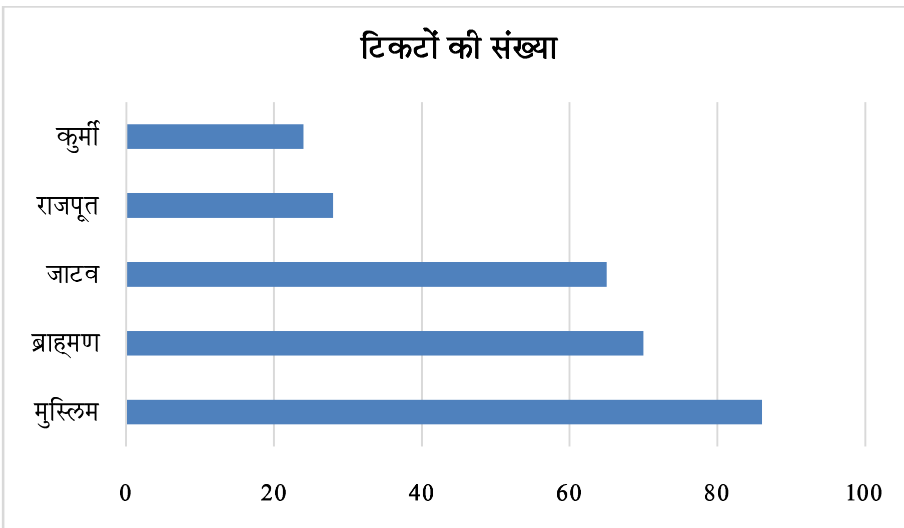

राजनीतिक आख्यानों में पिछड़ती बसपा

राजनीति में आख्यानों की बड़ी भूमिका होती है। पिछले एक दशक में बसपा राजनीतिक आख्यानों में लगातार पिछड़ती रही है। भारतीय राजनीति में चुनाव लड़ने के तरीकों में व्यापक बदलाव आ रहा है। अब पार्टियाँ चुनावी मैदान में कुछ निश्चित और स्पष्ट वादों के साथ जा रही हैं जिन्हें वो सत्ता में आने के बाद लागू करने की बात करती हैं।[8] चुनावी प्रचार के दौरान पार्टी के प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं के द्वारा इन गारंटियों को बार-बार दोहराया जाता है ताकि मतदाताओं तक इसकी पहुँच बन सके, लेकिन बसपा आज भी बिना घोषणापत्र के चुनाव लड़ती है। सत्ता में आने के बाद वो किस प्रकार की योजनाओं को लागू करेगी इसकी कोई बात नहीं करती हैं। बसपा के शुरूआती दिनों में कांशीराम ने एक रणनीति के तहत घोषणापत्र जारी नहीं करने का फैसला किया था। उस समय बसपा की राजनीति दलित-पिछड़ों के आत्मसम्मान और प्रतिनिधित्व की थी। लेकिन अब ऐसे दलित-पिछड़े समुदाय के

लोग जिनके पास राजनीतिक चेतना आ गयी है वो अब अपनी भौतिक जरूरतों को पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए वह बसपा को छोड़ उन पार्टियों के पास जा रहे हैं जो इनसे निश्चित भौतिक वादे कर रही हैं (पाई एवं कुमार, 2023)। इसके अलावा समय के साथ मायावती के नेतृत्व में भी स्पष्ट खामियाँ सामने आयी हैं। उनके नेतृत्व में पार्टी के कई कद्दावर नेताओं जैसे स्वामीप्रसाद मौर्य, नसीमुद्दीन सिद्दीकी, मिठाईलाल भारती, राम अचल राजभर, इन्द्रजीत सरोज ने या तो पार्टी छोड़ दी या फिर इन्हें निकाल दिया गया। इन सभी नेताओं ने मायावती पर पार्टी को नौकरशाही तरीके से चलाने और कार्यकर्ताओं को नजर अन्दाज करने का आरोप लगाया है। दरअसल बसपा भारतीय राजनीति की उन चन्द पार्टियों की तरह हो गई है जहाँ नेतृत्व परिवर्तन नहीं हो पाया है। अगर हम मौजूदा भारतीय राजनीति को देखें तो हमें यह पता चलता है कि वैसी पार्टियाँ जहाँ नया नेतृत्व आया है मसलन राष्ट्रीय जनता दल में तेजस्वी यादव, द्रमुक में एम.के. स्टालिन, समाजवादी पार्टी में अखिलेश यादव, आदि ज्यादा मजबूती के साथ जनता के बीच जा रही हैं। वहीं बहुजन समाज पार्टी में मायावती और जनता दल (युनाइटेड) में नितीश कुमार जैसे नेता अब अपनी राजनीतिक पारी के अन्त की ओर बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। हालाँकि अब मायावती ने अपने भतीजे आकाश आनन्द को राष्ट्रीय संयोजक बनाकर कुछ सन्देश देने की कोशिश की है। लेकिन अभी भी अगली पीढ़ी के नेतृत्व को लेकर कोई स्पष्टता नहीं दिखती है। आकाश आनन्द की भी अभी बसपा के समर्थकों में कोई व्यापक स्वीकार्यता नहीं है।

टिप्पणियाँ

1. 1967 के विधानसभा चुनाव के बाद उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, जैसे हिन्दी भाषी राज्यों में विपक्षी पार्टियों की एकता वाली संयुक्त विधायक दल की सरकार बनी थी। हालाँकि आन्तरिक कलह की वजह से यह सरकारें चल नहीं सकीं और कांग्रेस की पुन: वापसी हो गई। इसके अलावा आपातकाल के बाद 1977 से 1980 तक केन्द्र और हिन्दी भाषी राज्यों में जनता पार्टी की सरकार थी।
2. कांशीराम से पहले राम मनोहर लोहिया की समाजवादी राजनीति और चौधरी चरण सिंह की किसान राजनीति ने भी कांग्रेस को चुनौती पेश करने की कोशिश की मगर इन्हें अपेक्षाकृत सफलता नहीं मिली। जहाँ चरण सिंह की किसान राजनीति अहीर यानि यादव, जाट, गुर्जर और राजपूत जैसी जातियों को लुभाने की थी, वहीं लोहिया की समाजवादी राजनीति ने सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों की राजनीतिक पैरोकारी तो की लेकिन उत्तर प्रदेश के ज्यादातर समाजवादी नेता मसलन राज नारायण, प्रभु नारायण, चन्द्रशेखर आदि खुद तथाकथित सवर्ण जातियों से आते थे, इस वजह से कांग्रेस के शासनकाल में उत्तर प्रदेश में समाजवादी राजनीति की जड़ें मजबूत नहीं हो सकी। इसके उलट बिहार के कद्दावर समाजवादी नेता जैसे कर्पूरी ठाकुर, रामविलास पासवान, बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल आदि खुद पिछड़ी और दलित जातियों से आते थे जिसकी वजह से बिहार में समाजवादी राजनीति ने अपने अन्दर दलित और अति-पिछड़ों की राजनीति का समावेश किया, जबकि उत्तर प्रदेश में इस राजनीति का स्थान खाली रहा जिसे कांशीराम ने भरने का काम किया।
3. कांशीराम और बसपा को लेकर यह बातें कही जाती हैं कि उन्होंने 'तिलक, तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार' जैसे नारे दिए। हालाँकि इस बात का कोई भी लिखित प्रमाण नहीं है कि यह नारा कभी कांशीराम, मायावती या बसपा के आधिकारिक मंच से दिया गया हो।

4. 1989 के लोकसभा चुनाव में बसपा को तीन सीटों पर जीत मिली थी। मायावती के अलावा इसके उम्मीदवार उत्तर प्रदेश के ही आजमगढ़ और पंजाब के फिल्लौर से जीते थे। राष्ट्रीय स्तर पर इस चुनाव में बसपा को 2.1 प्रतिशत मत आए थे (स्रोत : भारत का निर्वाचन आयोग)।

5. समाजवादी पार्टी से समर्थन वापस लेने के लिए मायावती जब उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में बसपा के विधायकों के साथ बैठक कर रही थीं तभी समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ताओं ने उन पर हमला कर दिया था। उत्तर प्रदेश की राजन्ती में इसे 'गेस्ट हाउस काण्ड' के नाम से जाना जाता है। देखें : गेस्ट हाउस 'असाल्ट' : द 1995 इनफेमस इन्सीडेन्ट देट हेड टर्न्ड एसपी एंड बीएसपी बिटर फोस, इंडियन एक्सप्रेस, 14 जनवरी 2019।

6. अम्बेडकर ग्राम योजना की शुरूआत 1991 में भीमराव अम्बेडकर की जन्म शताब्दी के मौके पर मुलायम सिंह यादव की सरकार के द्वारा की गई थी। लेकिन इस योजना को बड़े पैमाने पर लागू करने का काम मायावती की सरकार ने किया। योजना के तहत ज्यादा दलित आबादी वाले गाँव का चयन करके वहाँ एक साल तक विशेष अनुदान देकर मूलभूत सुविधाओं को पहुँचाया गया था।

7. 2022 के उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव में बसपा को सिर्फ बलिया जिले के रसड़ा सीट पर जीत मिली थी। जहाँ 2017 के विधानसभा चुनाव में बसपा को 22.23 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे वहीं 2022 में यह घट कर 12.88 प्रतिशत हो गया।

8. 2015 के बिहार विधानसभा चुनाव के दौरान नीतीश कुमार और लालू यादव की महागठबन्धन ने बिहार की जनता से सात निश्चय लागू करने की बात की थी जिसके तहत बिहार के लोगों को नल-जल, पकी सड़क, नाली का निर्माण जैसे बातें शामिल थीं। 2023 के कर्नाटक विधानसभा चुनाव में भी कांग्रेस पार्टी ने वहाँ के मतदाताओं को पाँच गारंटी दी थीं। कांग्रेस की जीत में इन गारंटियों की व्यापक भूमिका थी। नवम्बर 2023 में मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, तेलंगाना और मिजोरम में विधानसभा चुनाव होने हैं यहाँ भी दोनों ही प्रमुख पार्टियों भाजपा और कांग्रेस द्वारा स्पष्ट और सटीक वादे जनता से किये जा रहे हैं।

सन्दर्भ

ब्रास, पॉल (1980), 'द पोलिटिसाइजेशन ऑफ द पेजेंट्री इन अ नार्थ इंडियन स्टेट', *द जर्नल ऑफ पेजेंट स्टडीज़.*

जफ्रेलोट, क्रिस्टोफ (2003), *इंडिया'ज़ साइलेंट रिवोल्यूशन : द राइज ऑफ द लो कास्ट इन नार्थ इंडियन पॉलिटिक्स,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

कुमार, अरविन्द (2022), 'बीएसपी गोइंग सोलो, बट टिकट डिस्ट्रीब्यूशन टेल्स अ डिफरेंट स्टोरी', *द प्रिंट,* 22 फरवरी

कुमार, विवेक (2014), *कास्ट एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया : अ पर्सपेक्टिव फ्रॉम बिलो,* ज्ञान पब्लिशिंग हाउस न्यू दिल्ली

कुमार, संजय (2009), 'मायावती ब्राह्मण कार्ड', *इंडिया टुडे,* 24 मार्च

कोठारी, रजनी (1964), 'द कांग्रेस 'सिस्टम' इन इंडिया', *एशियन सर्वे,* दिसम्बर

लिप्सेट, सीमौर मार्टिन (1959), 'सम सोशल रिक्वीजिट ऑफ डेमोक्रेसी : इकोनॉमिक डेवलपमेंट एंड पोलिटिकल लेजिटिमेसी', *द अमेरिकन पोलिटिकल साइंस रिव्यु,* 1 मार्च

नारायण, बद्री (2014), *कांशीराम : लीडर ऑफ द दलित,* पेंगुइन रैंडम हाउस, गुडगाँव

पाई, सुधा (2002), *दलित अस्सरसन एंड अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन : द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश,* सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली

पाई, सुधा एवं कुमार, सज्जन (2018), *एवरी डे कम्यूनलिस्म : रायट्स इन कंटेम्परेरी उत्तर प्रदेश,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

पाई, सुधा एवं कुमार, सज्जन (2023), *माया, मोदी, आजाद : दलित पॉलिटिक्स इन द टाइम ऑफ हिन्दुत्व,* हार्पर कॉलिंस, न्यू दिल्ली

राहिल, (2018), 'लिस्ट ऑफ टॉप, मेजर अचीवमेंट ऑफ मायावती एस यूपी चीफ मिनिस्टर', *द इंडियन वायर,* 5 सितम्बर (यादव, 2022)

वर्मा, ए.के. (2016), 'थर्ड डेमोक्रेटिक अपसर्ज इन उत्तर प्रदेश', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* दिसम्बर 31

यादव, इशिका (2022), 'उत्तर प्रदेश गेट्स 34 मुस्लिम एमलएस धिस टाइम : मोस्ट फ्रॉम द अखिलेश यादव पार्टी', *हिन्दुस्तान टाइम्स,* 13 मार्च

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 13-24)
UGC-CARE (Group-I)

मतदान व्यवहार और भारत में चुनावी अध्ययन का विकास : सैद्धान्तिक विश्लेषण

राकेश कुमार* एवं सिद्धार्थ मुखर्जी†

किसी भी लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में नियमित चुनाव का होना एक आम प्रक्रिया होती है। भारत के सन्दर्भ में भी यह पूरी तरह से सच है, जहाँ चुनाव नियमित रूप से होते रहते हैं। सरकार का संघीय रूप होने के कारण जहाँ चुनाव न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर सरकार चुनने के लिए होते हैं, बल्कि राज्य की विधानसभाओं के लिए भी नियमित रूप से चुनाव होते रहते हैं। 1992 में 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन के पश्चात् भारतीय लोकतन्त्र का विकेन्द्रीकरण हुआ है तथा अब स्थानीय स्तर पर भी पंचायतों, नगर पालिकाओं, जिला परिषद् इत्यादि के लिए चुनाव होते हैं। मतदान व्यवहार का अध्ययन इस बात की जाँच करता है कि लोग कैसे मतदान करते हैं, और वे मतदान पर कैसे निर्णय लेते हैं? इसमें विशिष्ट निर्धारकों की पहचान भी सम्मिलित है जो एक मतदाता को मतदान के विकल्प पर पहुँचने में मदद करते हैं। मतदान व्यवहार का अध्ययन हमें आम आदमी की जरूरतों और आकांक्षाओं से अवगत करवाता है। भारत में चुनावी अध्ययन की शुरूआत आजादी के बाद से ही हो गई थी परन्तु समय के साथ इसके विस्तार एवं अध्ययन पद्धति में अधिक विस्तार हुआ है। चुनावी अध्ययन को

*शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
E-mail: rickey48590@gmail.com
†सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
E-mail: butku9@gmail.com

अधिक वैज्ञानिक बनाया गया है। इस शोध पत्र में भारत में चुनावी अध्ययन के विकास क्रम को दर्शाया गया है जिसके लिए विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है।

बीज शब्द - मतदान व्यवहार, राजनीतिक व्यवहार, चुनाव अध्ययन, लोकनीति, राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन।

भूमिका

मतदान व्यवहार को राजनीति विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र के रूप में माना जाता है, जिसका अध्ययन वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है। परम्परावादी मुख्य रूप से संस्थानों, संगठनों आदि के व्यवहार और कार्यों के अध्ययन से सम्बन्धित थे। उन्होंने अन्य सामाजिक और भौतिक विज्ञानों से प्राप्त मॉडलों, तकनीकों, विधियों की सहायता से व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार का विश्लेषण करना शुरू किया। मतदान अथवा चुनावी व्यवहार न केवल राजनीतिक व्यवहार बल्कि राजनीतिक भागीदारी के साथ भी निकटता से जुड़ा हुआ है।

यहाँ यह समझना महत्यपूर्ण है कि राजनीतिक व्यवहार और राजनीतिक भागीदारी का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है जबकि चुनावी व्यवहार उनका एक हिस्सा है। राजनीतिक भागीदारी में राजनीतिक चर्चा, निर्णय लेने में भागीदारी आदि सम्मिलित हैं। राजनीतिक व्यवहार एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में होता है। यह सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास और ऐतिहासिक कारकों से प्रभावित होता है। लोकतन्त्र में चुनावी व्यवहार का अध्ययन और भी आवश्यक हो जाता है। मतदाताओं के व्यवहार को आकार देने में श्रव्य-दृश्य और प्रिंट मीडिया निश्चित रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मतदान व्यवहार के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण मुद्दा जाँच करना और पता लगाना है कि मतदाता किस प्रकार निर्णय लेता है कि वह क्यों, किसके लिए मतदान करने जा रहा है। ये पहलू कई कारकों पर निर्भर करते हैं जैसे मतदाता का दिमाग, विभिन्न प्रभाव, जिसके अधीन वह है, राजनीतिक घटनाओं पर उसकी अपनी धारणा, सरकार पर राय, उम्मीदवार के राजनीतिक दल का मूल्यांकन इत्यादि कारक मतदाताओं को निर्णय लेने में प्रभावित करते हैं। किसे वोट देना है, इस बारे में निर्णय का समय भी मतदाताओं की राजनीतिक प्रतिबद्धता और राजनीतिक दलों या उम्मीदवारों के साथ उनकी पहचान पर निर्भर करता है।

मतदान व्यवहार का अध्ययन सिर्फ मतदान के आँकड़ों को एकत्रित करना या चुनावी बदलाव की गणना करना नहीं होता है बल्कि इसका अर्थ इससे कही आगे व्यक्तिगत मनोविज्ञान, धारणा और भावनाओं का उनके वोट के निर्णय, उनकी राजनीतिक क्रिया और उसका चुनावों पर क्या प्रभाव है, उसका विश्लेषण है।

अध्ययन का उद्देश्य

मतदान व्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता का अध्ययन करना; भारत में मतदान व्यवहार और चुनावी राजनीति के अध्ययन के विकास का अध्ययन करना; एवं मतदान व्यवहार के अध्ययन में विकासशील समाज अध्ययन पीठ की भूमिका का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

इस शोध लेख का उद्देश्य भारत में मतदान व्यवहार और चुनावी राजनीति के अध्ययन के विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से सीएसडीएस-लोकनीति द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट्स का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त शोध पुस्तकें, पत्रिकाएँ, लेख, वेबसाइट इत्यादि का प्रयोग किया गया है तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है।

मतदान व्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता

भारतीय चुनाव आयोग द्वारा मात्रात्मक रूप से पूरी चुनावी प्रक्रिया की आधिकारिक जानकारी सार्वजानिक की जाती है, परन्तु चुनाव आयोग मतदान व्यवहार और मतदाताओं के दृष्टिकोण से सम्बन्धित किसी प्रकार का कोई आंकड़ा एकत्रित नहीं करता है न ही मतदान व्यवहार को समझने हेतु किसी प्रकार की कोई जानकारी सार्वजनिक की जाती है। चुनाव आयोग से हमें यह जानकारी नहीं मिलती है कि किस जाति और सामाजिक समूह का मतदान व्यवहार चुनाव में किस दल के प्रति सकारात्मक रहा है, और कौन सा दल किस जाति, वर्ग, आयु के लोगों को अधिक आकर्षित करने में सफल रहा है।

इसके अतिरिक्त भी चुनावों से सम्बन्धित कई प्रश्न होते हैं, जिनकी जानकारी चुनाव आयोग से प्राप्त नहीं होती है, उदहारण के लिए नौजवानों के मतदान व्यवहार तथा बुजुर्गों के मतदान व्यवहार में क्या अन्तर है? क्या महिलाएँ अपने मत का निर्णय स्वतन्त्र रूप से कर रही हैं या अपने पति या पिता के निर्णय पर वोट कर रही हैं? किसी विशेष चुनाव में कौन सा मुद्दा ज्यादा प्रभावी है तथा कौन सा कम प्रभावी है? चुनाव आयोग द्वारा उपलब्ध किए गए आंकड़ों के माध्यम से बहुत से प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते हैं, जैसे - क्या भारत के मुस्लिम समुदाय दक्षिणपन्थी पार्टियों को वोट देते हैं? या क्या वह सामूहिक एवं रणनीतिक रूप से किसी दल को हराने के लिए मतदान करते हैं? 'उच्च जातियाँ' पारम्परिक रूप से राष्ट्रीय दलों की समर्थक मानी जाती हैं, क्या वह किसी राज्य में अन्य क्षेत्रीय पार्टी को अधिक समर्थन करती हैं? दलितों तथा आदिवासियों का चुनावों में मतदान प्रतिरूप क्या रहता है? क्या एससी-एसटी की पहचान पर आधारित राजनीतिक दल इन समुदायों के वोटों को अपने पक्ष में कर पाए हैं? राष्ट्रीय स्तर पर और राज्यों के स्तर पर दलों के समर्थन का आधार क्या है तथा उनका मतदान किस वर्ग, जाति, व्यवसाय से सम्बन्धित है? इन सब प्रश्नों के उत्तर किसी भी लोकतन्त्र के सामाजिक अध्ययन के लिए बहुत आवश्यक हो जाते हैं। चुनाव

आयोग द्वारा इन प्रश्नों पर अध्ययन नहीं किया जाता है। मतदान व्यवहार के अध्ययन एवं चुनावी अध्ययनों में इन्हीं प्रश्नों के उत्तर को ढूँढने और समझने का प्रयास किया जाता है।

भारत में चुनावी अध्ययन का विकास

भारत में मतदान व्यवहार के अध्ययन और जाँच का उद्देश्य लगभग उसी प्रकार का है जिस उद्देश्य से मतदान व्यवहार का अन्य देशों में अध्ययन किया जाता है। जिसमें कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो किसी देश के लिए बाकी दुनिया से अलग होती हैं। भारत में चुनावी अध्ययन करने लिए हमें यह जानकारी होनी चाहिए की चुनावी अध्ययन के लिए हमें मुख्य आँकड़ों के लिए आधिकारिक स्रोत क्या है? तथा भारत के चुनाव आयोग ने चुनावी आँकड़ों को कब तक तथा किस प्रकार से संगृहीत किया हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् हुए सभी लोकसभा तथा विधानसभा चुनावों के परिणाम तथा उससे जुड़े विभिन्न आँकड़े भारतीय चुनाव आयोग द्वारा एकत्रित रखे गए हैं तथा यह आँकड़े सार्वजानिक तौर पर भारतीय चुनाव आयोग की अधिकारिक वेबसाईट पर एकत्रित रहते हैं, जिन्हें आसानी से उपलब्ध करवाया जा सकता है। भारतीय चुनाव आयोग द्वारा निम्न सूचना सार्वजानिक तौर पर उपलब्ध करवाई जाती है - (1) संसदीय एवं राज्य विधानसभा के चुनावों में मतदान करने वाले मतदाताओं की संख्या, (2) भारतीय चुनाव आयोग उम्मीदवारों द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र जिसमें उम्मीदवार अपनी व्यक्तिगत जानकारी, जैसे - उसके विरुद्ध कितने न्यायिक मामले लम्बित हैं या उसकी सम्पत्ति इत्यादि को भी सार्वजनिक किया जाता है, (3) एक विशेष चुनाव में चुने गए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों की संख्या, (4) चुनाव में भाग लेने वाले दल और उनको मतदान में हासिल होने वाला मतदान प्रतिशत, (5) चुनाव में प्रतियाशियों की नाम सहित संख्या, इत्यादि।

मतदान व्यवहार और मतदाताओं के दृष्टिकोण को समझना तथा उन्हें आँकड़ों के रूप में प्रस्तुत करना चुनावी अध्ययन का मुख्य लक्ष्य होता है। चुनावी अध्ययन के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में काफी तेजी आई है। लोकसभा के चुनाव हों या किसी राज्य विशेष में विधानसभा के चुनाव हों, बड़ी संख्या में अलग-अलग संस्थाओं द्वारा जनमत सर्वेक्षण करवाए जाते हैं तथा लोगों के मतदान व्यवहार को समझने की कोशिश की जाती है।

आरम्भिक चुनाव अध्ययन

दुनिया के सन्दर्भ में सर्वेक्षणों के आधार पर चुनावी अध्ययन और मतदान व्यवहार को अध्ययन करने की शुरूआत डॉ. जॉर्ज गैल्लुप के द्वारा स्थापित अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन 1935 के माध्यम से की गई थी, इसका मुख्य उदेश्य निष्पक्षता के साथ लोकमत को समझना था। डॉ. जॉर्ज गैल्लुप द्वारा अपने अध्ययनों में न सिर्फ अमेरिका में होने वाले राष्ट्रपति चुनावों के नतीजों का सटीक अनुमान लगाया बल्कि अमेरिकी मतदाताओं के मतदान व्यवहार का भी व्यापक विश्लेषण किया (गैल्लुप, 1972)।

भारत में चुनावी सर्वे और मतदान व्यवहार का अध्ययन कोई नयी प्रवृति नहीं है, बल्कि आजादी के बाद से ही 1950 के दशक से मतदान व्यवहार का अध्ययन और चुनावी सर्वे करवाए जा रहे हैं। वर्तमान में सोशल मीडिया और डिजिटल मिडिया के कारण मतदान व्यवहार के अध्ययन को अधिक प्रसिद्धि मिली है। 1950 के दशक में ही अमेरिकी संगठन अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन के आधार पर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन का गठन डॉ. एरिक डा कोस्टा के द्वारा किया गया था। 1957 में दूसरे लोकसभा चुनावों से पहले भारत में पहला देशव्यापी चुनावी सर्वे किया गया तथा सर्वे में भारतीय मतदाताओं पर उनके व्यवसाय, जाति, धर्म, इत्यादि का उनके मतदान व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर मुख्य जोर दिया गया तथा इसी सर्वे में नेताओं की लोकप्रियता को भी रिपोर्ट किया गया। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन द्वारा 1980 तक चुनावी सर्वे किए गए तथा मतदान व्यवहार का अध्ययन किया गया, परन्तु 1980 के पश्चात् इस संगठन ने चुनावी अध्ययन करना बन्द कर दिया। इसके अलावा 1950 के दशक में एस. वी. कोगेकर के द्वारा किए गए चुनावी अध्ययन प्रमुख हैं। इन्होंने राज्यवार अध्ययन किया तथा वर्णनात्मक और सामान्य प्रकृति की रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसका मुख्य उद्देश्य दलों के गठबन्धन, प्रत्याशियों का चयन तथा मिडिया की भूमिका और मतदाताओं की जागरूकता का अध्ययन करना था, जिसके लिए राज्यवार राजनीतिक वैज्ञानिकों के माध्यम से राज्य विशेष की व्यापक चुनावी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

1950-60 के दशक में कुछ व्यक्तिगत राजनीतिक विश्लेषकों द्वारा भी मतदान व्यवहार का अध्ययन किया गया, जिसमें वी.एम. सिर्सिकर द्वारा पूना लोकसभा क्षेत्र का अध्ययन प्रमुख है, जो 1962 के आम चुनावों में किया गया था तथा इस चुनावी अध्ययन के लिए सैम्पल सर्वे का प्रयोग किया गया था। इस अध्ययन में वी.एम. सिर्सिकर द्वारा कुछ महत्वपूर्ण खोज प्रस्तुत की गईं - (1) अधिकतर लोग लोकतन्त्र, चुनाव और राजनीतिक दलों में आस्था रखते हैं तथा लोकतन्त्र में आस्था शिक्षा के साथ जुडी हुई है, उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों में लोकतन्त्र के प्रति कम तथा अशिक्षित या निम्न शिक्षा प्राप्त लोगों में लोकतन्त्र के प्रति अधिक आस्था है, (2) परिवार के मुखिया का परिवार के अन्य सदस्यों के मतदान के निर्णय में प्रभाव रहता है, (3) कांग्रेस पार्टी अधिकतर लोगों का पसन्दीदा दल है, तथा (4) दल, जाति, उम्मीदवार इत्यादि की मतदाताओं के निर्णयों में अहम भूमिका रहती है (सिर्सिकर, 1967)।

एक अन्य चुनावी अध्ययन मायरोन वेनर द्वारा एमआईटी सेंटर फॉर इंटरनेशनल स्टडीज के लिए किया गया था। इस प्रोजेक्ट को एमआईटी इंडियन इलेक्शन डाटा प्रोजेक्ट के नाम से जाना जाता है, जिसकी स्थापना 1968 में की गई थी। उन्होंने अपने आँकड़े स्टडीज इन इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन दि इंडियन स्टेट नामक पुस्तक में प्रदर्शित किए, इनका मुख्य उद्देश्य 1952 से भारत के चुनावों का कम्प्यूटर आधारित अध्ययनों की शृंखला शुरू करना था। इन्होंने भारत की राज्य विधानसभाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जिसमें 3000 से अधिक

निर्वाचन क्षेत्र शामिल थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने चुनावी अध्ययन में 'पायलट' अध्ययन करने का निर्णय लिया। इस अध्ययन को दो भागो में बाँटा गया, पहले भाग में मतदाताओं के मतदान व्यवहार और आधुनिकीकरण के मध्य सम्बन्धों की जाँच की गई तथा इस अध्ययन के लिए वेनर ने जनगणना और अन्य सामाजिक-आर्थिक आँकड़ों का प्रयोग किया। इसके साथ ही इन्होंने निर्वाचन क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति किस प्रकार मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है, इसका अध्ययन किया गया। जबकि दूसरे भाग में वीनर और फील्ड ने जाति, वर्ग, धर्म, ग्रामीण-शहरी मतभेद इत्यादि चरों का प्रयोग किया तथा मतदान व्यवहार और दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया (वेनर, 1978)।

सीएसडीएस सर्वे (द सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवेलपिंग सोसाइटीस)

अखिल भारतीय स्तर पर सर्वेक्षणों के आधार पर चुनावों का संस्थागत अध्ययन 1960 के दशक में सेंटर फॉर द स्टडीज ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज (सीएसडीएस) द्वारा शुरू किया गया। यह अध्ययन 'राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन' (एनइएस) के नाम से जाना गया। 1967 में पहली बार भारतीय मतदाताओं के व्यवहार और दृष्टिकोण को वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने का आयोजन किया गया। राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन का तात्कालिक उद्देश्य भारतीय मतदाताओं के व्यवहार और दृष्टिकोण को मापना और चुनावी नतीजों की विस्तृत व्याख्या करना था। राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन 1967 द्वारा देश के चुनावी रुझान और प्रतिरूप को विस्तार से प्रस्तुत किया गया। इस अध्ययन में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर बड़े सैम्पल सर्वे के साथ देश के मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार और राजनीतिक दृष्टिकोण का वैज्ञानिक तरीकों के साथ अध्ययन किया गया। इस सर्वे की मुख्य विशेषता इसमें अपनाई गई अध्ययन अनुसन्धान विधि थी जिसमें सम्भाव्यता निदर्शन, गहन प्रश्नावली शामिल थे। इस अध्ययन में यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग किया गया तथा यह प्रयास किया गया कि भारतीय समाज के बीच सभी विविधताओं का प्रतिनिधित्व शामिल हो। दलों की प्रतिस्पर्धा के आधार पर स्तरीकृत करके कुल 55 लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों को चुना गया। निदर्शन के लिए चुने गए निर्वाचित क्षेत्रों में विधानसभा के खण्डों तथा मतदान क्षेत्रों का चयन क्षेत्र के आकार और अनुपात में सम्भाव्यता प्रकिया के तहत किया गया।

1967 के अध्ययन के पश्चात् दूसरा राष्ट्रीय चुनावी अध्ययन 1971 में आयोजित किया गया। 1967 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में सबसे बड़ी कमी यह थी कि इसमें महिलाओं को निदर्शन के लिए नहीं चुना गया था। महिलाओं को निदर्शन के लिए नहीं चुने जाने का सबसे बड़ा कारण यह समझ थी कि पुरुषों और महिलाओं के मतदान व्यवहार में कोई खास अन्तर नहीं होता है। इस कमी को राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन 1971 में दूर कर लिया गया तथा महिलाओं को भी निदर्शन में शामिल किया गया ताकि महिलाओं के मतदान व्यवहार और दृष्टिकोण को भी पुरुषों से अलग समझा जा सके। सीएसडीएस द्वारा सिर्फ चुनावी नतीजों का

अनुमान लगाने को ही अपना एकमात्र उद्देश्य नहीं माना गया बल्कि लोगों के राजनीतिक व्यवहार, प्रमुख रुझान और प्रतिरूप को समझने का प्रयास किया गया।

सीएसडीएस द्वारा करवाए जाने वाले चुनावी अध्ययन की प्रमुख विशेषता उनके द्वारा सर्वेक्षण के लिए तैयार की गई विस्तृत प्रश्नावली थी। इस प्रश्नावली के लिए मतदाताओं के आमने-सामने घंटों बैठ कर उनके जबाव लिए जाते थे। इस प्रश्नावली में 200 से 300 प्रश्न होते थे। इन प्रश्नावलियों का निर्माण सिर्फ तात्कालिक चुनावों के अध्ययन के लिए नहीं बल्कि राजनीतिक विषयों पर व्यापक समझ बनाने के उदेश्य से तैयार किया जाता था। बल्कि अधिक महत्व राजनीतिक व्यवहार, मतों और रुझानों की व्यापक विषयवस्तु को दिया जाता था तथा इसके साथ ही स्थायी मूल्यों से जुड़े कुछ प्रश्न भी शामिल किए जाते थे। इस सर्वे की प्रश्नावली को भारत में बोली जाने सभी प्रमुख भाषाओं में सावधानी से अनुवाद किया गया। क्षेत्र में अनुसन्धान करने वालों की भर्ती, उनका प्रशिक्षण, क्षेत्रीय कार्य, आँकड़ों का संग्रह, तथा क्षेत्रीय कार्य पर्यवेक्षण शीधे सीएसडीएस द्वारा संचालित किया जाता था। 1980 के दशक में चुनावी अध्ययन के क्षेत्र में विद्वानों और सस्थाओं में रुचि कम हुई तथा जनमत सर्वेक्षणों के माध्यम से किए जा रहे अध्ययनों की शृंखला को रोक दिया गया। सीएसडीएस द्वारा भी 1980 के संसदीय चुनावों में चुनाव-पूर्व सर्वे के पश्चात् राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की परम्परा को रोक दिया गया, तथा 1990 के दशक के मध्य में सीएसडीएस के द्वारा राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की शृंखला को पुन: शुरू किया गया (कुमार एवं राय, 2013)।

सीएसडीएस द्वारा जहाँ 1980 के चुनावों के अध्ययन के पश्चात् राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के कार्यक्रम को रोक दिया गया था जिसे 1990 के दशक के मध्य में बड़े व्यापक रूप से शुरू किया गया। सीएसडीएस द्वारा 1996 के संसदीय चुनावों में राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की योजना बनाई गई तथा लोकतन्त्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिए 'लोकनीति' कार्यक्रम को आरम्भ किया गया। 1996 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में मतदाताओं के व्यवहार को अध्ययन के लिए पैनल डिजाईन निदर्शन का प्रयोग किया गया जिसे तीन दौर में पूरा किया जाना था, अर्थात् चुनाव-पूर्व, चुनाव के बीच में, तथा मतदान के पश्चात्, पैनल डिजाईन निदर्शन में जिन मतदाताओं को एक बार निदर्शन के लिए चुना गया, उन्हीं मतदाताओं को अगली बार भी साक्षात्कार के लिए चुना गया था। तीनों ही स्तरों पर 9000 से अधिक मतदाताओं को निदर्शन के लिए चुना गया, इसके अतिरिक्त इन चुनावों में 'लोकनीति' के माध्यम से 17,604 मतदाताओं के बहुत बड़े निदर्शन के आधार पर एक एग्जिट पोल का भी आयोजन सीएसडीएस द्वारा किया गया, जिसने बड़े स्तर पर राजनीतिक वैज्ञानिकों और राजनीतिक विश्लेषकों को भारतीय राजनीति को समझने में मदद मिली।

1996 के सफल राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के पश्चात् संस्थान द्वारा 1998 के लोकसभा चुनाव का अध्ययन दो दौर अर्थात् चुनाव-पूर्व सर्वे और मतदान के बाद सर्वे किए जाने का निर्णय लिया गया। इसमें भी पैनल डिजाईन सर्वे को ही माध्यम बनाया गया तथा 1996 के चुनावी अध्ययन में जिन लोगों की प्रतिकिया ली गई थी उन्हीं मतदाताओं से

प्रतिक्रिया लिये जाने का निर्णय लिया गया, परन्तु 1999 के लोकसभा चुनाव में सीएसडीएस द्वारा दो-तीन स्तरों पर होने वाले निदर्शन को छोड़ सिर्फ मतदान के पश्चात् अर्थात् पोस्ट पोल सर्वे तक सीमित करना पड़ा जिसका मुख्य कारण आर्थिक संसाधनों की कमी थी। राष्ट्रव्यापी बड़े निदर्शन के सर्वे करने के लिए बड़े स्तर पर संसाधनों की आवश्यकता थी, अत: 1996 के पश्चात् लगातार लोकसभा चुनाव होने के कारण अलग-अलग स्तरों पर सर्वे करना सम्भव नहीं हो पाया तथा सीएसडीएस के द्वारा 1999 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में सिर्फ पोस्ट पोल सर्वे करने का निर्णय लिया गया। 1999 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में उसी पैनल का साक्षात्कार फिर से लिया गया जिनका चयन 1996 और 1998 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के लिए किया गया था। इस प्रकार 1996 के लोकसभा चुनाव के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन से लेकर 1999 के लोकसभा चुनावों के अध्ययन तक छह दौर के सर्वे हुए जिन्होंने भारतीय जनमानस के मुद्दों, अवधारणाओं को समझने में मुख्य भूमिका निभाई।

सीएसडीएस द्वारा चुनावी अध्ययन की परम्परा को मुख्यत: तीन पीढ़ियों में बाँट कर देखा जा सकता है। 1967, 1971 और 1980 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन को पहली पीढ़ी के अध्ययन में रखा जा सकता है तथा 1996 से 1999 तक के चुनावी सर्वेक्षणों को दूसरी पीढ़ी के अध्ययनों में रखा जा सकता है। 2004 और उसके बाद के अध्ययनों को तीसरी पीढ़ी का अध्ययन माना जाता है। दूसरी पीढ़ी के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (1996-1999) का कार्य पहली पीढ़ी के चुनावी अध्ययन के सर्वेक्षणों के ढाँचे पर ही किया गया था। हालाँकि इसमें कुछ नयी विशेषताओं को भी जोड़ा गया था, इसमें जो पहला सबसे बड़ा परिवर्तन था और निदर्शन की संख्या में था, पहली पीढ़ी के चुनावी अध्ययनों की तुलना में दूसरी पीढ़ी में निदर्शन की संख्या दोगनी से भी अधिक थी। इस विस्तृत निदर्शन में सभी राज्यों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया गया था। दूसरा सबसे बड़ा परिवर्तन पैनल सर्वे के साथ कई दौर में सर्वे का प्रयोग करना था। अकेले 1996 के लोकसभा चुनाव में ही तीन दौर में सर्वे किया गया जिसमें चुनाव-पूर्व सर्वे, चुनाव के मध्य में सर्वे तथा मतदान के पश्चात् सर्वे शामिल हैं। बहुत कम अन्तराल में लोकसभा चुनाव होने के कारण 1998 तथा 1999 के लोकसभा चुनावों में उसी पैनल को सर्वेक्षण के लिए चुना जिनसे 1996 के लोसभा चुनाव में प्रतिक्रिया ली गई थी। तीसरा सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन सर्वेक्षण की प्रक्रिया को लेकर किया गया था इस अध्ययन में मतदाताओं की वरीयता का पता लगाने के लिए नकली गुप्त मतदान-पत्र और नकली मतपेटी का प्रयोग किया गया था। इससे पार्टियों को मिलने वाले वोटों का अनुमान लगाने में अधिक सहायता मिली (कुमार एवं राय, 2013)।

दूसरी पीढ़ी के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में कुछ अग्रणी डिजीटल एवं प्रिंट मीडिया को भी इस कार्य में शामिल किया गया। इससे न सिर्फ संस्थान को आर्थिक मदद मिली बल्कि मीडिया की मदद से राष्ट्रीय चुनाव का अध्ययन और अधिक प्रकाश में आ गया। इन मीडिया प्रकाशनों में प्रमुख तौर पर द हिन्दू, इंडिया टुडे, फ्रंटलाइन इत्यादि प्रमुख हैं। 2004 के बाद के सर्वे को तीसरी पीढ़ी के अध्ययनों में रखा जाता है। इस सवें में निदर्शन के आकार को

दूसरी पीढ़ी के सर्वे से लगभग तीन गुणा बड़ा किया गया, ताकि छोटे राज्यों को भी प्रतिनिधित्व दिया जा सके। अध्ययन को और अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए एक ही मतदान केन्द्र से निदर्शन में कम लोगों को शामिल किया जाने लगा ताकि एक ही जगह के समूह के प्रभावों से बचा जा सके। इसके अतिरिक्त भी तीसरी पीढ़ी में राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं, जैसे - प्रश्नावली का अनुवाद पहले जितनी भाषाओं में होता था, उसकी संख्या को भी बड़ा किया गया। सीएसडीएस के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन की परम्परा में पहली बार राज्य की राजनीति एव समस्याओं को प्रश्नावली में शामिल किया गया ताकि सर्वे के आँकड़ों से राज्य स्तरीय विश्लेषण किया जा सके।

सीएसडीएस ने अपनी राष्ट्रीय चुनावी अध्ययन की परम्परा को समय के साथ और अधिक विस्तार दिया तथा क्रियाविधि को भी अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया है। 2014 के चुनावी अध्ययन में पहली बार चुनावों को ट्रैक करने की नीति अपनाई गई तथा 2014 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन में संस्थान के द्वारा पहली बार चुनाव से लगभग एक साल पहले से ही लोगों की अभिवृत्तियों को मापना शुरू कर दिया था। जुलाई 2013 में ही 2014 के लोकसभा चुनाव के अध्ययन का कार्य शुरू कर दिया गया जिसमें प्रोबेबिलिटी प्रपोशनल टू साइज मेथड के आधार पर देश के लगभग 267 लोकसभा क्षेत्रों के निदर्शन के आधार पर देश की राजनीतिक स्थिति को देखा गया। इसी के तहत दूसरा ट्रैकर 18 राज्यों के अन्दर जनवरी 2014 के अन्दर पूरा किया तथा तीसरा ट्रैकर 6 राज्यों में फरवरी 2014 में पूरा किया गया। चुनावों की ट्रैक करने की इस नयी परम्परा के साथ-साथ पुरानी परम्परा प्री-पोल सर्वे और पोस्ट-पोल सर्वे का भी आयोजन किया गया, वहीं 2019 के लोकसभा चुनावों में भी मल्टीस्टेज निदर्शन के आधार पर प्री-पोल और पोस्ट-पोल सर्वे के माध्यम से चुनावी अध्ययन को पूरा किया गया।

सीएसडीएस द्वारा 1960 के दशक से ही 'राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन' के माध्यम से देश के लोकसभा चुनावों का अध्ययन किया जा रहा है। इसमें अपवाद के रूप में 1980 के पश्चात् और 1996 के लोकसभा चुनाव से पहले के चुनाव हैं। जब अध्ययन की यह श्रृंखला टूट गई थी। सीएसडीएस के द्वारा लोकसभा चुनाव के अध्ययनों के साथ ही 1995 के बिहार विधानसभा चुनाव से राज्यों के विधानसभा चुनावों के अध्ययन को भी शामिल किया गया है। 1995 के पश्चात् लगभग प्रत्येक विधानसभा चुनावों का अध्ययन किया जा रहा है ताकि राज्य की राजनीति में होने वाले बदलावों को समझा जा सके।

एथ्नोग्राफिक अध्ययन

चुनावी अध्ययनों में सर्वे तकनीक ही अधिक लोकप्रिय रही है, परन्तु कुछ विश्लेषकों द्वारा केस अध्ययन या एथ्नोग्राफिक अध्ययन के प्रयोग से भी लोगो के मतदान व्यवहार को अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। एथ्नोग्राफिक अध्ययन में प्रतिभागी अवलोकन के माध्यम से लोगों के व्यवहार को समझने का प्रयास किया जाता है, जहाँ

अनुसन्धानकर्ता कई दिनों तक उन्हीं लोगों के साथ समय व्यतीत करता है जिस समूह को निदर्शन के लिए चुना गया है तथा इस अध्ययन में मात्रात्मक परिमाणों की अपेक्षा गुणात्मक परिमाणों पर अधिक बल दिया जाता है। पॉल ब्रान्स द्वारा सबसे पहले 1977 और 1980 के लोकसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश के पाँच निर्वाचित क्षेत्रों में केस अध्ययन किया गया। समाजशास्त्री ए.एम. शाह द्वारा 1960 के दशक में मतदाताओं के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए सहभागी अवलोकन का प्रयोग किया गया (शाह, 2007)। इसके अतिरिक्त मुकुलिका बनर्जी द्वारा 2007 में पश्चिम बंगाल के विधानसभा चुनाव में मतदान व्यवहार को अध्ययन करने के लिए गाँव में एथ्नोग्राफिक अध्ययन का आयोजन किया गया। इन अध्ययनों में सहभागी अवलोकन के माध्यम से मतदाताओं के मतदान व्यवहार को मापने का प्रयास किया गया था तथा उसके गुणात्मक आयामों को प्रस्तुत किया गया (बनर्जी, 2014)।

मुकुलिका बनर्जी द्वारा बंगाल के विधानसभा चुनाव में दो गाँव में एथ्नोग्राफिक अध्ययन का आयोजन किया गया था। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य गुणात्मक रूप से यह समझना था कि लोगो में मतदान को लेकर आखिर इतना उत्साह क्यों रहता है। बंगाल के विधानसभा चुनाव का अध्ययन सिर्फ दो गाँव के अध्ययन पर आधारित था, परन्तु 2009 के लोकसभा चुनावों के दौरान व्यापक रूप से एथ्नोग्राफिक चुनावी अध्ययन का आयोजन किया गया, जहाँ पहले सिर्फ एक विशेष क्षेत्र का अवलोकन किया जाता था, अब देश के अलग-अलग 12 स्थानो पर एथ्नोग्राफिक अध्ययन का प्रोजेक्ट चलाया गया। इस अध्ययन के संचालन का उद्देश्य भारतीय चुनावों के बड़े पैमाने पर किए गए सर्वेक्षणों और स्थानीय स्तर पर किए गए सहभागितामूलक अनुसन्धानों की शक्तियों को एक साथ मिलाकर तुलनात्मक अध्ययन करना था। इस अध्ययन को 'कम्पेरेटिव इलेक्टोरल एथ्नोग्राफिक प्रोजेक्ट' के नाम से मुकुलिका बनर्जी द्वारा सीएसडीएस दिल्ली के सहयोग से पूरा किया गया। इस अध्ययन के अन्तर्गत मुकुलिका बनर्जी द्वारा अपने 12 सहयोगियों को क्षेत्रीय विशेषज्ञ के साथ देश के अलग-अलग 12 राज्यों में भेजा गया जिसमें बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, तथा पश्चिम बंगाल शामिल थे (बनर्जी, 2014)।

इसके अतिरिक्त मनीषा प्रियम के द्वारा भी अपने चुनावी अध्ययनों में एथ्नोग्राफिक अध्ययन का प्रयोग किया गया है। मनीषा प्रियम द्वारा दक्षिणी दिल्ली की अनाधिकृत कॉलोनी संगम विहार में 2014 के लोकसभा चुनाव में लोगों के मतदान व्यवहार को जानने का प्रयास किया गया जिसमें 2013 में होने वाले दिल्ली विधानसभा चुनाव के समय भी यहाँ अध्ययन का एक दौर चलाया गया था। इस अध्ययन को लगभग आठ महिने तक चलाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य केवल राजनीतिक पसन्द का पता लगाना नहीं था बल्कि विस्तृत रूप से लोगों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवहार को समझना था। संगम विहार एक अनाधिकृत कॉलोनी है जहाँ लगभग ढाई लाख की आबादी रहती है जो अधिकतर उत्तर प्रदेश और बिहार से आए हुए लोग हैं तथा अधिकतर निम्नवर्गीय परिवार हैं जहाँ पानी भी टैंकर द्वारा पहुँचाया जाता है। मनीषा ने पाया कि लोग कभी भी अपनी राजनीतिक प्राथमिकताओं का खुलासा नहीं

करते हैं और अपनी पसन्द का संकेत केवल तभी देते हैं जब उन मुद्दों पर कोई सार्थक चर्चा शुरू की जाती है। स्थानीय ताकतवर नेताओं का प्रभाव अधिक है तथा लोग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से आम आदमी पार्टी की तरफ अपनी राजनीतिक पसन्द को बदल रहे हैं (प्रियम, 2015)।

90 के दशक के बाद चुनावी अध्ययन

बदलते समय के साथ मतदान व्यवहार के अध्ययन को और अधिक वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया जाने लगा है। 1990 के दशक में चुनावों से पहले जनमत सर्वेक्षणों के माध्यम से चुनावी नतीजों का अनुमान लगाया जाने लगा, इसमें सबसे प्रमुख डॉ. प्रणय राय द्वारा चुनावों के समय जनमत सर्वेक्षणों के माध्यम से देश के मतदाताओं के मिजाज को दर्शाने को लोकप्रिय बनाया। डॉ. राय द्वारा जनमत सर्वेक्षणों को वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने का प्रयास किया गया ताकि चुनावी अध्ययन और चुनावों में दलों को मिलने वाले मत प्रतिशत की भविष्यवाणी वैज्ञानिक तरीके से की जा सके। इसी के तहत 1989 के चुनावों में डॉ. राय द्वारा मार्केटिंग एंड रिसर्च ग्रुप के साथ मिल कर 'एग्जिट पोल' किया जो मतदान केन्द्र पर वोट डाल कर बाहर आए 7700 मतदाताओं के साक्षात्कार पर आधारित था। 1990 के दशक में ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रचार-प्रसार बढ़ा तथा चुनावों के दौरान जनमत सर्वेक्षण तथा वोटिंग के पश्चात् एग्जिट पोल काफी लोकप्रिय हुए। 1990 के दशक में चुनावी अध्ययनों और चुनावी सर्वेक्षणों की बढ़ती लोकप्रियता के कई कारण माने जाते हैं - (1) इसने मतदाताओं तथा साथ ही राजनीतिक दलों में भी मतदाताओं की पसन्द, मुद्दे और धारणाओं को देखने-समझने के लिए उत्सुक किया, तथा (2) मीडिया और राजनीतिक विश्लेषकों के लिए महत्यपूर्ण आँकड़े मिले जिसके आधार पर मतदान व्यवहार, मुख्य चुनावी ट्रेंड्स और पैटर्न को समझा जा सकता था (कुमार एवं राय, 2013)।

निष्कर्ष

चुनावी अध्ययन का विस्तार 1990 के दशक के बाद बड़े पैमाने पर हुआ है। यह एक बाजार के रूप में विकसित हुआ है, जहाँ विभिन्न संस्थानों द्वारा समय-समय पर लोगों के मतदान व्यवहार को समझने के लिए कार्य किया जाता है। इन कार्यों को मीडिया के माध्यम से प्रचारित किया जाता है। इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही जनमत सर्वेक्षणों के माध्यम से किए जा रहे चुनावी अध्ययनों में और अधिक वृद्धि और लोकप्रियता देखी गई। मिडिया द्वारा विभिन्न अनुसन्धान संगठनों की सहायता से जनमत सवेक्षण करवाए जाने लगे, मतदाताओं के व्यवहार को समझने और लोगों के मुद्दों और धारणाओं को समझने के लिए कई संस्थान सामने आए जिन्होंने चुनावों से पहले जनमत सर्वेक्षणों के माध्यम से चुनावी नतीजों की भविष्यवाणी की, इसमें ए.सी. नीलसन, ओआरजी एमएआरजी, सेंटर फॉर मीडिया स्टडी, सी-वोटर, इत्यादि प्रमुख हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ ही प्रिंट मिडिया ने भी व्यवहार को

अध्ययन करने और जनमत सर्वेक्षणों के माध्यम से चुनावी प्रवृत्तियों और धारणाओं को समझने का प्रयास किया। इंडिया टुडे ने 1989 में अपना पहला सर्वेक्षण प्रस्तुत किया और इसके बाद लगातार सर्वेक्षणों के माध्यम से चुनावी अध्ययन करते हैं। मतदाताओं के व्यवहार को समझने के लिए जनमत सर्वेक्षणों का प्रयोग सिर्फ मीडिया या राजनीतिक विश्लेषकों के द्वारा ही नहीं बल्कि राजनीतिक दलों द्वारा भी प्रयोग किया जा रहा है।

भारत में होने वाला चुनावी अध्ययन समय के साथ काफी वैज्ञानिक स्तर पर किया जाने लगा है तथा न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि राज्य की चुनावी राजनीति को अपने अध्ययन में शामिल किया गया है। सीएसडीएस ने इन अध्ययनों में निर्णायक भूमिका निभाई है तथा चुनावी राजनीति के अध्ययन को एक अलग पहचान प्रदान की है।

सन्दर्भ

बनर्जी, मुकुलिका (2014) *व्हाय इंडिया वोट*, टेलर एंड फ्रांसिस लिमिटेड: यूनाइटेड किंगडम।

गैल्लुप, जॉर्ज (1972) *द गैल्लुप पोल : पब्लिक ओपिनियन (1935-1971),* रैंडम हाउस, न्यूयार्क, वॉल्यूम-1.

कुमार, संजय एवं राय, प्रवीण (2013) *मेजरिंग वोटिंग बिहेवियर इन इंडिया,* सेज प्रकाशन: न्यू दिल्ली.

लोकनीति टीम (2004) 'नेशनल इलेक्शन स्टडी 2004: एन इंट्रोडक्शन', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* दिसम्बर 18 XXXIX (51): 5373-81.

प्रियम, एम. (2015) 'इलेक्टिंग द रूलिंग पार्टी एंड द अपोजिशन : वोटर डेलिब्रेशन फ्रॉम संगम विहार, दिल्ली, लोकसभा इलेक्शन 2014', *स्टडीस इन इंडियन पॉलिटिक्स,* 3(1), 94-110.

शाह, ए.एम. (2007) 'इंट्रोडक्शन', इन ए.एम. शाह (सं.), *द ग्रासरूट ऑफ डेमोक्रेसी : फील्ड स्टडीज ऑफ इंडियन इलेक्शन,* पृ. 1-27. दिल्ली: परमानेंट ब्लैक.

सिर्सिकर, बी.एम. (1967) 'पोलिटिकल बिहेवियर इन इंडिया : अ केस स्टडी ऑफ द 1962 जनरल इलेक्शंस', *इंटरनेशनल अफेयर्स जर्नल,* वॉल्यूम 43, जनवरी, पृ. 171-173.

वेनर, मायरोन (1978) *इंडिया एंड द पोल्स : द पार्लियामेंट्री इलेक्शन ऑफ 1977,* अमेरिकन इंटरप्राइजेस इंस्टिट्यूट फॉर पब्लिक पॉलिसी, वाशिंगटन

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 25-32)
UGC-CARE (Group-I)

अर्थशास्त्र और भारतीय ज्ञान परम्परा : एक विहंगावलोकन

नीता तपन*

प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र जैसा कोई स्वतन्त्र विज्ञान नहीं था परन्तु बहुत प्राचीन अतीत से, भारत ने एक आर्थिक मॉडल का पालन किया है जो मूलत: आध्यात्मिक रहा है। उस समय के कुछ आर्थिक विचार वर्तमान समय में आर्थिक नीतियों के लिए नुस्खे के रूप में प्रासंगिक हैं।यह लेख प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार का अन्वेषण करता है, जिसमें इसके समग्र दृष्टिकोण पर जोर दिया गया है, जहाँ अर्थशास्त्र आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल द्वारा आकार दिए गए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसी प्रमुख अवधारणाएँ धन, नैतिक जीवन और सामाजिक कल्याण की सन्तुलित खोज को प्रदर्शित करती हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने शासन, सम्पत्ति के अधिकार और आर्थिक स्थिरता के लिए आधारभूत सिद्धान्त रखे। भारतीय अर्थशास्त्र ने स्थिरता, दान और नैतिक धन पर ध्यान केन्द्रित किया, बाजारों पर राज्य के नियन्त्रण की बात रखी। आर्थिक प्रथाओं के साथ आध्यात्मिक नैतिकता का एकीकरण आधुनिक आर्थिक नीतियों, विशेष रूप से कल्याणकारी प्रकल्प और पर्यावरणीय स्थिरता से सम्बन्धित प्राचीन ज्ञान की प्रासंगिकता को उजागर करता है।

*अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
E-mail: iqac.ujjaingc@gmail.com

अर्थशास्त्र और भारतीय ज्ञान परम्परा : एक विहंगावलोकन

प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र जैसा कोई स्वतन्त्र विज्ञान नहीं था। भारतीय विचारकों के सामाजिक और राजनीतिक विचारों के रूप में धन के उत्पादन और उपयोग से जुड़े आर्थिक विचार थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (चौथी ईसा पूर्व) को अर्थशास्त्र विज्ञान का अग्रदूत कहा जाता है। अर्थशास्त्र एक बहुत व्यापक विज्ञान था और यह केवल व्यक्ति, समाज और राज्य की आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन नहीं था बल्कि इसमें शासकों के सभी कर्तव्य शामिल थे। कौटिल्य से पहले शुक्रनीति और बृहस्पति की कृतियों और महाभारत ने अर्थशास्त्र के विषय पर महान विचार दिए। अर्थशास्त्र में प्रशासन की कला और विज्ञान पर विस्तार से चर्चा की गई है। कौटिल्य मनु, बृहस्पति और शुक्र के विचारों का उल्लेख करते हैं और उनके विचारों को संशोधित करते हैं। शासकों को तर्क, वेद, वार्ता और दण्डनीति का अध्ययन करने की सलाह दी गई। तर्क आस्तिक और नास्तिक दोनों दार्शनिक विज्ञानों के अन्तर्गत आता है, जो आत्मा की जाँच से सम्बन्धित है। वेदों ने नैतिक जीवन जीने, ईमानदार और परोपकारी बनने की शिक्षा दी। वार्ता एक विज्ञान था जो लोगों की आजीविका के साधनों (वृत्ति) का अध्ययन करता था जिसे विभिन्न प्राचीन अर्थशास्त्रियों द्वारा मोटे तौर पर पाँच श्रेणियों जैसे कृषि, वाणिज्य, गाय पालन, उधार और विभिन्न हस्तशिल्प और उद्योगों में वर्गीकृत किया गया है। दंडनीति न्यायशास्त्र का विज्ञान है जो कानून और वैधता की समस्याओं पर विचार करता है और यह तय करता है कि समाज के लिए क्या वैध है और क्या गैरकानूनी है।

वैदिक अर्थव्यवस्था में आर्थिक कल्याण धर्म (नैतिक कर्तव्य), अर्थ (भौतिक सम्पदा), और ऋत (ब्रह्मांडीय व्यवस्था या न्याय) की अवधारणाओं से निकटता से जुड़ा हुआ था। व्यक्तियों और समाज की भलाई को केवल धन से नहीं, बल्कि नैतिक और सांप्रदायिक मूल्यों के साथ उनके तालमेल से मापा जाता था। स्पष्ट है कि इस काल में धन और धर्म अवधारणाएँ गहन रूप से जुड़ी हुई थीं। धन के लिए वैदिक दृष्टिकोण ने इस बात पर जोर दिया कि यह व्यक्ति और समाज की भलाई के लिए आवश्यक है लेकिन इसे धर्म के अनुसार संचित और उपयोग किया जाना चाहिए। साथ ही, धन की अवधारणा में वहनीयता/सम्पोषणीयता के विचार अन्तर्निहित थे। अत: वैदिक काल में आर्थिक कल्याण केवल धन संचय करने के बारे में नहीं है, बल्कि इसे निरन्तर और इस तरीके से उपयोग करने के बारे में है जिससे सामाजिक या प्राकृतिक व्यवस्था बाधित न हो। वैदिक युग में ऋत की अवधारणा कल्याण की मुख्य कारक थी जिससे तात्पर्य ब्रह्मांड की प्राकृतिक व्यवस्था से था जो आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है। रीत को बनाए रखने का मतलब समाज के सुचारू कामकाज को सुनिश्चित करना था, जहाँ हर कोई अपने धर्म का पालन करता था और संसाधनों का उचित उपयोग किया जाता था।[1]

स्पष्ट है, बहुत प्राचीन अतीत से, भारत ने एक आर्थिक मॉडल का पालन किया है जो मूलत: आध्यात्मिक रहा है। मॉडल के पीछे का अर्थशास्त्र चार पुरुषार्थों, अर्थात् जीवन उद्देश्यों यथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष.के समग्र आध्यात्मिक प्रयास में एक सुविधा प्रदान करने वाला रहा है। इस प्रकार, आर्थिक मामलों पर प्राचीन भारतीय विचार ने जीवन के प्रति

समग्र दृष्टिकोण अपनाया है। धर्म का तात्पर्य धार्मिक कृत्यों, सत्यता, हिंसा न करना, पर्यावरणीय स्थिरता और दान से है। रामायण में, राम भरत को उनकी अनुपस्थिति में अयोध्या पर शासन करते समय क्षत्रिय धर्म (न्यायपूर्ण शासन) का पालन करने की सलाह देते हैं। महाभारत में कृष्ण अर्जुन को क्षत्रिय के रूप में अपने (स्व) धर्म का पालन करने और बाद में आसन्न आपदा से बचने के लिए युद्ध करने की सलाह देते हैं।

वैदिक काल में आर्थिक जीवन में मध्यम मार्ग पर जोर दिया गया, अत्यधिक गरीबी और अत्यधिक धन दोनों को हतोत्साहित किया गया। धन जमा करना या धर्म की कीमत पर उसका पीछा करना व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण दोनों के लिए हानिकारक माना जाता था। गरीबों और वंचितों का कल्याण वैदिक ढांचे के भीतर एक चिन्ता का विषय था, हालांकि इसके निदान धार्मिक दृष्टिकोण से खोजे जाते थे। भारत के सबसे प्राचीन पवित्र ग्रन्थ ऋग्वेद में लेखकों ने उल्लेख किया है कि मृत्यु सम्पन्न व्यक्तियों के लिए भी विभिन्न तरीकों से आती है और धन उनके पास गाड़ी के पहिये की तरह आता है। इसलिए धनवान लोगों को गरीबों की मदद करनी चाहिए जो भविष्य में आने वाली मुसीबतों में उनके दोस्त बनें। ऐसी मान्यता थी कि अनुष्ठानों के दौरान ब्राह्मणों और गरीबों को दिया गया दान और चढ़ावा आध्यात्मिक योग्यता बढ़ाने के साथ सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देता है। दान के रूप में धन देना एक कर्तव्य माना जाता था, खासकर उच्च वर्णों (सामाजिक वर्गों) के बीच। सही मार्ग से अर्जित या प्राप्त धन को एक आशीर्वाद के रूप में देखा जाता था, और दान को उन लोगों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था जो कम भाग्यशाली थे। दान करने के लिए कोई धार्मिक आदेश नहीं था, इसे धर्म के कार्य के रूप में सुझाया गया था। इसे तर्क और सहानुभूति की अपील के साथ एक स्वैच्छिक कार्य माना गया। कठोपनिषद में बालक नचिकेता अपने पिता वाजश्रवा को बिना किसी दम्भ के दान करने के लिए मनाने का प्रयास करता है। महाकाव्य महाभारत में, कृष्ण भी अर्जुन को सलाह देते हैं कि जो दान सात्विक है, यानी, बिना किसी प्रतिफल की उम्मीद के किया जाता है वह धार्मिक है। यहाँ तक कि वर्तमान युग में सम्पन्न व्यावसायिक घराने जो दान करते हैं वह प्रकृति में सात्विक होना चाहिए और राजस या तमस से प्रेरित नहीं होना चाहिए। एक आर्थिक गतिविधि के रूप में यह दान आय के पुनर्वितरण का एक स्वैच्छिक साधन हो सकता है।

दूसरा जीवन उद्देश्य अर्थ का सीधा सम्बन्ध अर्थशास्त्र से है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्पराओं में कहीं भी अर्थ अथवा धन, सम्पत्ति और काम के विचारों की निन्दा नहीं की गई है। प्राचीन समाज वैदिक धर्म के प्रभाव में था जिसमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद शामिल थे। पासा स्तोत्र, चमकम् प्रार्थना और श्री सूक्त में ऋग्वेद के लेखक इस बात पर जोर देते हैं कि भौतिक सम्पदा का अधिग्रहण महत्वपूर्ण है और इसे सही तरीकों से प्राप्त किया जाना चाहिए। मेदिनीकोश के अनुसार, अर्थ विक्सय (विषय) धन (धन), और वस्तु (सामग्री) आदि को दर्शाता है।[2] अथर्ववेद में ऋषि मातृभूमि से कहते हैं- 'हे मातृभूमि, मुझे पुण्य सम्पदा से स्थिर करो। हे सर्वज्ञ पृथ्वी, तुम्हारा स्वर्ग से सम्पर्क है। मुझे धनवान और सम्पन्न बनाओ।[3]

मनु स्मृति के अनुसार, एक ब्राह्मण के लिए भी, धन कमाना (अर्थार्जन) एक दायित्व है।[4] प्राचीन काल में उपजाऊ भूमि, सुखद घर और धन प्राप्ति के लिए बलिदान और पूजा की जाती थी।

उस काल में अर्थ को अलग-थलग करके नहीं देखा जाता था, लेकिन यह भी सच है कि इसके लिए किए जाने वाले प्रयासों को धर्म और मोक्ष द्वारा संयमित और निर्देशित माना जाता था। जरूरतमन्द मनुष्य के प्रति दान[5], दूसरों का कल्याण[6], व्यक्तिगत पोषण[7], देखभाल और सक्षमता[8], ये कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिनका वर्णन वैदिक ऋचाओं में धन के उपयोग के सम्बन्ध में किया गया है। यह न केवल इस लोक को प्राप्त करने के लिए बल्कि अगले लोक को प्राप्त करने के लिए भी मार्गदर्शक है। आर्थिक गतिविधियों का उल्लेख हमारे उपनिषदों में भी मिलता है।

सम्पत्ति के अधिकारों की सुरक्षा के सम्बन्ध में, कौटिल्य ने न्यायाधीशों के आचरण, अनुबन्धों की प्रकृति, विरासत के नियमों और चल और अचल सम्पत्तियों के सम्बन्ध में साक्ष्य के नियमों के लिए एक सम्पूर्ण अधिकरण (पुस्तक) 3 समर्पित किया था। अपने ग्रन्थ के अधिकरण 6 में, उन्होंने भूमि उत्पादकता की परिवर्तनशीलता को वर्षा की तीव्रता, कृषि क्षमता, विभिन्न फसलों के लिए भूमि की अनुकूलनशीलता और जनसंख्या घनत्व के रूप में वर्णित किया है। कौटिल्य मौसमी अनियमितताओं, जंगली जानवरों के खतरे, वन जनजातियों और पड़ोसी शासकों के हमलों जैसे कारकों से प्रभावित होने वाली भूमि उत्पादकता के बारे में भी चिन्तित थे। वेदों और अन्य धर्मग्रन्थों में फसलों और मवेशियों की सुरक्षा के लिए इन्द्र, अग्नि, अश्विनी कुमार, वरुण, मारुत आदि को सम्बोधित कई प्रार्थनाएँ हैं। धन, मवेशी, सोना और अन्य मूल्यवान वस्तुएँ देने और फसलों को कीटों और सूखे से बचाने के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ की जाती हैं। वेदों में विभिन्न कृषि कार्यों जैसे भूमि जोतना, बुआई करना, सिंचाई करना, फसल इकट्ठा करना आदि का वर्णन करने वाले भजन भी हैं। ये अनुष्ठान अक्सर देवताओं और प्राकृतिक शक्तियों का आहवान करते थे, इस विश्वास पर जोर देते थे कि मानव आर्थिक गतिविधि एक बड़े ब्रह्मांडीय व्यवस्था का हिस्सा थी। कृषि और पशुपालन आर्यों के दो मुख्य व्यवसाय थे। समय बीतने के साथ व्यापार, वाणिज्य, उद्योग और बैंकिंग भी महत्वपूर्ण व्यवसाय बन गए और वेदों और बाद के काल के अन्य संस्कृत शास्त्रों में भी इन आर्थिक गतिविधियों का उल्लेख है। कुल मिलाकर प्रारम्भिक काल में आर्थिक विचार दर्शन और धर्म की विभिन्न प्रणालियों से प्रभावित थे। बृहस्पति और शुक्र नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के वास्तविक संस्थापक थे।

काम, जो सांसारिक सुखों और कला का प्रतीक है, को प्राचीन ग्रन्थों में प्रदर्शन कला के रूप में भी शामिल किया गया था। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र लिखा और यह ग्रन्थ भारतीय उपमहाद्वीप में शास्त्रीय संगीत, नृत्य और नाटक के आधुनिक विद्यालयों का एक महत्वपूर्ण स्रोत बना हुआ है।

अन्त में, यदि कोई व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम के सन्दर्भ में विवेकपूर्वक आचरण करता है, तो वह स्वयं को मोक्ष की ओर ले जाता है। तो, मोक्ष पहले तीन पुरुषार्थों का एक विवेकपूर्ण संयोजन है। मोक्ष जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति है, जहाँ व्यक्तिगत आत्मा (आत्मा) सार्वभौमिक आत्मा (परमात्मा) के साथ एकजुट होती है। धर्म, अर्थ और काम का विवेकपूर्ण अभ्यास कर्म सिद्धान्त के माध्यम से मोक्ष की ओर ले जा सकता है। कर्म देवत्व द्वारा स्वचालित नैतिकता की एक प्रणाली है। अच्छे कार्यों के लिए उचित पुरस्कार (पुण्य) और बुरे कार्यों के लिए दंड (पाप) हैं। किसी व्यक्ति के कर्मों का परिणाम 'फल' होता है - पाप (अवगुण) और पुण्य (गुण)। जाहिर है, कर्म नैतिक आधारों के साथ कार्य और गतिविधि को दोहराता है। गृहस्थों को साधु बनकर सांसारिक उत्तरदायित्व छोड़कर वैराग्य में जाने की सलाह नहीं दी गई है, बल्कि उन्हें परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों का सचेतन धर्मनिष्ठा से पालन करना होता है। भगवद्‌गीता निष्काम कर्म का दर्शन भी देती है जो आसक्ति या परिणाम के बारे में सोचे बिना कर्म करने का निर्देश देता है। इससे व्यक्तिगत उत्थान और सामाजिक कल्याण होता है। इस अवधारणा के आधुनिक समानान्तर को व्यवहारिक अर्थशास्त्र और कल्याण अर्थशास्त्र में पाया जा सकता है, जिसने साबित कर दिया है कि मनुष्य के उद्देश्य केवल मौद्रिक प्रोत्साहन से अधिक भी किसी चीज से प्रभावित हो सकते हैं।

भारतीय चिन्तन का सार और आधार नैतिकता रहा है जबकि पश्चिम अपने दृष्टिकोण में विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक रहा है। प्राचीन ग्रन्थों और भारतीय विचारकों द्वारा हमेशा यह निर्धारित किया गया है कि किसी को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में क्या करना चाहिए। यहाँ तक कि गाँधीवादी और विनोबा भी अपने आर्थिक विचारों में कृषि, लघु उद्योग, आत्मनिर्भरता और सीमान्त आवश्यकताओं की समस्याओं से मानक व्यवहार रखते हैं। जे के मेहता का सकारात्मक अर्थशास्त्र भी आवश्यकता-न्यूनता के सिद्धान्त पर जोर देता है। नैतिक जीवन जीने इस दृष्टिकोण, इच्छाओं को कम करने और लालच पर नियन्त्रण के साथ काम करने से हर तरह के संघर्ष से बचा जा सकता है। इससे दुःख और शोषण के कारण सूक्ष्म से लेकर स्थूल स्तर तक समाप्त हो जाते हैं। भारतीय दर्शन का सार इस तथ्य में निहित है कि वह अपनी सभी शक्तियों और सम्पदा सहित भौतिक जगत के मूल्य और महत्व को एक वास्तविकता के रूप में पहचानता है, लेकिन वह इन्हें उच्च लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन भी मानता है।

दूसरा आयाम चार आश्रम (जीवन चरण) हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। प्रथम जीवन चरण अर्थात विद्यार्थी जीवन (ब्रह्मचर्य आश्रम) में, किसी से सीखने और क्षमता निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करने की अपेक्षा की जाती है, और हो सकता है कि वह पैसे उधार ले। दूसरा चरण गृहस्थ (गृहस्थ आश्रम) का है जहाँ व्यक्ति से अपने और परिवार के लिए आजीविका कमाने की अपेक्षा की जाती है। तीसरा चरण सेवानिवृत्त जीवन (वानप्रस्थ आश्रम) का है जहाँ व्यक्ति अपनी बचत से जीवन यापन करता है लेकिन जीवन का आनन्द लेना और परिवार के सदस्यों को बुजुर्गों की तरह सलाह देना जारी रखता है। अन्त में,

चौथा चरण संन्यास (संन्यास आश्रम) का है जहाँ व्यक्ति को सांसारिक गतिविधियों को त्यागना होता है और आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयास करना होता है। यह जीवन चक्र परिकल्पना मानक तरीके से जीवन का एक स्पष्ट वर्गीकरण और त्याग के लिए उचित उपभोग के मार्ग पर चलने का प्रस्ताव देती है। इसके अलावा यह आय अर्जित करने, बचत करने और खर्च करने के सम्बन्धित महत्व पर प्रकाश डालकर जीवन भर उपभोग को सुचारू करने की कुंजी भी देता है।

कल्याणकारी प्रकल्प का तीसरा आयाम वर्ण है। वर्ण व्यवसायों के चार-स्तरीय वर्गीकरणों के बीच श्रम विभाजन की एक आर्थिक अभिव्यक्ति है - ब्राह्मण (ज्ञान साधक), क्षत्रिय (योद्धा, राजनेता और सुरक्षाकर्मी), वैश्य (व्यवसायी), और शूद्र (कारीगर, किसान और सेवादार)।

प्रत्येक वर्ण के विशिष्ट कर्तव्य (धर्म) थे जो समाज के समग्र कल्याण में योगदान करते थे।

- ब्राह्मण का दायित्व नैतिक और धार्मिक मूल्यों के संरक्षण को सुनिश्चित करते हुए ज्ञान, शिक्षा और आध्यात्मिक मार्गदर्शन पर ध्यान केन्द्रित करना होता था।
- क्षत्रिय का दायित्व सुरक्षा और शासन के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक स्थिरता प्रदान करना होता था।
- वैश्य का दायित्व व्यापार, वाणिज्य और कृषि में संलग्न रह कर धनोपार्जन और आर्थिक स्थिरता पैदा करना था।
- शूद्र को शारीरिक श्रम और सेवाएँ प्रदान करते हुए आर्थिक उत्पादन के व्यावहारिक पहलुओं में योगदान देना था।

यह वर्गीकरण शक्ति के चार स्रोतों - अर्थात् शिक्षा, राजनीति, पूंजी और भूमि - के बीच वितरणात्मक न्याय सुनिश्चित करने का एक तरीका था। महाभारत की पुस्तक 8 (अनुशासन पर्व) और पुस्तक 12 (शान्ति पर्व) में यह सन्देश मिलता है कि जन्म, दीक्षा, किताबी ज्ञान और/या वंश किसी व्यक्ति की योग्यता तय नहीं करते। यह व्यक्त आचरण, गुण और गुण थे जो किसी की योग्यता निर्धारित करते थे, और कोई श्रेष्ठ वर्ण नहीं था। भगवद्‌गीता भी यही कहती है कि वर्णों का निर्माण व्यक्ति के गुण (योग्यता) और कर्म (कर्मों) के आधार पर होता है। पूरे जीवनकाल में, एक गृहस्थ जीवन के विभिन्न चरणों से गुजरता है और प्रत्येक चरण के लिए उपयुक्त चार जीवन-उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। ऐसा करने में, व्यक्ति को समय के साथ चुने गए व्यवसायों के विकल्पों द्वारा भी निर्देशित किया जाता है। कोई भी व्यक्ति अपनी जन्मजात क्षमताओं, शिक्षा, प्रशिक्षण और अन्य वातावरण के अनुसार कल्याण प्रकल्प में कहीं भी रहना चुन सकता है।

व्यक्तिगत जीवन चक्र के नुस्खे के अलावा, वैदिक और उत्तर वैदिक ग्रन्थों में राज्य के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। राजा या सम्राट का मुख्य कर्तव्य लोगों की रक्षा और कल्याण करना और असामाजिक तत्वों का उन्मूलन करना था।[9] इसके अलावा,

प्राचीन ज्ञान परम्परा ने कभी भी (लैसेज फेयर) मुक्त व्यापार का प्रतिपादन नहीं किया और हमेशा कीमतों, मजदूरी, हितों, मुनाफे आदि पर राज्य नियन्त्रण का सुझाव दिया। भारतीय अर्थशास्त्री जैसे आर.सी. दत्त, रानाडे, गोखले, गाँधी और अन्य लोगों ने भारतीय अर्थशास्त्र की इस परम्परा को कायम रखा।

ऋग्वेद में राष्ट्र, राष्ट्र या साम्राज्य की सुरक्षा और समृद्धि के लिए प्रार्थना करने वाले देवताओं को सम्बोधित कई भजन हैं।[10] हालाँकि, प्राचीन भारतीय विचार में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विचार एक राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं से परे है और विश्व शान्ति की कुंजी है। इससे पर्यावरण की स्थिरता वैश्विक साझाकरण और संसाधनों की देखभाल का मामला बन जाती है। प्रकृति की रक्षा करने वाली स्थायी जीवन शैली का अभ्यास करना और नैतिक और न्यायपूर्ण मुनाफा कमाना भी धार्मिक आचरण का हिस्सा था। हिन्दू धर्म में देवत्व के पाँच स्तर हैं। ये स्तर हैं - 1. ब्राह्मण, जो रूप और गुणों के बिना सार्वभौमिक चेतना है, 2. देवी-देवता, जो ध्यान केन्द्रित करने और संघर्षों से सांत्वना पाने का एक माध्यम हैं, 3. ऋषि, सन्त और उपदेशक, 4. माता-पिता और शिक्षक, और 5. जानवर, पेड़, और आकाशीय पिंड। विशेष रूप से, पाँचवाँ स्तर मनुष्य और प्रकृति के बीच सहजीवी और सम्पोषणीय सम्बन्ध सुनिश्चित करता है। यदि पौराणिक अवतार और उनके अनुक्रमिक पुनर्जन्म प्रजातियों के विकास के प्रति श्रद्धा और जीवन रूपों के प्रति सम्मान पैदा करते हैं, तो जंगलों में पवित्र उपवनों के प्रति श्रद्धा, वनीकरण के प्रयासों और प्राकृतिक सन्तुलन के रखरखाव को सुनिश्चित करती है। इसी तरह, हिंसा को कम करने की अपील के अलावा, शाकाहारी भोजन के लिए प्रोत्साहन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन है कि हमें पानी बचाने, वनों की कटाई से बचने और टिकाऊ जीवन के लिए कार्बन पदचिह्न को कम करने की आवश्यकता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में भूमि को वसुधा या वसुन्धरा माना गया है। संस्कृत मूल से लिया गया वसुन्धरा शब्द दो तत्वों से बना है - वसु, जिसका अर्थ है धन या खजाना, और धरा, जिसका अर्थ है पृथ्वी या वाहक। ये शब्द दर्शाते हैं कि भूमि को धन सृजनकर्ता के रूप में देखा जाता था न कि अपने आप में धन के रूप में, यहाँ तक कि उस समाज में भी जो कृषि-आधारित था। प्राचीन भारत में वनों का उल्लेख वैदिक ग्रन्थों, महाकाव्यों और पुराणों में बखूबी किया गया है। प्रागैतिहासिक भारत में वनों और उनके टिकाऊ प्रबन्धन से सम्बन्धित सिद्धान्तों का अच्छी तरह से वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए, वेद वनों के उपयोग और प्रबन्धन के बारे में विवरण प्रदान करते हैं। प्राचीन भारत में, कई पौधों को उनके प्राकृतिक, सौन्दर्यपूर्ण और औषधीय गुणों के कारण पवित्र माना जाता था। इसके अलावा, उन्हें किसी विशेष देवता या देवी से निकटता के कारण भी महत्वपूर्ण माना जाता था।

अत: स्पष्ट है विज्ञान, दर्शन, कला और राजनीतिक अर्थव्यवस्था जैसे कई क्षेत्रों में प्राचीन भारतीय योगदान बहुत बड़ा है और आर्थिक विचार भी सार्वजनिक वित्त, मूल्य और

ब्याज निर्धारण, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि के कई क्षेत्रों को व्याख्यायित करते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राचीन भारत के कुछ आर्थिक विचार वर्तमान समय में आर्थिक नीतियों के लिए नुस्खे के रूप में प्रासंगिक हैं। प्राचीन आर्थिक विचारों में धन के मूल्य और महत्व को इस विश्वास के साथ अच्छी तरह से स्थापित किया गया है कि एक मजबूत आर्थिक प्रणाली के बिना लोगों का विकास और कल्याण सम्भव नहीं है। न्यूनतम मजदूरी, श्रम कल्याण, मूल्य नियन्त्रण, ब्याज दर प्रबन्धन, कराधान सिद्धान्त आदि प्राचीन ग्रन्थों में तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में निर्धारित किए गए हैं। हालाँकि, सभी आर्थिक गतिविधियों के पीछे धर्म की अन्तर्निहित धारा और नैतिकता की प्रेरक शक्ति प्राचीन नुस्खों का मूल सार थी। इसलिए, प्राचीन आर्थिक विचारों के समग्र दृष्टिकोण को उपयोगिता अधिकतमीकरण और लाभ अधिकतमीकरण के शैलीगत एक-आयामी उद्देश्यों उन्नत आर्थिक जीवन के लिए मार्ग प्रशस्त करना पड़ सकता है। कल्याणकारी प्रकल्प की अवधारणा के लिए याद रखना महत्वपूर्ण है - कि जीवन के चार उद्देश्य हैं, जिन्हें जीवन के चार चरणों से गुजरते हुए प्राप्त किया जाना है, और वे चार प्रकार के व्यवसायों से भी अनुकूलित होते हैं जिन्हें व्यक्ति अपनी रुचि या योग्यता के अनुसार चुन सकता है। इसके अलावा, यदि व्यक्तियों को उनके निजी हितों को पूरा करने के लिए छोड़ दिया जाए तो पर्यावरणीय स्थिरता हासिल नहीं की जा सकती। उनके व्यवहार को धार्मिक आचरण और त्यागपूर्ण उपभोग की अपील द्वारा अनुकूलित करना होगा। ऐसी धार्मिक और संयमित जीवनशैली न केवल पृथ्वी को सन्धारणीय बनाएगी बल्कि लोगों को सन्तुष्ट और शान्त भी बनाएगी।

सन्दर्भ

1. चौरे तपन ,चाँदनीवाला वि.एम. (2006) 'वैदिक पृष्ठभूमि में कल्याणवादी अर्थशास्त्र एवं उसका सातत्य', (सम्पादक) दुबे सीताराम, *वैदिक संस्कृति और उसका सातत्य,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली
2. मेदिनीकोष - 17.2
3. अथर्ववेद - 12.1.63
4. मनुस्मृति - 1.88,10.75
5. ऋग्वेद - 10.117.5
6. यजुर्वेद - 7.14
7. यजुर्वेद - 4.8
8. ऋग्वेद - 1.3.2
9. (शुक्रनीति 1/14) शुक्रनीतिसार - 1, 7-9
10. ग्रिफिथ्स, आर. (1897). ऋग्वेद के भजन संस्करण ii https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.47262

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 33-47)
UGC-CARE (Group-I)

प्राचीन धर्मग्रन्थों में भारत के भौगोलिकता की अवधारणा : महाभारत एवं विष्णुपुराण के विशेष सन्दर्भ में

संगीत कुमार रागी*

भारत के भौगोलिक सीमा, हिन्दू ग्रन्थों की प्राचीनता, उनके लेखन का समय काल, इत्यादि को लेकर धर्मग्रन्थों में लिखित इतिहास बोध एवं आधुनिक इतिहास लेखन में बहुत गहरा मतभेद है। आधुनिक इतिहास बोध में रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, वेद, इत्यादि का लेखन विगत अधिकतम आठ हजार साल के भीतर हुआ है। क्योंकि इनका मानना है कि मानव सभ्यता की शुरूआत इसी कालखण्ड में हुई है। दूसरी ओर यदि धर्मग्रन्थों में पात्रों एवं घटनाओं के विवरणकाल को देखें तो इनके लेखन का इतिहास लाखों वर्ष पीछे चला जाता है। इनमें कौन सही है, कौन गलत है, यह आलेख का विषय नहीं है, लेकिन इसका विश्लेषण पाठकों के लिए जानना आवश्यक है। आलेख का मूल यह है कि क्या भारत के लोगों को स्वयं के भारतीय होने का और भारत के भूगोल का ज्ञान था अथवा नहीं? महाभारत एवं विष्णुपुराण में वर्णित भारत के जनपदों, पहाड़ों, नदियों इत्यादि के उल्लेख से तो यही लगता है कि आज से हजारों साल पहले इन ग्रन्थों के लेखकों को भारत की भौगोलिक ज्यामिति का ज्ञान था।

बीज शब्द : मन्वान्तर, महायुग, भौगोलिकता, धर्मग्रन्थ, इतिहास

*आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail: sangit_ragi@yahoo.co.in

शायद ही दुनिया के किसी भी देश में इतिहास लेखन को लेकर इतना अन्तर्विरोध और वाद-विवाद नहीं है, जितना भारत में है। यह वाद-विवाद सिर्फ औपनिवेशिक इतिहासकारों और गैर-औपनिवेशिक इतिहासकारों के बीच भारत के इतिहास की व्याख्या को लेकर नहीं है। वह तो है ही लेकिन, उस से ज्यादा विवाद भारत के शास्त्रीय धर्मग्रन्थों के लेखन के कालखण्ड उनकी इतिहास बोध को लेकर है। धर्मग्रन्थों में निहित समयकाल के वर्णन से आधुनिक इतिहास का कालबोध मेल नहीं खाता। धर्मग्रन्थावलियों के इतिहास लेखन से तात्पर्य उस कालखण्ड से है, जिसे भारतीय धर्मग्रन्थ सुझाते हैं, जिस पर आधुनिक इतिहासकार बहस करते हैं। पश्चिमी देशों में संगठित मानव इतिहास का उद्भव बाइबिल से लगभग 3700 वर्ष पूर्व शुरू होता है (रामसिंह, 2004)। उस युग के निर्धारण को लेकर ईसाई धर्मशास्त्र का मानना है कि मानव सभ्यता की शुरूआत यहीं से शुरू हुई। हालाँकि यहूदी पौराणिक कथाएँ भी इस से बहुत अलग नहीं हैं। इस्लाम, जिसे यहूदी धर्म और ईसाई धर्म की तरह ही अब्राहमिक धर्म का हिस्सा माना जाता है, इसका मानना है कि मानव समाज आदम और हौआ के ही वंशज या सन्तान हैं जो पहले इंसान भी थे। हालाँकि, इस्लामी धर्मशास्त्र किसी समय काल को निर्दिष्ट नहीं करता है।

इसके विपरीत, हिन्दू धर्मशास्त्रों का मानना है कि मानव इतिहास की शुरूआत सहस्राब्दियों पहले ही हो चुकी थी। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार सृष्टि का क्रम चक्रीय है, और इस सृष्टि की आयु लगभग 4 अरब 32 लाख करोड़ वर्ष है (मैन्गुम, 2015)। जिसे ब्रह्मा के एक दिन और एक रात के बराबर माना जाता है। हिन्दू खगोल विज्ञान के अनुसार सृष्टि पाँच घूर्णन प्रणालियों पर आधारित है जिनमें से पृथ्वीमण्डल, सौरमण्डल, चन्द्रमण्डल, परमेष्ठीमण्डल और स्वयम्भूमण्डल को वर्णित किया गया है। जब पृथ्वी अपनी धुरी पर 1600 किलोमीटर प्रति घण्टे की गति से घूमती है और 24 घण्टे में एक चक्कर पूरा करती है, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर दिन एवं रात होते हैं। दूसरा, पृथ्वी 100000 किलोमीटर प्रति घण्टे की गति से सूर्य की परिक्रमा हुए 365 दिनों में अपना एक चक्कर पूरा करती है और यह एक वर्ष के बराबर है। तीसरा, सूर्य आकाशगंगा का चक्कर 30 करोड़, 67 लाख और 20 हजार वर्षों में पूरा करता है, जो एक मन्वन्तर के बराबर है।[1]

प्रत्येक मन्वन्तर में 71 महायुग होते हैं और प्रत्येक महायुग में चार युग हैं, और प्रत्येक युग 432000 वर्ष का होता है जिसे 4; 3; 2; 1 से गुणा पर क्रमशः सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का ज्ञान होता है। अभी तक केवल सात मन्वन्तर ही बीते हैं और वर्तमान आठवें मन्वन्तर में 26 महायुग बीत चुके हैं और अभी 45 महायुग आने बाकी हैं। वर्तमान में 27वाँ महायुग जारी है, और इस महायुग में सतयुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग का अन्त हो चुका हैं। आज जिस युग में हम है वह कलियुग है, और इसकी शुरूआत करीब 5600 साल पहले हुई थी।[2] चूँकि राम का सम्बन्ध त्रेता से है तो कह सकते हैं की रामायण की रचना भी कम से कम 864000 वर्ष पूर्व हुई होगी ('आर्यवर्त का प्राचीन इतिहास' जो ठाकुर नगीनाराम परमार द्वारा 'त्वारिख-ए-कदीम' शीर्षक से प्रकाशित हुई, जिसका हिन्दी अनुवाद ठाकुर रामसिंह ने

किया, अखिल भारतीय इतिहास परिषद्, 2004)। इन ग्रन्थों के आधार पर मानव सभ्यता के उदय का इतिहास तो उन तिथियों तक जाता है, जिसके विषय में आधुनिक इतिहासकारों को कोई आभास नहीं है और इसलिये उनकी व्याख्या में त्रुटियों का होना स्वाभाविक है।

उदाहरण के लिए, पुराणों के विवरण के अनुसार विश्व के सभी वंश एवं समुदाय आर्यों/भारतीयों की ही सन्तानें हैं, जो दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में जाकर बस गये और अपना साम्राज्य स्थापित किया। मानव जीवन का प्रारम्भ लगभग 1,97,29,49106 ई. में हुआ (आर्यवर्त का प्राचीन इतिहास जो ठाकुर नगीनाराम परमार द्वारा 'त्वारिख-ए-कदीम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसका हिन्दी अनुवाद ठाकुर रामसिंह ने किया, अखिल भारतीय इतिहास परिषद्, 2004, पृ. 58-59)। सबसे पहले ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए थे, इसीलिये उन्हें स्वयम्भू भी कहा जाता है। अपने संकल्प से उन्होंने चार ऋषियों की रचना की, लेकिन इन ऋषियों ने अन्य लोगों की उत्पति कर संख्या बढ़ाने से मना कर दिया। परिणामस्वरूप ब्रह्मा ने पुन: सप्तऋषियों की रचना की, जिनसे देवताओं की उत्पत्ति हुई। वे बिना माँ के ही जन्मे थे। इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा के द्वारा ही मनुष्य की उत्पत्ति हुई। महाभारत में ऋषियों की उत्पति एवं उनकी सन्तानों की उत्पति के सम्बन्ध में आख्यान थोड़ा अलग है, परन्तु उनमें कुछ समानताओं को भी देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर अन्धकार और अज्ञान के समय जब इस ग्रह पर कुछ भी नहीं था, उस समय एक दिव्य अण्ड निकला। फिर उस से भगवान् ब्रह्मा प्रकट हुए जिन्होंने फिर दस प्रचेत, दक्ष और उनके सात पुत्र, सात ऋषियों, 14 मनु और फिर विश्वदेव, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्य, पिशाच, गुह्यक, पितर, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, जल, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशाएँ, संवत्सर, दिन, रात आदि की रचना की (अनुक्रमणिका पर्व, पृष्ठ 22, महाभारत, प्रथम अध्याय, गीता प्रेस, गोरखपुर)।

यह विवरण आधुनिक इतिहास लेखन से मेल नहीं खाता है, क्योंकि आधुनिक इतिहासकार मानव इतिहास को मोटे तौर पर चार युगों अर्थात् पाषाण युग, कांस्य युग, लौह युग और कृषि युग में वर्गीकृत करता है। मानव इतिहास की कहानी हिमयुग के लगभग अन्त से शुरू होती है, जो आज से लगभग 9600 ईसा पूर्व जलवायु तेजी से गर्म होने के परिणामस्वरूप हुई। इस के पश्चात् मध्यपाषाण युग की शुरूआत होती है, जहाँ मुख्य रूप से खानाबदोश लोग रहते थे और बहुत न्यून संख्या में व्यवस्थित जीवन की शुरूआत हुई। हालाँकि कुछ विद्वान इस तर्क से असहमत हैं, और वे नया तर्क पेश करते हैं कि मध्यपाषण युग में स्थायी रूप से बसने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। इन तिथियों का निर्धारण भूवैज्ञानिक और मानवशास्त्रीय विश्लेषण के आधार पर हुआ है। मध्य पाषाण युग का उदय वि-हिमनद की प्रक्रिया के फलस्वरूप हुआ और इस से समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हुई। फिर नवपाषाण युग की शुरूआत हुई। कई लोगों की यह मान्यता है कि यह सब 10000 ईसा पूर्व से लेकर 2200 ईसा पूर्व के बीच का समय रहा होगा। इसके बाद ताम्र युग आया, यह प्रागैतिहासिक युग था जब अधिकतर लोग स्थायी रूप से बसने लगे थे और कृषि की शुरूआत हो चुकी थी।

उन्होंने स्वयं और बस्तियों की सुरक्षा के लिए पहले पत्थरों, फिर कांस्य और अन्त में लौह धातु से बने हथियारों का विकास किया।

महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत को लेकर आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार आज से लगभग 5300 साल पहले तकरीबन 3300 से 1300 ईसा पूर्व के दौरान एक सुस्थापित हड़प्पा सभ्यता या सिन्धु घाटी सभ्यता फल-फूल रही थी। आधुनिक इतिहासकार मानते हैं कि भारतीय सभ्यता के बारे में हम जो कुछ भी जानते हैं, वह सभी इसी कालखण्ड में हुआ। भारत के उत्तरी भागों में कांस्य युग के अन्त और लौह युग की शुरूआत के बीच वेदों की रचना हुई होगी। सभी वेद इसी अवधि में लिखे गये थे। इसके अलावा, राम और कृष्ण की कहानियाँ, जिनके बारे में शास्त्रों में लाखों साल पहले होने के आख्यान मिलते है और उपनिषद्, पुराण, महाभारत और अन्य धर्मग्रन्थ, जो भारतीय संस्कृति और इसकी सभ्यता को परिभाषित करते हैं, इसका लेखन भी इसी अवधि के दौरान पूर्ण हुआ।

नये शोधों ने इन मान्यताओं को ध्वस्त किया है। उदहारणस्वरूप, नासा एवं मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा शोध के जरिये कार्बन डेटिंग पद्धति से यह सिद्ध किया गया है कि राम सेतु 7000 साल पुराना है। पुष्कर भटनागर (2004) ने प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर का उपयोग करके भगवान् राम के जन्म के बारे में वाल्मीकि द्वारा बताए गये ग्रह, चन्द्रमा और नक्षत्र की सटीक स्थिति का उपयोग करते हुए जो खगोलीय आँकड़ा निकाला है, वह 5114 ईसा पूर्व यानी 7140 साल पहले का है, जैसा कि उन्होंने अपनी पुस्तक, द डेटिंग द एरा ऑफ लॉर्ड राम में चर्चा की है। हालाँकि, नीलेश ओक ने राम के जन्म को 12209 ईसा पूर्व यानी लगभग 14000 साल पहले का अनुमान लगाया है। उनके अनुसार महाभारत लगभग 8000 साल पहले हुआ था।

हालाँकि भगवान् राम या भगवान् कृष्ण का अस्तित्व शास्त्रों में वर्णित तिथि और उनके जीवन से जुड़ी कहानियों से मेल नहीं खाता। संक्षेप में, रामायण और महाभारत के पात्रों से जुड़े स्थानों और तीर्थस्थलों और उनके मौखिक इतिहास ने इस तरह की कहानियों को और बढ़ावा दिया है, इस तथ्य के बावजूद कि आधुनिक अर्थों में ऐतिहासिक साक्ष्य अभी भी उन्हें प्रमाणित नहीं कर पाये हैं। इतिहास के पुनर्लेखन के लिए रामसेतु, द्वारका और अन्य स्थानों पर शोध-कार्य चल रहा है, हालाँकि इस शोध के जरिये भी कुछ नया परिणाम सामने नहीं आया है। अभी तक जो शोध से परिणाम निकले हैं, वे महाकाव्यों और हिन्दू धर्मग्रन्थों में बतायी बातों को सही सिद्ध नहीं करते हैं। इसके अलावा यह शोध इतिहास के समय-सीमा पर खड़े हुए विवाद को सुलझाता हुआ नहीं दिखता है, जैसा कि पुराणों में वर्णित है। इन पुराणों को आधुनिक इतिहासकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों के रूप में वर्णित किया है, जिसके लेखन की समयावधि पाँचवी और छठी शताब्दी ईस्वी-पूर्व मानी जाती है।

हिन्दू ग्रन्थों के लेखन में समय और युग की अवधारणा पर चर्चा करना इसलिये भी प्रासंगिक हो जाता है, ताकि यह देखा जा सके कि आधुनिक इतिहास लेखन और पौराणिक विवरण में भारतीय अतीत और साहित्यिक कृतियों के बीच किस प्रकार का अन्तर है।

विश्लेषण से यह भी ज्ञात होता है कि आधुनिक इतिहास और पौराणिक इतिहास के बीच एक गहरा मतभेद है। जहाँ एक ओर राष्ट्रवादी और सांस्कृतिक इतिहासकारों का झुकाव धार्मिक ग्रन्थों की ओर होता है, तो दूसरी ओर आधुनिक इतिहासकार वैज्ञानिक उपकरणों और तकनीकों पर आधारित तथ्यों और साक्ष्यों पर अधिक जोर देते हैं। भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वर्णन में विचारों की इस प्रतिस्पर्धा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जैसा हर राष्ट्रवादी वर्णन में प्राचीन समय को अक्सर स्वर्णिम काल के रूप में देखा गया है, जो समय के साथ और बाहरी लोगों या आक्रमणकारियों के हमले के साथ खत्म हो गया, हालाँकि अंग्रेजों ने भारत को न केवल राष्ट्र के रूप में स्वीकार करने से इनकार किया, बल्कि उनका यह भी कहना था कि भारतीय सभ्यता का न तो कभी स्वर्णिम अतीत रहा न ही वह कभी समृद्ध थी। अंग्रेजों की मानें तो भारतीय सभ्यता अनुपयोगी थी। भारत के विषय में हीगल की समझ से यह साफ है कि भारत को लेकर अज्ञानता और पूर्वाग्रह का प्रभाव पश्चिम के सबसे बड़े बुद्धिजीवियों पर भी रहा है (इंडेन, 1986)। अपने औपनिवेशिक एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए, औपनिवेशिक इतिहासकार ऋग्वेद और अन्य वेदों को ज्ञान के प्रकाश के भण्डार के रूप में नहीं बल्कि चरवाहों के गीत रूप में देखते हैं। उन्होंने हिन्दू धर्म सहित सभी भारतीय धर्मों को अन्धकार में डूबा हुआ दर्शाया है, और वे यह मानते हैं कि हिन्दुओं को रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासों से भारतीयों को आगे बढ़कर बचाने (इंडेन, 1986) के लिए अंग्रेज उत्तरदायित्व से बँधे हुए थे। ब्रिटिश संसद में भारतीय अधिनियम 1935 पर चर्चा करते हुए (रागी, 2022) चर्चिल ने तो यहाँ तक कह दिया कि भारत जैसा कुछ भी अस्तित्व में रहा ही नही है, और यदि है भी तो वह भूमध्य रेखा की तरह काल्पनिक है। हालाँकि इन सबके विपरीत कुछ ब्रिटिश विद्वानों ने वेद, उपनिषद्, पुराण, योगसूत्र, भगवद्गीता आदि हिन्दू धर्मग्रन्थों में निहित ज्ञान की काफी सहारना भी की है। जर्मन प्राच्यविद् मैक्स मूलर से लेकर शोपेनहावर तक विद्वानों ने भारत, भारतीय सभ्यता और हमारी अकूत ज्ञान सम्पदा की बहुत प्रशंसा की है।

भारत के राष्ट्र होने या न होने पर जब सवाल खड़े किये जाने लगे तो भारतीय विद्वानों ने भी इस सवाल का जवाब तेज-तर्रार ढंग से दिया। गाँधी ने ईसाई धर्म की सर्वोच्चता को खारिज कर दिया। उन्होंने यह घोषणा की कि उनका धर्म उनकी सभी आध्यात्मिक खोज को तृप्त करता है, और उन्हें ईसाई धर्म की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है (गाँधी, 1909)। इसके अलावा, अपनी मूल रचना 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने भारत को पश्चिमी ढाँचे और मुहावरों में परिभाषित करने से इनकार कर दिया और भारतीय राष्ट्र को सभ्यता के रूप में देखा है। गाँधी ने कहा कि अंग्रेजों के आने से बहुत पहले भारत एक राष्ट्र था, चूँकि यह एक राष्ट्र था इसीलिये अंग्रेज एक शक्तिशाली साम्राज्य को स्थापित कर सके। इसके अलावा, गाँधी ने शंकराचार्य द्वारा तीर्थस्थलों और मठों की स्थापना का भी उल्लेख किया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय राष्ट्र की एक सांस्कृतिक पहचान भी है। नेहरू ने भारत की खोज में

भारत को एक प्राचीन राष्ट्र के रूप में दर्शाया है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि अंग्रेजों के आने से बहुत पहले से ही भारतीयों में 'राष्ट्रवाद' की भावना थी।

हिन्दू राष्ट्रवादी इससे कहीं आगे जाकर भारत को सिर्फ एक प्राचीन राष्ट्र नहीं, बल्कि, एक ईश्वर निर्मित राष्ट्र के रूप में देखते हैं, जिसका एक निश्चित उद्देश्य है। उनके लिए यह ईश्वर ही है जिसने इसकी सीमा निर्धारित की, क्योंकि, यह उनके अवतार के लिए पसन्दीदा स्थान था। रामायण, महाभारत, पुराण और अन्य ग्रन्थ इस कथा को सत्यापित करते हैं, क्योंकि उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक सभी स्थानों, पहाड़ों और नदियों की कुछ कहानियाँ हैं, जो रामायण और महाभारत के चरित्र और देवी-देवताओं की कहानियों से विशिष्ट रूप से जुड़ी हुई हैं। हिन्दू राष्ट्रवादियों का आरोप है कि आधुनिकतावादियों और औपनिवेशिक इतिहासकारों ने जानबूझकर भारतीय इतिहास को विकृत किया है। इन इतिहासकारों का मुख्य उद्देश्य भारतीय जनमानस के मन में अपनी संस्कृति एवं राष्ट्र के प्रति हीन भावना पैदा करना था। आधुनिक अर्थों में भारत का अस्तित्व था या नहीं, यह कहना कठिन है। लेकिन यह तर्क देना कठिन नहीं है कि औपनिवेशिक शासकों ने इसकी संस्कृति और सभ्यता को बदनाम करने की पूरी कोशिश की। वह भूमि, जिसमें सैकड़ों भाषाओं और प्राचीनलिपियों वाली चार करोड़ पाण्डुलिपियाँ मौजूद हों, वह भी नालन्दा को जलाने के बावजूद। वह समाज अज्ञानी एवं अशिक्षित तो नहीं रहा होगा। जबकि प्राचीन ग्रीक के पास सिर्फ 15 से 20 हजार प्राचीन पाण्डुलिपियाँ हैं (देवरॉय, 2020), जिसे पश्चिमी सभ्यता का स्रोत माना जाता है। वह भूमि जिसने विश्व को शून्य से लेकर उन्नत खगोल विज्ञान, आयुर्वेद, योगसूत्र, मन्दिर वास्तुकला, और वैज्ञानिक सोच दी एवं अपनी उन्नत नौसेना के जरिये मलक्का जलडमरू मध्य से गुजरने वाले व्यापारिक जहाजों को दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों तक संरक्षण देता था। जो मुगल साम्राज्य के पतन के समय भी विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में 32 प्रतिशत का योगदान दे रहा था, वह देश गरीब, अशिक्षित और अकुशल लोगों का देश तो नहीं ही रहा होगा (सान्याल, 2024)। मैकॉले के समय में शिक्षा पर किये गये सर्वेक्षण के अनुसार भारत में लगभग 12 लाख स्कूल एवं कॉलेज थे। कोलम्बस को गरीब भारत की तलाश नहीं थी और वास्को डी गामा सपेरों की भूमि की तलाश में यात्रा पर नहीं निकला था। बाद में उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भारत की यात्रा में उनका मार्गदर्शन करने वाले भारतीय व्यापारियों के पास ज्यादा शक्तिशाली बेड़े थे। बहुत कम लोग जानते हैं कि भारतीयों ने नेविगेशन के लिए समुद्र में अक्षांश मापने के विज्ञान में महारत हासिल कर ली थी और वास्को डी गामा को भारत की राह का मार्गदर्शन करने वाला व्यक्ति गुजरात का कान्हा था (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2010)। लेकिन अंग्रेजों ने बौद्धिक और सार्वजनिक क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति नकारात्मक विचारों को फैलाना शुरू किया, जो समय के साथ इतना गहरा बैठ गया कि भारतीय जगत् आज तक उससे नहीं निकल पाया है।

भारतीय ग्रन्थों में भारत की भौगोलिक अवधारणा

राजनीतिक अवधारणा के रूप में प्रादेशिकता या क्षेत्रीयता शब्द लोगों के लिए एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र को सन्दर्भित करता है। प्राचीन भारत के चित्रण को समझने के लिए, भू-राजनीतिक क्षेत्र और भू-सांस्कृतिक क्षेत्र के बीच अन्तर करना आवश्यक है। राजनीतिक सीमाएँ कृत्रिम हैं, एवं इसकी सीमा का निर्धारण भी मानव द्वारा किया गया है। इस सीमांकित क्षेत्र पर सम्प्रभु-राजनीतिक इकाई का प्राधिकार स्थापित है, जो इसके अधिकार क्षेत्र की सीमाओं को दर्शाता है। राजनीतिक सीमाएँ अक्सर राजनीतिक संघर्षों, सन्धियों और समझौतों का परिणाम होते हैं। दूसरी ओर, भू-सांस्कृतिक सीमाएँ उन लोगों को दर्शाती हैं, जो सभ्यता और सांस्कृतिक रूप से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं एवं वे इस क्षेत्र की प्राकृतिक भौतिक विशेषताओं जैसे नदियों, पहाड़ों, पठारों से, रेगिस्तानों, महासागरों आदि से अपने को जुड़ा एवं उन्हें अपना मानते हैं। आधुनिक दुनिया में यह सामान्य घटना है जब, राजनीतिक सीमाएँ अपनी सम्प्रभु भूमि के सीमांकन के लिए क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं के साथ प्रतिध्वनित होती हैं। भारत इस घटना का अपवाद नहीं है।

प्राचीन भारत का वर्णन विभिन्न प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में भारतवर्ष के विभिन्न भागों की प्राकृतिक, भौतिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के अनुसार किया गया है। दूसरे शब्दों में, हम सही ढंग से तर्क दे सकते हैं कि प्राचीन भारत की कोई निश्चित राजनीतिक सीमाएँ नहीं थीं लेकिन इसकी एक भौगोलिक सांस्कृतिक इकाई के रूप में पहचान थी, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। आज के राष्ट्र राज्य के रूप में जब हम, उन्हें देखने का जड़ आग्रह करते हैं, तो वह हमारी भूल होगी। प्राचीन भारत में प्रादेशिकता या क्षेत्रीयता का विचार आज के विचार से काफी अलग है। भारत में जब कोई हिन्दू किसी देवता की पूजा या हवन का अनुष्ठान करता है तो वह निम्न संकल्प मन्त्र से इसकी शुरूआत करता है -

ऊँ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमेयुगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके भारतवर्षे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तस्य अमुकक्षेत्रे अमुकदेशे अमुकनगरे (ग्रामेवा) श्रीगङ्गायाः उत्तरे/दक्षिणे) दिग्भागे देवब्राह्मणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपतिवीरविक्रमादित्यसमयतः .... संख्या-परिमिते प्रवर्त्तमानसंवत्सरे प्रभवादिषष्ठि-संवत्सराणां मध्ये .... नामसंवत्सरे, ...।

संकल्प मन्त्र का सार, यह है कि वर्तमान में श्वेतवाराहकल्प और वैवस्वत मन्वन्तर, 28वाँ महायुग और कलियुग का पहला चरण है। इसके बाद भारतवर्ष, जम्बूद्वीप, भरतखण्ड, आर्यावर्त से शुरू होकर ब्रह्मावर्त, फिर क्षेत्र, देश, शहर और गाँव तक का नाम लेकर अपने गोत्र-पितरों के आह्वान का संकल्प लेता है। गाँव की छोटी इकाई से लेकर पूरे आर्यावर्त, भारत के सांस्कृतिक उद्बोधन का इस से बेहतर होने का उदाहरण नहीं दिखाई देता है। जिसमें अपने को न जानने वाला व्यक्ति भी पुरोहित के कहने पर अपने को भारत से जोड़ता है। जम्बूद्वीप से शुरू होता है और उसके बाद भारतवर्ष और भरतखण्ड और आर्यावर्त और

ब्रह्मावर्त आते हैं। इसका मतलब है कि जम्बूद्वीप का क्षेत्रीय विस्तार सबसे बड़ा है, जिसके भीतर भारतवर्ष मौजूद है एवं जिसके भीतर एक भरतखण्ड भी है, इसमें आर्यावर्त से लेकर ब्रह्मावर्त को समाहित किया गया है। यहाँ महत्वपूर्ण प्रश्न जो सामने आता है, वह यह है कि क्या प्राचीन काल में भारतीयों के पास भारत की एक इकाई के रूप में भौगोलिक अभिव्यक्ति (टेरिटोरियल एक्सप्रेशन) थी? यदि हाँ, तो क्या जम्बूद्वीप से लेकर आर्यावर्त या भारतवर्ष तक प्रयुक्त सभी शब्दों का प्रादेशिक अर्थ एक ही है या इनका अर्थ अलग-अलग है?

महाभारत में विश्व के सात द्वीपों की चर्चा है[3], जिनमें से एक जम्बूद्वीप है। अन्य द्वीप हैं प्लक्षद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। इनका नामकरण विशिष्ट प्रयोजन के आधार पर किया गया है (महाभारत के प्रथम ग्रन्थ पृष्ठ 22, गीता प्रेस गोरखपुर)। जम्बूद्वीप का वर्णन एक ग्रन्थ से दूसरे ग्रन्थ और एक धर्म से दूसरे धर्म में भिन्न-भिन्न रूप से होता है। उदाहरण के लिए, मार्कण्डेय पुराण के अनुसार जम्बूद्वीप दक्षिण और उत्तर में चिपटा हुआ तथा बीच में ऊँचा और चौड़ा है। ऊँचे क्षेत्र को इलावृत्त या मेरुवर्ष कहा जाता है, जिसके शीर्ष पर भगवान् ब्रह्मा की नगरी ब्रह्मपुरी है, जो आठ नगरों से घिरी हुई है, जिनमें से एक इन्द्र की और सात अन्य देवताओं की है। बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के अनुसार भी मेरु पर्वत अर्थात् सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य में है और इस द्वीप का आकार त्रिभुज जैसा है। महाद्वीप का विस्तार दस हजार योजन तक है; इन दस हजार योजन में से चार हजार योजन के क्षेत्र में समुद्र हैं, वहीं, हिमालय पर्वत तीन हजार योजन में फैला है और तीन हजार योजन पर मनुष्य निवास करते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में पूरी धरती को सात के बजाय चार भागों में बाँटा गया है। हिन्दू धर्मग्रन्थों की तरह बौद्ध ग्रन्थों में भी इस भूमि को धर्म की भूमि बताया गया है, जिसका उपयोग मनुष्य जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए करता हैं। महायान बौद्ध धर्म के क्षितिगर्भ बोधिसत्व पूर्वप्रणिधान सूत्र में कहा गया है कि अशोक के पुत्र ने अनुराधापुर के राजा देवनम्पिया तिस्सा के दरबार में जो अपना परिचय दिया था, वह उस समय जम्बूद्वीप का भाग था, वह भाग आज के समय में श्रीलंका का हिस्सा है।

यहाँ कहने की जरूरत नहीं है कि मगध साम्राज्य के दौरान जम्बूद्वीप को उस जगह दर्शाया गया है, जिसे हम आज भारत के रूप में जानते हैं। भरत खण्ड शब्द का अर्थ है कि भारत राजा भरत के वंशजों की भूमि है। यहाँ भरत एक समुदाय का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। ऋग्वेद के सातवें मण्डल में कहा गया है कि दस राजाओं के युद्ध के बाद जो परिणाम निकला, उसके बाद भरत विश्वविजयी हो गए। यहाँ यह जिक्र करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि भारतीय परम्परा में, तीन भरत हैं; एक सतयुग में, एक त्रेता में और एक द्वापर में। सतयुग के भरत ऋषि ऋषभदेव के पुत्र थे, वहीं त्रेता के भरत भगवान् राम के भाई हैं, और द्वापर में भरत राजा दुष्यन्त के पुत्र थे, जिन्होंने चक्रवर्ती राजा के रूप में प्रसिद्धि हासिल की। वहीं जैन धर्म-ग्रन्थ के अनुसार, ऋषभदेव पहले तीर्थंकर हैं। उनका बेटा एक चक्रवर्ती सम्राट बना, जिसने एक समय में बिना हिंसा का तरीका अपनाए दुनिया पर राज किया था (जैन, 2016)। इक्ष्वाकु राजा को भी भरत के पुत्र या वंशज के रूप में जाना जाता है, वहीं त्रेता में राम इक्ष्वाकु

राजा के ही वंशज थे। इस देश का नाम भगवान् राम के भाई भरत के नाम पर हुआ है ऐसा मानने वाले बहुत कम ही हैं।

यहाँ प्रमुख विमर्श यह है कि इस देश को दुष्यन्त के वीर चक्रवर्ती पुत्र के नाम पर भारत कहा जाने लगा, जिसने ऋषि कण्व की पुत्री शकुन्तला से विवाह किया था। हालांकि, महाभारत में यह शब्द शुरू से अन्त तक बार-बार आता है। आर्यावर्त शब्द जम्बूद्वीप और भरत खण्ड की अपेक्षा अधिक बार आया है। आर्यावर्त का उल्लेख मनुस्मृति से लेकर पुराणों तक में मिलता है। मनुस्मृति में लिखा है - आ समुद्रात् तु वै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात्। तयोरेवन्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधा:।। इस वाक्य का हिन्दी अर्थ है कि पश्चिम भूमध्य सागर और पूर्व प्रशान्त महासागर के मध्य में जो भूमि है, पर्वतों से युक्त है, जहाँ सरस्वती और दृषद्वती नदियाँ बहती हैं, जो देवताओं का बनाया हुआ देश है और जो ब्रह्माण्ड के आरम्भ से अस्तित्व में है, वह आर्यावर्त है (द्विवेदी, 1917)। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि मनुस्मृति के कई संस्करण हैं और यह सुझाव देना कठिन है कि उनमें से कौन सा मूल संस्करण है। प्रामाणिकता की कोई गारंटी नहीं है लेकिन आम तौर पर 1760 में विलियम जोन्स द्वारा अनुवादित संस्करण को सबसे प्रामाणिक माना जाता है। दूसरे, मनुस्मृति में आर्यावर्त का वर्णन अमरकोश में उसके वर्णन से मेल नहीं खाता है, जिसके अनुसार आर्यावर्त गंगा नदी और विन्ध्य के उत्तर के बीच की भूमि थी। हालांकि विष्णुपुराण भारत और भारतवर्ष के बीच अन्तर नहीं करता है। महाभारत में वर्णित भारत की क्षेत्रीय या भौगोलिक अभिव्यक्ति की प्रतिध्वनि कई पुराणों में भी मिलती है। विष्णुपुराण के बत्तीसवें श्लोक में कहा गया है कि 'उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।' इसका मतलब है कि दक्षिण में समुद्र और उत्तर में हिमालय के बीच की भूमि को भारतवर्ष कहा जाता है और हम इसी भूमि की सन्तान हैं। सबसे महत्वपूर्ण और रोचक बात जो आसानी से समझ में आती है, वह है नदियों, पहाड़ों और जनपदों सहित क्षेत्रों की विस्तृत सूची। महाभारत और पुराणों में भारत शब्द का जो वर्णन मिलता है, उससे आज हम भारतवर्ष कहते हैं, उसका दिलचस्प भौगोलिक विवरण है।

भीष्मपर्व एवं विष्णुपुराण में देशीयता/क्षेत्रीयता की अवधारणा

भीष्मपर्व महाभारत का छठा भाग है, इस पर्व में कुरुक्षेत्र के मैदान में हुए अठारह दिनों के युद्ध में से पहले दस दिनों का वर्णन किया गया है। यह पर्व संजय (राजा धृतराष्ट्र के सारथी और सलाहकार) के द्वारा भारतवर्ष के यथार्थवादी व्याख्या के लिए भी जाना जाता है। महर्षि वेदव्यास ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की ताकि धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान में होने वाली घटनाओं का विवरण दिया जा सके। भीष्मपर्व के नौवें अध्याय (नवम अध्याय) में, राजा धृतराष्ट्र के अनुरोध पर संजय के द्वारा भारतवर्ष का विस्तृत वर्णन किया गया। भारतवर्ष वर्णन से पहले संजय ने कहा कि भारतवर्ष इन्द्रदेव, वसुन्धरा, मनु और महाबली क्षत्रिय नरेशों की प्रिय भूमि है।[4] इसके बाद संजय ने भारतवर्ष के प्रमुख पर्वतों,

नदियों और जनपदों का उल्लेख किया। संजय धृतराष्ट्र को भारतवर्ष के सात कुल-पर्वत (प्रमुख पर्वत शृंखलाएँ) महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्षवान, विन्ध्य और पारियात्र इत्यादि के बारें में भी बताते हैं। मलय पर्वत का उत्तरी भाग पश्चिमी घाट के दक्षिण भाग में स्थित है और मलय के उत्तर में सह्य पर्वत शृंखला स्थित है जो पश्चिमी घाट का उत्तरी हिस्सा है। दूसरी ओर महेन्द्र पर्वत शृंखला उड़ीसा के पूर्वी घाट में स्थित है। झारखण्ड के पहाड़ों को ऋक्षवान पर्वत शृंखला के नाम से जाना जाता है। शुक्तिमान पर्वत शृंखला बुन्देलखण्ड के पहाड़ हैं, जो गंगा नदी के दक्षिण में दोनों तरफ फैले हुए हैं। नर्मदा के उत्तर में स्थित पहाड़ विन्ध्य पर्वत शृंखला है तो वहीं राजस्थान के पहाड़ यानी अरावली पर्वत शृंखला को पारियात्र पर्वत शृंखला कहा जाता है।

भीष्मपर्व में 24 श्लोकों के माध्यम से भारतवर्ष की नदियों का वर्णन किया गया है और इसमें 150 से अधिक नदियों के नाम दिये गये हैं।[5] नदियों का यह वर्णन वास्तव में सम्पूर्ण अखण्ड भारत के भूगोल का विवरण पेश करता है, जिसमें सुदूर उत्तर से दक्षिण और सुदूर पूर्व से सुदूर पश्चिम तक की नदियाँ शामिल हैं। यह फिर से दर्शाता है कि ऋषि वेदव्यास, जिन्हें विष्णुपुराण सहित सभी पुराणों का लेखक कहा जाता है। इस से सिद्ध होता है कि उन्हें भारतीय क्षेत्र के प्रत्येक सूक्ष्म विवरणों का पूर्ण अनुमान रहा होगा। भारतवर्ष की प्रमुख नदियों के विषय पर अपने विवरण में संजय कहते हैं कि भारतवासियों द्वारा इन नदियों का पानी पीना बहुत सौभाग्य की बात है जो नदियाँ सम्पूर्ण विश्व की माताएँ हैं। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि इन नदियों के अलावा, कई हजार नदियाँ और भी हैं, जिनके विषय में भारतवर्ष के लोग अनजान हैं। इस प्रकार, उन्होंने खुद को भारतवर्ष की प्रमुख नदियों तक सीमित रखा और अन्य सभी नदियों और उनकी सहायक नदियों का उल्लेख नहीं किया।

भीष्म पर्व के नवें अध्याय में भारतवर्ष के जनपदों या प्रान्तों का वर्णन 32 श्लोकों में किया गया है, जिसमें कुल मिलाकर 220 प्रान्तों का उल्लेख है जो पूरे भारतवर्ष को समाहित करते हैं। यह भारत को मोटे तौर पर उत्तर और दक्षिण प्रान्तों में विभाजित करता है, जैसे यवन एक जनपद था। जहाँ यवन जनजाति के लोग रहते थे। ऐसा अक्सर समझा जाता है कि यवन जनपद में रहने वाली जनजाति यूनानी थी, लेकिन यह समझ गलत धारणाओ पर आधारित है, वे यूनानी नहीं थे। पाणिनि ने पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में अष्टाध्यायी की रचना की जिसमें उन्होंने यवनों का उल्लेख किया है, जो कम्बोज की सीमा के करीब रहते थे। कम्बोज प्राचीन भारत के प्रमुख जनपदों में से एक जनपद था और जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों जैसे अंगुतर निकाय और पाणिनि के अष्टाध्यायी दोनों ही ग्रन्थों में देखने को मिलता है। वर्तमान में यह पाकिस्तान के खैबरपख्तूनख्वा क्षेत्र में स्थित है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार कम्बोज अशोक के साम्राज्य का बाहरी हिस्सा था। जिसका क्षेत्रीय विस्तार कश्मीर से लेकर हिन्दूकुश तक था।

विष्णुपुराण में भारत का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में जो भूमि है, उसे भारत कहते हैं, जहाँ भरत के वंशज निवास करते हैं। इसका विस्तार नौ हजार लीग में फैला हुआ है। यह कर्मभूमि है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य

स्वर्ग जाते हैं या मोक्ष प्राप्त करते हैं। भारत में सात प्रमुख पर्वत हैं - महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमत, ऋक्ष, विन्ध्य और परिपात्र। इस भूमि से ही जीवन भर के कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग मिलता है, या कभी-कभी तो मोक्ष भी मिलता है। साथ ही अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य नर्क में भी गिरते हैं। स्वर्ग, मोक्ष या नर्क वास्तव में कर्मों/करनी का फल है। इसमें आगे उल्लेख किया गया है कि भारतवर्ष नौ भागों में विभाजित है, जो हैं इन्द्र-द्वीप, कसेरुमत्त, ताम्रवर्ण, गभस्तिमत्त, नाग-द्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण तथा अन्तिम और नवाँ द्वीप समुद्र से घिरा हुआ है, और यह उत्तर से दक्षिण तक एक हजार योजन तक फैला है। भारत के पूर्व में किरात (बर्बर) निवास करते हैं और पश्चिम में यवन निवास करते हैं। मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, जो वर्ण विभाजन के अनुसार बलिदान, शस्त्र, व्यापार और सेवा के अपने-अपने कर्तव्यों में लगे रहते हैं।

हिमालय के पहाड़ियों से शतद्रु, चन्द्रभागा और अन्य नदियाँ बहती हैं।[6] इन प्रमुख नदियों से अन्य अनिश्चित नदियाँ और छोटी नदियाँ निकलती हैं। इन नदियों के तट पर प्रमुख राष्ट्र/प्रान्त/जनपद स्थापित हुए, इनकी सीमाओं में लाखों लोग निवास करते थे जिन्होंने इन नदियों का पानी पीया है और इन नदियों के जल से समृद्ध भी हुए। कुरु और पांचाल के मध्य भाग; पूर्व में कामरूप के लोग; दक्षिण में पुण्ड्र, कलिंग, मगध और अन्य दक्षिण के राष्ट्र; सुदूर पश्चिम में सौराष्ट्र, सुरा, आभीर, अर्बुदगण; परिपत्र पर्वतों पर रहने वाले करुषा और मालव; सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व, शाकल, मद्र, आराम, अम्बष्ठ, पराशिक और अन्य लोग का निवास स्थान भी भारतवर्ष रहा है। भारत/भारतवर्ष की प्रादेशिकता के सम्बन्ध में दोनों ग्रन्थों के बीच समानताओं के बावजूद, दो बिन्दु विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण है। पहला, ग्रन्थों का लेखकीय विश्लेषण और दूसरा ग्रन्थों की तिथियों का निर्धारण। यह युगों से भारत के प्रादेशिक विकास के कालानुक्रमिक रूपरेखा के बारें में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता रहा है। महाभारत को दुनिया के सबसे पुराने महाकाव्यों में से एक माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि महाभारत की उत्पत्ति लगभग 400 ईसा पूर्व हुई थी। यह उल्लेख करना जरूरी है कि महाभारत के बारें में जैसा हम आज जानते हैं, इसका विस्तार कई चरणों से होकर गुजरा है। अन्त में यह तीसरी-चौथी शताब्दी ईस्वी के बीच अपने अन्तिम रूप में पहुँचा। इस ग्रन्थ के लेखन का श्रेय वेदव्यास (ऋषि पराशर के पुत्र और ऋषि वशिष्ठ के परपोते) को दिया जाता है, जो आठ चिरंजीवी (अश्वत्थामा, राजा बलि, वेदव्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और ऋषि मार्कण्डेय) में से एक है, जो कुरुक्षेत्र की लड़ाई के बाद सभी पीढ़ियों तक जीवित रहे। ऐसा माना जाता है कि बाद में उन्होंने महाभारत की कहानी भगवान् गणेश को सुनाई, जिन्होंने फिर अपने दाँत से महाभारत लिखी, और इस तरह दुनिया को अपना महान और सबसे पुराना महाकाव्य मिला।

दूसरी ओर, विष्णुपुराण महाभारत के बहुत लम्बे अरसे बाद लिखा गया था। यह सदियों तक रचनात्मक सम्पादन के अधीन भी था और तर्क यह दिया जाता है कि विष्णुपुराण के शुरूआती हिस्से चौथी शताब्दी ईस्वी या उसके बाद के लिखे हुए हैं। ऋषि पराशर इस पाठ

के कथावाचक हैं और यह उनके और उनके शिष्य ऋषि मैत्रेय के बीच एक महत्वपूर्ण विमर्श को दर्ज करता है। इस बातचीत से हमें भगवान् विष्णु की पौराणिक कथाओं के विषय में कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। ऋषि पराशर (ऋषि वशिष्ठ के पौत्र, शक्ति महर्षि के पुत्र और ऋषि वेदव्यास के पिता) यहाँ ग्रन्थ के वाचक और पाठ के लेखक दोनों हैं। कई लोग यह भी मानते हैं कि प्राचीन हिन्दू वेदों से प्रेरित विष्णुपुराण जो 18 पुराणों से प्रेरित था। उसे भी ऋषि वेद व्यास ने सामान्य जनता तक ज्ञान और शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए न केवल रचा बल्कि उसे सम्पादित और पुनर्व्यवस्थित भी किया। हालाँकि दोनों ग्रन्थों की रचना का श्रेय एक ही वंश के अलग-अलग व्यक्तियों को जाता है लेकिन उसकी अलग-अलग समयसीमा में काफी अन्तर है। हालाँकि यह तथ्य को ध्यान में रखने की जरूरत है कि दोनों ग्रन्थों में भारतवर्ष का चित्रण भूगोल और क्षेत्रीयता के सन्दर्भ में काफी समान और असाधारण है। यह देखना आश्चर्यजनक है कि इन ग्रन्थों में दर्ज पहाड़, नदियाँ और जनपद को इस युग में भी ढूँढा जा सकता है। यह तथ्य कई पश्चिमी विचारकों के उन दावों का भी खण्डन करता है जो यह तर्क करते हैं कि भारत की सीमाओं का विकास भारत में ब्रिटिश राज के विस्तार के बाद ही हुआ है। यह तर्कपूर्ण ढंग से स्थापित किया जा सकता है कि 'इंडिया, जो भारत है....' (भारतीय संविधान का अनुच्छेद 1) का अपना एक इतिहास है और यह अपनी सीमाओं और क्षेत्रीयता के सन्दर्भ में निरन्तर बना हुआ है।

इन ग्रन्थों में भारत के भूगोल का वर्णन और प्राचीन ऋषियों और राजाओं द्वारा भारत को एक विचार के रूप में परिभाषित किया जाना, यह दर्शाता है कि इनको भारत को एक क्षेत्रीय एवं भौगौलिक इकाई के रूपों का व्याख्यायित करने का बेहतर ज्ञान था। यहाँ कई जनपद में राजाओं का शासन था, जिस में कुछ राजा चक्रवर्ती भी थे। जो सभी दिशाओं के स्वामी थे और लगभग पूरे जम्बूद्वीप और कुछ तो उससे भी आगे तक शासन करते थे। महाभारत, पुराण और कई अन्य प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे राजाओं की चर्चा भी की गयी है। जब राम द्वारा बाली का वध किया गया, तो राम ने इस वध को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया कि बाली किष्किन्धा का राजा था, लेकिन वह राज्य भी चक्रवर्ती राजा भरत के अधीन ही आता था। वहीं बाली ने अपने छोटे भाई की पत्नी से विवाह करके पाप किया था और इसलिये वह दण्ड का पात्र था। निष्कर्ष के तौर भारत की समझ का सार एक भौगोलिक सांस्कृतिक इकाई के तौर पर इन ग्रन्थों में है। जिसे दो तर्कों के आधार पर समझने की कोशिश की जानी चाहिए। पहला, आज से हजारों वर्ष पूर्व लोगों को भारतवर्ष की जानकारी रही होगी, और यदि रही भी होगी तो यह समझ समाज के अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित होगी। हालाँकि यह बात तो आधुनिक राष्ट्र राज्यों पर भी लागू होती है। उदाहरण के लिए, यूजीन वेबर ने 1867 में फ्रांस के किसानों के बारे में लिखा था कि पेरिस से 20 किलोमीटर दूर लोग फ्रांस को एक राष्ट्र के रूप में नहीं जानते थे। लेकिन यह तर्क देना कि फ्रांस एक राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में नहीं था, यह सही नहीं होगा। अक्सर यह देखा गया है कि 10-20 हजार लोगों का एक बड़ा गाँव है, जो एक-दूसरे को नहीं जानते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गाँव का

अस्तित्व नहीं है। दूसरा, यह तर्क देना अनुचित होगा कि राष्ट्र के रूप में योग्य होने के लिए सभी का एक-दूसरे को जानना जरुरी ही है। इसके विपरीत, कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगा कि भले ही लोग एक-दूसरे को न जानते हों, लेकिन फिर भी वे व्यक्तिगत रूप से राष्ट्र से सम्बन्धित होने को स्वीकार करते हैं।

निष्कर्ष

भारत की भौगोलिकता को समझने में आधुनिक इतिहास और धर्मग्रन्थों के इतिहास में अन्तर को देखा जा सकता है। यदि धर्मग्रन्थों के इतिहास की बात करें तो लाखों वर्ष पूर्व भारत के लोगों को इसकी भौगोलिकता के बारे में ज्ञान था। वहीं आधुनिक इतिहास का यह दावा है कि लगभग तीन हजार वर्ष पहले भारत के लोगों को भौगोलिकता का बोध हुआ है।

अत: भौगोलिकता के सन्दर्भ में अब हमें यूरोप से भारत की तुलना बन्द कर देनी चाहिए। जैसा गाँधी ने कहा था कि भारत प्राचीन समय से ही एक राष्ट्र था।[7] उन्होंने भारत को पश्चिमी ढाँचे और मुहावरों में परिभाषित करने से इनकार कर दिया और इसे सभ्यतागत शब्दों में चित्रित किया। उन्होंने कहा कि अंग्रेजों के आने से बहुत पहले भारत एक राष्ट्र था और यह एक राष्ट्र था जिसके कारण अंग्रेज एक साम्राज्य स्थापित कर पाए। इसके अलावा, उन्होंने शंकराचार्य द्वारा तीर्थस्थलों और मठों की स्थापना की घटना का उल्लेख किया जिसने भारतीय राष्ट्र के सांस्कृतिक भूगोल को परिभाषित किया।

टिप्पणियाँ

1. आर्यावर्त का प्राचीन इतिहास जो ठाकुर नगीनाराम परमार द्वारा 'त्वारिख-ए-कदीम' शीर्षक से प्रकशित हुआ, और जिसका हिन्दी अनुवाद ठाकुर रामसिंह ने किया (अखिल भारतीय इतिहास परिषद्, 2004।
2. हमारे शास्त्रों में सृष्टि की आयु जो कि 4 अरब 32 करोड़ वर्ष है, इस प्रकार 14 मन्वन्तर x 71 महायुग x 4 युग प्रत्येक 432000 वर्ष गुणा 4:3;2;1 अनुपात तथा 15 सन्धिकाल प्रत्येक 1728000 वर्ष होते हैं। इस प्रकार, वर्तमान 28 महायुगों में सतयुग की आयु 4 x 432000 वर्ष अर्थात् 17,28000 वर्ष थी, त्रेता युग 3 x 432000 वर्ष अर्थात् 12,96000 वर्ष तक चला, द्वापर युग 2 x 432000 वर्ष अर्थात् 864000 वर्ष तक चला तथा कलियुग 432000 वर्ष तक चलेगा, जिसमें से 5600 वर्ष बीत चुके हैं।
3. जम्बूद्वीप का नाम इसलिये पड़ा क्योंकि इस भूमि पर जम्बू के वृक्ष बहुतायत में थे। इसी प्रकार प्लक्षद्वीप पर प्लक्ष पुष्प की प्रधानता थी। इसी प्रकार शाल्मली द्वीप का नाम शाल्मली वृक्ष के नाम पर पड़ा जो प्लक्ष जितना ही बड़ा था। अन्य द्वीपों के नाम भी विशिष्ट विशेषता के आधार पर रखे गये हैं। यह भी ऐसा था जैसे प्लक्ष जम्बूद्वीप के निकट था और अपने क्षेत्र में समुद्रों और पर्वतों से घिरा हुआ था।
4. जैसे पृथु, वैया, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, शिबि, औशीनर, ऋषभ, ऐलनन्दन पुरूरवा, राजा नृग, कुशिक, सोमक, दिलीप और कई अन्य।
5. नदियों के नाम इस प्रकार हैं; गंगा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, महानदी, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, वेत्रवती, कृष्णा-वे ना, इरावती, वितस्ता,

पयोष्णि, देविका, वेद-स्मृति, वेतासिनी, इक्षु-मालिनी, कारिशिनि, चित्रवाहा, चित्रसेना, गोमती, धुतपापा, वन्दना, कौशिकी, कृत्या, विचित्रा, लौहतारिणी, रथस्था, शतकुम्भा, सरयू, कार्मनवती, वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिशा, शतावरी, पयोष्णी, भैरमथी, कावेरी, कुलुका, वी आपि, शतबाला, निचिरा, महिता, सुप्रयोग, पवित्रा, कुण्डला, वाजिनी, पुरामलिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पलाशिनी, पापहरा, पिप्पलावती, परिषेण, असिक्नी, सरला, भरमरदिनी, पुरुही, प्रवरा, मोघा, घृतवती, धूमात्य, अतिकृष्ण, शुचि, छवि, सदानीरा, अध ऋषिया, कुशा-धारा, शशिकान्ता, शिवा, वीरवती, वास्तु, सुवास्तु, गौरी, कम्पाना, हिरणवती, चित्रवती, चित्रसेना, रथचित्रा, ज्योतिरथ, विश्वामित्र, कपिंजला, उपेन्द्र, 1. दासी, त्रसा, वाराणसी, लोलोद्धृत-कारा, पूर्णाशा, म अनावी, वृषभ, सदा-निरामया, वृत्त्या, मन्दगा, मन्दवाहिनी, ब्राह्मणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रोपला, चित्रबर्हा, मकरवाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरणी, कोका, शुक्तिमती, अरण्य, पुष्पवेणी, उत्पलावती, लोहिता, करतोया, वृषभांगिनी, कुमारी, ऋषिकुल्या, ब्रह्म-कुल्या कुकरा, अम्बुवाहिनी, वेनन्दी, पि अंजला, वेण्णा, तुंगवेण्णा, विदिशा, कृष्णवेण्णा, ताम्र, कपिला, शालु, सुवामा, वेदश्व, हरिश्रवा, महापगा, शिघरा, पिच्छिला, भारद्वाजी, कौशिकी, शोणा, चन्दना, दुर्गा, अन्तशिला, ब्रह्म-मेध्या, बृहद्वती, चरक्ष, महिरोही, जम्बुनदि, सुनासा, तमसा।

6. वेदस्मृति और अन्य परिपात्र पर्वत से; नर्मदा और सुरसा विन्ध्य पहाड़ियों से; तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या ऋक्ष पर्वत से; गोदावरी, भीमरथी, कृष्णावेणी आदि सह्य पर्वत से; कृतमाला, ताम्रपर्णी आदि मलय पर्वत से; त्रिसामा, आर्यकुल्या आदि महेन्द्र से; तथा ऋषिकुल्या, कुमारी आदि शुक्तिमत पर्वत से।

7. उत्तरी प्रान्तों/राज्यों में शामिल हैं - यवन, कम्बोज, अरुण, साक्षाद्रुहा, कुन्तला, हूणा, पराटक, मराधा, चीन, दश-मालिका। 45 दक्षिणी प्रान्त हैं - द्रविड़:, केरल:, प्राच्य-भूषिका:, वनवासिन:, उन्नत:, महिष्का:, मूषाका:, कर्णिका:, कुन्तिका:, सौब्धिदा:, नालकालका:, ततकस, कोला:, कोंकणा, मालवणक:, समांग:, कोपना, कुकुरांगदा, ध्वजिनी, उत्सव-संकेतस, केकरका:, परसंचरका, विन्ध्य, पुलक:, पुलिन्द:, कल्कलै:, मलाका, मल्लका, अपवर्तक:, कुलिन्द:, कुलका, करन्थ:, कुरकस, मुशाका, स्तानबाला, सातिया हं, पत्तिपंजक:, आदिदाय:, सिराला, स्तूबका:, स्टाम्पस, हृषिविदर्भ:, कान्तिका, तंगना:। परतंगना:. दिलचस्प बात यह है कि ऐसे प्रान्त भी थे जिन पर गैर-क्षत्रियों का शासन था, जैसे - शूद्राभीर, दरद:, कश्मीर:, खशिका, तुखारा, पल्लव, गिरि-गह्वर:, आत्रेय:, भारद्वाज, स्तान-योश इका:, औपका, कलिंग-किरातस, तमारा, हंस-मार्ग, करा-भंजक:।

सन्दर्भ सूची

आर्य रविप्रकाश, (2004) *आर्यवर्त का प्राचीन इतिहास,* अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना नई दिल्ली.

भटनागर, पी. (2004) *डेटिंग द एरा ऑफ लार्ड राम,* रूपा पब्लिशिंग हाउस.

भीष्म पर्व, नवाँ अध्याय.

देवरॉय, विवेक. (2020, जनवरी 9). 'हिडन ट्रेजर: 95: ऑफ इंडियाज एनसिएंट मैनुस्क्रिप्ट येट टू बी ट्रांसलेटेड'. *द न्यू इंडियन एक्सप्रेस.*

द्विवेदी, पंडित गिरिजा प्रसाद (1917). *मनुस्मृति का हिन्दी रूपान्तरण.* न्यू किशोर प्रेस, लखनऊ.

इंडेन, आर. (1986). *ओरिएंटलिस्ट कंस्ट्रक्शन ऑफ इंडिया,* मॉडर्न एशियन स्टडीज, 20(3), 401-446.

गाँधी, महात्मा (1909). *हिन्द स्वराज,* इंडियन ओपिनियन.

जैन, एस (2016). *द भारतास ऑफ भारतवर्ष.* वॉइस ऑफ इंडिया.

मैन्गुम, जे. (2015, सितम्बर 16). *ऑर्बिटल पीरियड ऑफ द सन इन द मिल्की वे गैलेक्सी,* नेशनल रेडियो एस्ट्रोनॉमी ऑब्जर्वेटरी.

महाभारत (2020) खण्ड 1 से 6 पृष्ठ, 22. गीता प्रेस गोरखपुर.

नेहरू, जवाहरलाल. (1946). *भारत एक खोज,* साहित्य सदन.

रागी, एस. के (2022). *आरएसएस एंड गाँधी: द आईडिया ऑफ इंडिया,* सेज.

रमन, ए.आर. (2018, जनवरी 31). राम सेतु 18,400 इयर्स ओल्ड स्टडी, *डेक्कन क्रॉनिकल.*

सान्याल, सचिन. (2024, अगस्त 6). इंडिया इन द वर्ल्ड इकॉनमी- इट्स राइज आफ्टर द थाउजेंड इयर्स ऑफ डिक्लाइन, *स्वराज.*

टाइम्स ऑफ इंडिया टीएनएन. (2010, अक्टूबर 3). गुजराती शोड वास्को 'डा' वे

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 48-60)
UGC-CARE (Group-I)

सामाजिक समावेशन हेतु बहुसांस्कृतिक शिक्षा

अनामिका यादव* एवं शिरीष पाल सिंह†

बहुसांस्कृतिक शिक्षा अपनी सांस्कृतिक जड़ों का ज्ञान और विभिन्न संस्कृतियों के प्रति समझ प्रदान करती है। यह न्याय, एकजुटता, सामाजिक समावेशन और सहिष्णुता की भावना विकसित करती है। यह सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को जानने की समझ उत्पन्न करती है और अपनी संस्कृति के साथ अन्य संस्कृति को सम्मान प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है। यह पूरे समाज की संस्कृति की खोज के साथ-साथ जातीय अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक बारीकियों को भी विकसित करती है। जिससे बहुसंख्यक एक ही राज्य में रहने वाली अन्य राष्ट्रीयताओं की सबसे बुनियादी बारीकियों से परिचित हो जाते हैं। यह दोनों समूहों को आपसी सम्मान, सामान्य गतिविधियों और सहयोग के लिए समानता और समावेशन के बिन्दु को खोजने में मदद करती है। बहुसांस्कृतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण विचार सिर्फ विद्यार्थियों के लिए उनके सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र को निर्धारित करना और परिभाषित करना ही नहीं है, अपितु दिए गए सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ में अपनी पहचान खोजने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना है। यह शोध लेख इक्कीसवीं सदी के भारत में एक अधिक समावेशी समाज बनाने में बहुसंस्कृतिवाद नीति की भूमिका पर केन्द्रित है। प्रस्तुत शोध लेख का प्रमुख उद्देश्य यह है कि क्या बहुसंस्कृतिवाद नीति को व्यापक सामाजिक समावेशन प्रक्रियाओं को सम्बोधित करने के लिए राष्ट्रीय, नस्लीय, धार्मिक या जातीय मूल से

*,पी-एच.डी. शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
E-mail: yadavanamika174@gmail.com
†प्रोफेसर, सीआईईटी, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली
E-mail: shireesh.singh@ciet.nic.in

हाशिए पर रहने वाले जनसंख्या समूहों के एकीकरण पर ध्यान केन्द्रित करने से आगे बढ़ना चाहिए, जो असमानताओं को प्रभावित करता है और समग्र रूप से राष्ट्र निर्माण पर प्रभाव डालता है। प्रस्तुत शोध लेख द्वितीयक आकड़ों के आधार पर लिखा गया है। पूर्व में किये गये शोध कार्य, सम्बन्धित पत्रिकाओं, शोध लेखों एवं पत्रों पर आधारित यह एक समीक्षात्मक शोध लेख है।

बीज शब्द : समावेशन, सामाजिक समावेशन, बहुसांस्कृतिक शिक्षा।

प्रस्तावना

शिक्षा सामाजिक विकास की रीढ़ है। शिक्षा के बिना समाज का विकास सम्भव नहीं है क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही सभ्य समाज का निर्माण करते हैं। शिक्षा को एक ऐसे साधन के रूप में माना जाता है जिससे समाज के सभी लोगों को आपस में जोड़ा जा सकता है इसलिए हम कह सकते हैं कि समाज की प्रगति में शिक्षा की अहम् भूमिका होती है क्योंकि शिक्षा समाज को सही दिशा प्रदान करने का कार्य करती है। शिक्षा से व्यक्ति के व्यवहार में विनम्रता और उचित समझ उत्पन्न होती है। शिक्षा के माध्यम से किसी समाज को सुव्यवस्थित करने के साथ प्रगति के पथ पर लाया जा सकता है जिसके लिए आवश्यक संसाधन, सामाजिक आदर्शों, नियमों का पालन किया जाना जरूरी है जिससे समाज विकास करने में सक्षम हो सके। अगर समाज और शिक्षा में समावेशन की बात की जाये तो पहले यह जानना आवश्यक होगा कि किन व्यक्तियों का और क्यों समावेशन होना है। कहने का तात्पर्य यह है कि समावेशन की जरूत क्यों पड़ी? शिक्षा में समावेशन का अर्थ है सभी बच्चों को एक साथ एक ही विद्यालय में बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्रदान की जाये। कक्षा में प्रत्येक बच्चा बहुत ही विशिष्ट ढँग से सीखता है। कक्षा समाज का एक छोटा-सा रूप माना जाता है, जहाँ सभी प्रकार के बच्चे (जैसे - बुद्धिमान, भावात्मक रूप से बुद्धिमान, प्रतिभाशाली, मानसिक और शारीरिक रूप से अक्षम, आदि) होते हैं, जिनको ध्यान में रखते हुए अध्यापक को कक्षा में शिक्षण अधिगम कार्य करने चाहिए ताकि कोई भी बच्चा स्वयं को अन्य से अलग महसूस न करे और उनमें किसी भी प्रकार की हीन भावना न उत्पन्न होने पाए। इसलिए आवश्यक है कि कक्षा में सभी को समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाये जिससे जब ये बच्चे समाज में जाएँ तो उन्हें अलगाव न महसूस हो। मोटे तौर पर देखा जाये तो शिक्षा सामाजिक समावेशन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपनी अहम् भूमिका निभाती है। भारत जैसे विविधता वाले देश के वर्तमान परिदृश्य को देखा जाये तो यह बहुत स्पष्ट होता है कि शिक्षा को पारम्परिक तरीके से प्रदान करने से सभी बच्चों को पूर्णत: लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है क्योंकि विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले बच्चे कक्षा में उपस्थित होते हैं और यदि अध्यापक पारम्परिक तरीके से शिक्षा प्रदान करता है तो कहीं न कहीं विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले सभी बच्चों को शिक्षा का लाभ नहीं मिल पाता है इसलिए आवश्यक है इस विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों के लिए बहुसांस्कृतिक शिक्षा को एक उपागम के रूप में अपनाया जाना चाहिए। बहुसांस्कृतिक शिक्षा एक ऐसा उपागम है जिसमें

समाज में सांस्कृतिक रूप से भिन्न विद्यार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सबको समान अकादमिक अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया जाता है, इस प्रकार बहुसांस्कृतिक शिक्षा सामाजिक न्याय एवं लोकतान्त्रिकता की भावना में वृद्धि करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और सामाजिक समावेशन के विकास में भी सहायक है। सामाजिक समावेशन को जानने से पहले समावेशन क्या है, इसे जानना आवश्यक है।

समावेशन

भारतीय समाज एक विविधताओं से पूर्ण समाज है जहाँ विभिन्न धर्म, संस्कृति, जाति एवं नस्ल के लोग निवास करते हैं और कहीं न कहीं सभी अपने धर्म और संस्कृति को लेकर अन्य संस्कृति के बीच असहज महसूस करते हैं क्योंकि अन्य संस्कृति के मध्य वह स्वयं को शीघ्र समावेशित नहीं कर पाते हैं। इसलिए आवश्यक है कि समावेशन का प्रयास विद्यालयी शिक्षा से करना चाहिए जिससे सभी विद्यार्थियों के मन में अपनी संस्कृति के साथ-साथ अन्य संस्कृति के प्रति आदर भाव उत्पन्न हो। जिसे बढ़ावा देने का कार्य बहुसांस्कृतिक शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है। शिक्षा में समावेश एक दृष्टिकोण के रूप में वांछित था जहाँ विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले विद्यार्थी गैर-दिव्यांग विद्यार्थियों के साथ अपना अधिकांश या पूरा समय व्यतीत करते हैं। अब यह महत्वपूर्ण है कि नीति निर्माता, विद्यालय बोर्ड, प्रशासक, मार्गदर्शन परामर्शदाता, अध्यापक, अभिभावक और विद्यार्थी शैक्षिक वातावरण के सभी पहलुओं में समावेशी अभ्यास सुनिश्चित करें। समावेशिता को अब सिर्फ शारीरिक और संज्ञानात्मक अक्षमताओं द्वारा परिभाषित नहीं किया जाता है, बल्कि इसमें क्षमता, भाषा, आयु, संस्कृति, लिंग और अन्य मानवीय अन्तरों के सम्बन्ध में मानव विविधता की एक पूरी शृंखला भी सम्मिलित है (त्यागी, 2016)। यद्यपि दार्शनिक स्तर पर समावेशन के लिए व्यापक समर्थन है। परन्तु कुछ चिन्ताएँ हैं कि समावेशन की नीति को लागू करना कठिन है क्योंकि अध्यापक पर्याप्त रूप से अच्छी तरह से तैयार नहीं हैं और समावेशी तरीकों से काम करने के लिए समर्थित नहीं हैं। समावेशन के लिए अध्यापकों को ऐसे विद्यालय बनाने की जिम्मेदारी स्वीकार करने की आवश्यकता है जिसमें सभी बच्चे सीख सकें और महसूस कर सकें कि वे सम्बन्धित हैं। इस कार्य में अध्यापक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वह बढ़ावा देने, भागीदारी करने और उपलब्धियों को बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं, विशेष रूप से उन विद्यार्थियों के लिए जिन्हें कक्षा-कक्ष में शिक्षण-अधिगम में कठिनाइयों के रूप में माना जाता है। सफल सामाजिक समावेशन के विकास में कुछ बाधाएँ हैं और इन बाधाओं या कठिनाइयों को नियन्त्रित करने का एक तरीका अध्यापकों की भूमिकाओं, जिम्मेदारियों और पहचान पर पुनर्विचार करने के साथ-साथ बहुसांस्कृतिक शिक्षा को भी अपनाया जाने से है। यह अध्यापक के कौशल, ज्ञान, दृष्टिकोण और विश्वास के विकास में अध्यापक शिक्षा की भूमिका के बारे में कुछ सुझाव भी प्रदान करता है।

सामाजिक समावेशन

सामाजिक समावेशन उन परिस्थितियों और आदतों को बदलने की दिशा में एक सकारात्मक कदम है जो सामाजिक बहिष्कार का नेतृत्व करते हैं। विश्व बैंक सामाजिक समावेशन को पहचान के आधार पर वंचित लोगों के लिए सामाजिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु उनकी क्षमता, अवसर और गरिमा में सुधार की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करता है। सामाजिक समावेशन की माँगें वास्तव में समाज द्वारा किये जा रहे उत्पीड़न के खिलाफ एक विरोध प्रदर्शन है। यह न्यायहीनता और शोषण को समाप्त करने के लिए जरूरी है (लिमये, 2016)। एक सामाजिक रूप से समावेशी समाज को एक ऐसे समाज के रूप में परिभाषित किया जाता है जहाँ सभी लोग मूल्यवान महसूस करते हैं, उनके मतभेदों अथवा विपरीत विचारों का सम्मान किया जाता है, और उनकी बुनियादी जरूरतें पूरी की जाती हैं ताकि वे गरिमा में रह सकें। एक सामाजिक रूप से समावेशी समाज एक ऐसा समाज है जहाँ सभी लोगों की संस्कृति को पहचाना और स्वीकार किया जाता है और उनमें अपनेपन की भावना होती है। सामाजिक समावेशन को सामाजिक बहिष्कार के सम्बन्ध में परिभाषित किया जाता है। कुछ विश्लेषकों ने तर्क दिया है कि समावेशन और बहिष्करण दोनों एक ही सिक्के के अविभाज्य पक्ष हैं। सामाजिक बहिष्करण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं से बाहर होने की प्रक्रिया है जो किसी व्यक्ति को समुदाय में एकीकृत करने में योगदान करती है (कैप्पो, 2002)। सामाजिक समावेश, सामुदायिक समावेश, सामाजिक जुड़ाव, सामान्यीकरण, सामाजिक एकीकरण, सामाजिक नागरिकता - ये सभी ऐसे शब्द हैं जो हमारे समाज के व्यक्तिगत सदस्यों के बीच सम्बन्धों के महत्व और इस समूह के सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका से सम्बन्धित हैं। कुछ मूल्य ऐसे भी होते हैं जो सामाजिक समावेशन को आधार प्रदान करते हैं, जैसे सभी को समर्थन या सहयोग की आवश्यकता होती है (कभी-कभी हममें से कुछ को दूसरों की तुलना में अधिक समर्थन की आवश्यकता होती है), हर कोई सीख सकता है (मनुष्य के रूप में हम सभी आगे बढ़ते हैं और बदलते हैं और गलतियाँ करते हैं और हम सभी सीखने में सक्षम हैं), हर कोई योगदान दे सकता है (हमें अपने अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के योगदान को पहचानने, प्रोत्साहित करने और महत्व देने की आवश्यकता है), हर कोई संवाद कर सकता है (शब्दों का उपयोग न करने का मतलब यह नहीं होता है कि हमारे पास कहने के लिए कुछ नहीं है), हर कोई तैयार है और मानदंडों के एक सेट को पूरा करना होगा तथा साथ में हम बेहतर हैं क्योंकि हम एक ऐसी दुनिया का सपना नहीं देख रहे हैं जहाँ हर कोई हमारे जैसा हो और भारत विविधताओं वालों देश है और विविधता या वैयक्तिक अन्तर हमारा सबसे महत्वपूर्ण नवीकरणीय संसाधन है (रोबो, 2014)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के पैरा 22.4 में कहा गया है कि भाषा किसी भी कला एवं संस्कृति को नि:सन्देह रूप से जोड़ने का कार्य करती है। किसी विशेष भाषा को बोलने वाला व्यक्ति अपने अनुभवों को किस प्रकार ग्रहण करता है, यह उस भाषा की संरचना पर निर्भर करता है क्योंकि एक संस्कृति के लोगों का दूसरी संस्कृति के लोगों के साथ बातचीत अथवा

संवाद करने से दोनों ही संस्कृतियों के लोगों की भाषा एवं संस्कृति प्रभावित होती है। अपनी संस्कृति के लोगों से संवाद करने में जो अपनापन अनुभव होता है उसे ही संस्कृति का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। अत: यह कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति भाषाओं में निहित है किन्तु भाषाओं को उचित स्थान ना मिलने से भारतीय भाषाएँ लगभग लुप्त होती जा रही हैं और भाषाओं को लुप्त होने से बचाने के लिए आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं के शिक्षण एवं अधिगम को विद्यालय और उच्चतर शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर एकीकृत करने की आवश्यकता है एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण शिक्षण सामग्री का अनुवाद अन्य भाषाओं में किया जाना चाहिए जिससे एक संस्कृति के लोग अन्य संस्कृति के लोगों के विचारों एवं व्यवहारों से परिचित हो सकें और अपनी संस्कृति के लोगों की तरह अन्य संस्कृति के लोगों के साथ अपनापन या लगाव महसूस कर सकें। शिक्षण सामग्रियों एवं पाठ्य-पुस्तकों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करने से हम बहुसांस्कृतिक शिक्षा को बढ़ावा दे सकते हैं और सामान्य कक्षा में बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषा-भाषी लोगों का स्वागत कर सकेंगे। विद्यार्थियों को भारत की समृद्ध विविधता एवं बहुसांस्कृतिकता का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इसलिए विद्यार्थियों को संस्कृति से सम्पन्न देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने जैसी गतिविधियों में शामिल करना होगा जिससे वह विविध भाषाओं, संस्कृति, परम्पराओं एवं ज्ञान को समझ सकेंगे और अन्य संस्कृतियों के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न होगा। इस दिशा में 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' कार्यक्रम के तहत विद्यार्थियों को विभिन्न संस्कृतियों एवं भाषाओं को बोलने वाले लोगों से परिचित कराया जायेगा। इस प्रकार भाषाएँ भी बहुसांस्कृतिक शिक्षा को बढ़ावा देने में अपना अहम् योगदान प्रदान करती हैं (एन ई पी, 2020)। अध्यापकों को यह भी ध्यान देना होगा कि वह शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं के साथ साथ भारतीय मूल्य, ज्ञान, लोकाचार, भाषाओं, परम्पराओं एवं विभिन्न जनजातियों की परम्पराओं के प्रति भी जागरूक हों जिससे कक्षा में बिना किसी भेदभाव के सभी संस्कृति एवं मूल्यों का सम्मान करते हुए एक सफल कक्षा का संचालन किया जा सके। भारत के बहुभाषावाद के आलोक में भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने में सहायता के लिए दिशा-निर्देश, पाठ्यपुस्तकें और अन्य सामग्री विकसित करना के साथ भारत की विविधता, प्राकृतिक संसाधनों और समृद्ध विरासत के सम्पर्क में आने के लिए बच्चों को 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के तहत भ्रमण/ऑनलाइन या ई-पर्यटन, लिंक राज्यों की भाषा सीखने, आदि के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। समृद्ध भाषा, कला, संगीत, स्वदेशी वस्त्र/भोजन/खेल, संस्कृति और लोकाचार आदि के ऑनलाइन भंडार बनाए जाएँगे (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया : सार्थक, 2021)। इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में बहुसांस्कृतिक शिक्षा कारगर सिद्ध हो सकेगी।

बहुसांस्कृतिक शिक्षा एवं सामाजिक समावेशन

बहुसांस्कृतिक कक्षा का संचालन बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है इसलिए एक अध्यापक कैसे सभी बालकों को रचनात्मक कार्यों में संलग्न रखते हुए बहुसांस्कृतिक शिक्षा

के माध्यम से सभी की सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करते हुए सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में सहायक हो सकते हैं। सरल शब्दों में, बहुसंस्कृतिवाद विभिन्न संस्कृतियों के एक सुसंगत सह-अस्तित्व को दर्शाता है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक समावेशन होता है। एक भारतीय नागरिक के रूप में मेरा अपना अनुभव इस बात की गवाही देता है कि जब शिक्षा के भविष्य को मजबूत करने और महत्व देने की बात आती है, तो बहुसंस्कृतिवाद या बहुसांस्कृतिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण शिक्षण उपकरण के रूप में उभर कर सामने आती है। यहाँ मुख्य रूप से प्रत्येक विद्यार्थियों के प्रारम्भिक वर्षों में विद्यालयी शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जो एक सामाजिक प्राणी के रूप में उनकी बुद्धि और व्यक्तित्व को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यालयी शिक्षा के पूरे दायरे में बहुसंस्कृतिवाद के प्रभाव का अध्ययन करने के सम्भवत: तीन व्यापक तरीके और पहलू हो सकते हैं। पहला, किसी भी विद्यालय की किसी भी कक्षा में विद्यार्थियों का समग्र और विविध चरित्र; दूसरा, पाठ्यक्रम में विभिन्न संस्कृतियों के बारे में एक अध्ययन सामग्री निष्पक्ष रूप से हर संस्कृति की प्रकृति और विशिष्टता को पूरा करती है; तीसरा, विद्यार्थियों के विविध समूहों को एकजुट रखने हेतु उपाय करने और ऐतिहासिक रूप से संवेदनशील मुद्दों को पढ़ाने दोनों में अध्यापकों का निष्पक्ष, सच्चा और जिम्मेदार दृष्टिकोण, ये सभी सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध होंगे।

सामाजिक समावेशन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम सभी व्यक्तियों को महत्व देते हैं और समुदायों में उनके विविध योगदानों को पहचानते हैं। सभी बच्चों को अपने विद्यालय और/या शैक्षिक परिवेश में सामाजिक रूप से शामिल होने का अधिकार है। सामाजिक समावेश महत्वपूर्ण है क्योंकि सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा का अधिकार है, और सामाजिक समावेशन सभी विद्यार्थियों को मूल्यवान महसूस करने का, अपनी क्षमता को पूरा करने का अवसर देता है और अपने साथियों के साथ शैक्षिक अवसरों में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है। ऐसे ही विभिन्न प्रकार की पहल और नीतियाँ हैं जिनका उद्देश्य देश भर में, स्थानीय टीमों में, परिसंघों के भीतर और व्यक्तिगत विद्यालयों और शैक्षिक परिवेश में सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देना है। हमें अब बच्चों और युवाओं के लिए सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने के लिए विद्यालयों और शैक्षिक परिवेश को सक्षम करने के लिए एक व्यापक और स्पष्ट रूपरेखा प्रदान करने की आवश्यकता है (सोशल इंक्लूजन फ्रेमवर्क, 2016)।

सामाजिक समावेशन के सफल विकास के लिए बहुसांस्कृतिक शिक्षा

शैक्षिक सुधार, शिक्षा में परिवर्तन और प्रगति का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक ही समय में एक सामाजिक और शैक्षणिक प्रक्रिया है। सबसे पहले, यह शैक्षिक नीति और स्थिति, शिक्षा के भीतर विद्यार्थियों और अध्यापकों की स्थिति, शैक्षिक प्रणाली संगठन और इसकी सामग्री को पूरी तरह से बदल देता है। दूसरी ओर, शैक्षिक सुधार के लिए समावेशन

वाली बहुसांस्कृतिक शिक्षा की आवश्यकता होती है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय संगठन, समकालीन और सत्यापित विधियों का अनुप्रयोग, नयी शिक्षण तकनीकों का अनुप्रयोग, वैकल्पिक विषयों का समावेश, प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का मार्गदर्शन, विकास और सीखने की कठिनाइयों के साथ विद्यार्थियों को अधिक समर्थन का प्रावधान भी होता है। इस प्रकार, अपनी गतिविधियों के माध्यम से, विद्यालय को अपने प्रदर्शन में कमियों और कमजोरियों पर अधिक ध्यान देना है, खासकर जब विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की बात आती है। ऐसा करने में विफलता वास्तव में समावेशी शिक्षा के विभाजन और पंगुता का कारण है। अतीत में, इस तरह के अभ्यास को पृथक्करण अभ्यास कहा जाता था। हालाँकि, नयी विद्यालयी शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं का सम्मान करती है। इसलिए, प्रत्येक विद्यार्थी की व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार सक्रिय रूप से सीखने और व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने के लिए समाज समावेशी शिक्षा का संचालन करने के लिए विद्यालय को जिम्मेदारी सौंपता है (शेख एवं अहमद, 2017)। अध्यापकों को अपने मौजूदा सांस्कृतिक भंडार की क्षमता का एहसास करने और सांस्कृतिक समन्वयता को प्राप्त करने के लिए सचेत रूप से अपनी ऊर्जा को निर्देशित करने की आवश्यकता है। जिसके लिए उन्हें विभिन्न जातियों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व और अभिव्यक्ति के लिए एक पाठ्यक्रम तैयार करके एक समग्र दृष्टिकोण सुनिश्चित करना होगा। इसके अलावा, उनके समय-समय पर अन्तर-राज्यीय विद्यालयों की बैठक भी एकल संस्कृति की निश्चित रेखाओं को धुँधला करती है और उन्हें बहुलता से परिचित कराती है (कैफे डिसेंसुस एवरीडे, 2021)। सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने की शुरुआत विद्यालयी शिक्षा से करना चाहिए जिसमें बहुसांस्कृतिक शिक्षा निम्नलिखित प्रकार से योगदान दे सकती है -

1. पूर्व विद्यालयी स्तर पर सफल सामाजिक समावेशन के लिए विद्यार्थियों को विभिन्न संस्कृतियों का सम्मान करना सिखाना चाहिए।
2. पाठ्यक्रम लचीला और सुलभ होना चाहिए जिससे सभी के लिए अधिगम सरल एवं सुगम्य हो।
3. विद्यालय का भौतिक वातावरण बाधा मुक्त होना चाहिए और विविध आवश्यकताओं वाले सभी बच्चों के साथ-साथ अन्य विविधता रखने वाले विद्यार्थियों को समायोजित करने के लिए अनुकूलित होना चाहिए।
4. शिक्षण पद्धति, मूल्यांकन और मूल्यांकन प्रक्रियाओं को भी लचीला बनाया जाना चाहिए ताकि सभी विद्यार्थी सरलतापूर्वक सीख सकें।
5. विद्यार्थियों के परिवारों के साथ परिवार के सदस्यों को अपने अनुभव साझा करने के अवसर दिए जाने चाहिए जिससे आपसी जुड़ाव हो सके और विद्यार्थी विविध संस्कृतियों को जान सकें।
6. राष्ट्र के प्रति अपनेपन की भावना विकसित करने के लिए परिवार के सदस्यों को शामिल किया जाना चाहिए (एन.सी.ई.आर.टी., 2020)।

7. कक्षा-कक्ष में सामूहिक गतिविधियाँ करायी जानी चाहिए जिससे सभी विद्यार्थियों में सामाजिकता की भावना उत्पन्न होती है।
8. सामूहिक गृह परियोजना कार्य दिया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी कक्षा के अतिरिक्त अपने आसपास के लोगों से भी जुड़ाव महसूस करें।

अध्यापकों द्वारा किए जा सकने वाले प्रयास

अध्यापक पाठ्यक्रम और बहुसांस्कृतिक कक्षाओं को ऐसा स्थान प्रदान करें जिसमें सभी विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना उन्हें सीखने के लिए अवसर प्राप्त हो सकें। अध्यापकों द्वारा निम्नलिखित प्रयास किए जाने चाहिए -

विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समझना

अध्यापकों को बहुसांस्कृतिक शिक्षा के माध्यम से सामाजिक समावेशन को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है कि वह सबसे पहले अपने विद्यार्थियों और उनकी आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करें। क्योंकि विद्यार्थी को वास्तव में इस बात की परवाह नहीं है कि आप कितना जानते हैं या आपके पास कितना ज्ञान है, जब तक कि वे यह न जान लें कि आप उन्हें कितना जानते हैं, उनका और उनकी संस्कृति का कितना ध्यान रखते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों के साथ मधुर सम्बन्धों को विकसित करने के लिए अध्यापकों को कक्षा और पाठ्यक्रम के बाहर विद्यार्थियों के साथ बातचीत करने का प्रयास करना चाहिए। अपने विद्यार्थियों का बारीकी से निरीक्षण करें और पाठ्यपुस्तक की तुलना में विविधता को महत्व देने के लिए विद्यार्थियों और अपने वास्तविक जीवन के अनुभव को महत्व दें। डेविड कोल्ब ने एक विशेष विद्यार्थी समूह की जरूरतों को वास्तव में समझने के लिए एक चार-चरणीय मॉडल बनाया। वह ठोस अनुभव से शुरू करते हैं, चिन्तनशील अवलोकन जोड़ते हैं और फिर अमूर्त अवधारणा और सक्रिय प्रयोग की ओर बढ़ते हैं। दूसरे शब्दों में, बहुसांस्कृतिक शिक्षा को सिर्फ पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से नहीं पढ़ाया जा सकता। इसे प्रत्येक अध्यापक द्वारा एक विशेष विद्यार्थी समूह के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए।

विद्यार्थियों से जिज्ञासापूर्वक बात करें

एक अध्यापक के रूप में आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उनके शैक्षणिक प्रदर्शन को कैसे प्रभावित कर सकती है। उदाहरण के लिए, कक्षा में कुछ विद्यार्थी थकान और नींद में है तो इसका कारण जानने के लिए अध्यापक को विद्यार्थियों से जिज्ञासापूर्वक बात करनी चाहिए जिससे विद्यार्थी उन्हें सही कारण बताने में सहज हो सकें। विद्यार्थी सहजतापूर्वक अध्यापक को धार्मिक उपवास थकान और नींद आने का कारण बताते हैं। अब यहाँ यदि अध्यापक ने जिज्ञासापूर्वक विद्यार्थियों से बात न करके

उन्हें सजा देने और स्वयं न सीखने का दृष्टिकोण अपनाया होता, तो उन विद्यार्थियों को एक अलग अनुभव होता। इसलिए आवश्यक है कि अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों से जिज्ञासापूर्वक जुड़े रहना चाहिए।

अध्यापक के रूप में विद्यार्थियों की विविधता को समझना

एक अध्यापक के रूप में आपको यह समझना होगा कि कोई भी दो विद्यार्थी एक जैसे नही हो सकते, एक ही उम्र या ग्रेड स्तर के विद्यार्थियों के बीच अन्तर करना मुश्किल हो सकता है। आपके विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग-अलग है तो उनके सीखने का अनुभव भी अलग-अलग होगा। आपको अध्यापक के रूप में यह प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थी उन सभी कौशलों का लाभ उठाएँ जो वे अपने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के माध्यम से आपके पास लेकर आते हैं। अध्यापकों को यह समझना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी कक्षा में जो विविध अनुभव लेकर आता है, वह शिक्षण अधिगम में समृद्धि ला सकता है, और कक्षा के बाहर विद्यार्थियों को जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, वे उससे बाहर निकलने मे सक्षम बनते हैं।

विविध साहित्य का प्रयोग करना

अध्यापक के रूप में आपको यह मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या आपके पाठ/पाठ्यक्रम आपके विद्यार्थियों के अनुभवों को प्रतिबिम्बित करते हैं, और साथ ही यह भी सुनिश्चित करें कि आपके पाठ्यक्रम में शामिल संसाधन या शिक्षण सामाग्री विविध हैं। अध्यापकों के लिए उन विषयों पर उदाहरण देना अनिवार्य है जो विद्यार्थियों को उनके पास उपस्थित मौजूदा स्कीम पर निर्माण करने में सरलता प्रदान करते हैं इसके लिए अध्यापक को विविध साहित्यों और शिक्षण सामग्रियों का उपयोग, अपने शिक्षण के दौरान करना चाहिए।

कक्षा में एकतरफा बातचीत से बचें

अध्यापकों को सीखने में सुविधा प्रदान करने वाले के रूप में कार्य करना चाहिए। सीखना केवल एकतरफा नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कक्षा में सिर्फ विद्यार्थी ही नहीं सीखता बल्कि विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आए विद्यार्थियों से समय-समय पर अध्यापक भी सीखते हैं। इसलिए कक्षा में ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए कि यह एक खुली बातचीत बन जाए, दो तरफा बातचीत जिसमें विद्यार्थी और अध्यापक दोनों ही अपने उन अनुभवों को साझा करें जिससे अन्य विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि हो सकेगी। इसके अतिरिक्त यह भी मूल्यांकन करें कि आपकी शिक्षण शैली और कक्षा का भौतिक स्थान किस प्रकार बहुसांस्कृतिक शिक्षा उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थन करते हैं। क्या विद्यार्थी सिर्फ अपनी डेस्क पर बैठे हैं? क्या कक्षा-कक्ष को इस तरह से बनाया गया है कि विद्यार्थी आपस में चर्चा कर सकें? क्या आप सहयोगात्मक शिक्षण गतिविधियों का प्रयोग करते हैं जिनमें

विद्यार्थी सुनिश्चित रूप से भाग ले सकते हैं? इन सभी का मूल्यांकन करने के पश्चात आप अपनी कक्षा में बहुसांस्कृतिक शिक्षा को सफलतापूर्वक लागू करने में सफल हो सकेंगे।

समस्या समाधान आधारित शिक्षण

वास्तविक दुनिया के मुद्दों को हल करने के लिए समस्या समाधान आधारित शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को एक साथ चर्चा करने के लिए एकत्रित करें। इसके लिए विद्यार्थियों को हमेशा अपने स्वयं के साथी के साथ समूह चुनने न दें बल्कि विद्यार्थियों को अलग-अलग समूह साझेदारों के साथ जोड़ने से एक समावेशी माहौल बनाने और सहपाठियों के बीच सहानुभूति को बढ़ावा देने में मदद मिल सकती है और दी गयी समस्या के लिए विभिन्न समाधान भी प्राप्त होंगे जिससे विद्यार्थियों को अधिक सीखने को मिलेगा और नये अनुभव भी प्राप्त होंगे।

विद्यालय को समुदाय से जोड़ें

समय-समय पर कक्षा में अतिथि वक्ता आमन्त्रित किए जाएँ जो विद्यार्थियों के समुदाय से हों और उनके हितों का प्रतिनिधित्व करते हों। क्योंकि कक्षा में वास्तविक दुनिया के उदाहरण लाने से विद्यार्थियों को सीखने के अनुभवों को अपने समुदायों से जोड़ने में मदद मिल सकती है और विद्यार्थी सहजतापूर्वक सीखने मे सक्षम होते हैं।

विद्यालय के नेतृत्वकर्ताओं की भूमिका

इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि विद्यालय का नेतृत्व करने वाली पद्धतियाँ आपके विद्यालय को किस प्रकार आगे बढ़ने में सहयोग देती हैं। औपचारिक नेतृत्व पदों पर बैठे व्यक्तियों, जैसे - प्रधानाचार्य, सहायक प्रधानाचार्य और अन्य प्रशासक, सभी इस बात पर चिन्तन करें कि क्या आपकी नेतृत्व प्रथाएँ बहुसांस्कृतिक और समावेशी या विशिष्ट हैं और क्या आपका नेतृत्व उन संरचनाओं को चुनौती देता है जो विद्यार्थियों की सफलता को रोकते हैं। विद्यार्थी अनुशासन के तरीकों पर विचार करें और संकाय और कर्मचारियों के बीच नियुक्ति प्रथाओं और विविधता का आकलन करें।

सम्पूर्ण विद्यालयी परिवेश पर विचार करें

विद्यालय के किसी एक अध्यापक की कक्षा में बहुसांस्कृतिक शिक्षा को लागू करना विद्यालय के बाकी कक्षाओं से भिन्न हो सकता है। जैसे - विद्यालय में एक ऐसा अध्यापक हो सकता है जो अपने विद्यार्थियों का ध्यान रखता है, जो दयालु, देखभाल करने वाला, सहानुभूतिपूर्ण विचार रखने वाला है, तो उसके साथ सभी विद्यार्थी सहज रूप से सीखते हैं। वहीं जब वह विद्यार्थी उस अध्यापक की कक्षा छोड़ता है, तो उसी विद्यालय में अगले अध्यापक जो बहुसांस्कृतिक शिक्षा को अपनी कक्षा में लागू नहीं करते हैं, के साथ वही

विद्यार्थी सहज नही हो पाते हैं। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सम्पूर्ण विद्यालयी परिवेश पर ध्यान दें जिससे सभी विद्यार्थी सभी अध्यापकों के साथ सहजतापूर्वक सीख सकें।

बहुसंस्कृतिवाद से जोड़ने वाले परियोजना कार्य प्रदान करें

यदि अध्यापक बहुसांस्कृतिक शिक्षा को अपनी कक्षा में लागू करना चाहता है तो कक्षा में अध्यापक द्वारा दिये गए कार्य विद्यार्थी की सांस्कृतिक मान्यताओं में एक प्राथमिक कदम प्रदान कर सकते हैं। लेखन कार्य विद्यार्थियों के विचार प्रक्रियाओं और प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। परिवार के सदस्यों के साथ साक्षात्कार, विद्यार्थियों को विद्यालय के बाहर होने वाले सीखने के अनुभवों के बारे में लिखने के लिए कहने वाले दत्तकार्य (असाइनमेंट), और पारिवारिक कहानियों और परम्पराओं से जुड़े दत्तकार्य सभी विद्यार्थियों की सांस्कृतिक विरासत के बारे में जानकारी प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। विद्यार्थियों के माता-पिता को समय-समय पर उपयोगी व्यक्तिगत जानकारी के स्रोत के रूप में आमन्त्रित किया जा सकता है और उन समुदायों का भ्रमण करना जहाँ विविध विद्यार्थी रहते हैं, अध्यापकों को वर्तमान सामाजिक समर्थन के स्तर और विद्यार्थी को कक्षा के बाहर किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, इसके बारे में एक विचार देने में मदद मिल सकती है।

अध्यापक पूर्वाग्रहों से बचें

कक्षा में बहुसंस्कृतिवाद के महत्व को पूरी तरह से समझने और कक्षा में उसे लागू करने के लिए, अध्यापकों को सबसे पहले अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं, मूल्यों और पूर्वाग्रहों की पूरी तरह से जाँच करनी चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि अध्यापक अन्य संस्कृतियों के बारे में सीखने के लिए पूरी तरह से तैयार हैं। उनके मूल्यों, परम्पराओं, संचार शैलियों, सीखने की प्राथमिकताओं, समाज में योगदान से परिचित होने से कक्षा में बहुसांस्कृतिक शिक्षा को लागू करना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।

अपने विद्यार्थियों की सीखने की शैली समझें

अध्यापक विद्यार्थियों को उनकी स्वयं की सीखने की शैली खोजने में मदद करके उनकी शैक्षणिक शक्तियों को पहचानने में मदद कर सकते हैं। इस तरह, विद्यार्थी अपनी पृष्ठभूमि और व्यक्तित्व के आधार पर यह समझ पाते हैं कि सीखने की कौन सी विधि उनके लिए सबसे उपयुक्त है। यदि अध्यापक इस सीखने की शैली को एक कक्षा परियोजना के रूप में उपयोग करते हैं, तो हम कह सकते हैं कि कक्षा में बहुसंस्कृतिवाद में एक अन्तर्निहित पाठ को पढ़ाया जाता है।

विद्यार्थियों को अपनी विरासत पर गर्व करने के लिए प्रोत्साहित करें

अध्यापकों को सकारात्मक दृष्टि से विद्यार्थियों के बीच व्याप्त मतभेदों की तलाश करनी चाहिए। इसके लिए अध्यापक विद्यार्थियों को उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर निबन्ध लिखना या अन्य विद्यार्थियों के साथ साझेदारी करके एक-दूसरे की संस्कृति को जानने और समझने जैसे परियोजना कार्य दे सकते हैं। ऐसा करने से विद्यार्थी अपनी संस्कृति की उन बारीकियों से परिचित होंगे जो उनकी पीढ़ियों के पारिवारिक इतिहास पर नजर डालते हैं, या विद्यार्थियों से उनके वर्तमान पारिवारिक ढाँचे को देखने के लिए कह सकते हैं। इससे विद्यार्थी एक-दूसरे की संस्कृति से परिचित होंगे और कक्षा में बहुसांस्कृतिक शिक्षा को बढ़ावा मिलेगा और सामूहिक कार्य करने से समावेशन को भी बढ़ावा मिलता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक रूप से भिन्न विद्यार्थियों के बीच एक स्वस्थ और सौहार्दपूर्ण परिवेश को बहुसंस्कृतिवाद के प्रति सहिष्णुता की पहली अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। इसका दायित्व सबसे पहले अध्यापकों और फिर माता-पिता पर होता है और अध्यापकों के लिए कक्षा में प्रदान किए जाने वाले बहुलतावादी मूल्यों को साकार करने के लिए एक परीक्षण के चरण के रूप में बहुसांस्कृतिक शिक्षा को स्वीकार किया जाता है। क्योंकि जब एक बार इन मुख्य बिन्दुओं पर अत्यधिक ध्यान दिया जायेगा, तो बहुसंस्कृतिवाद अनिवार्य रूप से शिक्षा को समृद्ध करेगा और अत्यधिक सांस्कृतिक विविधता से शामिल और कर्तव्यनिष्ठ विद्यार्थियों की संस्कृति को भी समृद्ध करेगा और कई मतभेदों के प्रति संवेदनशील और विचारशील होगा। राजनीतिक रूप से प्रासंगिक सहित सभी आवश्यक विषयों पर असम्बद्ध संस्कृतियों के विद्यार्थियों के बीच लगातार, अचानक या नियोजित बहस, चर्चा और संवाद, सांस्कृतिक अन्तराल को भरने या खत्म करने और एक के लिए दूसरे के अनुचित पूर्वाग्रहों और आशंकाओं को दूर करने में मदद करेगा। सामाजिक समावेशन केवल बहुसंस्कृतिवाद या बहुसांस्कृतिक शिक्षा द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह इसे सक्षम करने के लिए एक उपजाऊ जमीन और प्राकृतिक माध्यम के रूप में कार्य करता है। बहुसंस्कृतिवाद और शिक्षा एक-दूसरे के लिए परस्पर लाभकारी हैं। एक संस्था के रूप में बहुसांस्कृतिक शिक्षा अपने विद्यार्थियों को विरासत और संस्कृति नामक एक मिश्रण का गठन करने वाली असतत इकाइयों को बनाए रखने के कई शानदार प्रमाणों में से एक के साथ खड़े होने के लिए प्रोत्साहित करती है। दूसरी तरफ, बहुसंस्कृतिवाद शिक्षा को पर्याप्त रूप से और आनुपातिक रूप से कई संस्कृतियों और सभ्यताओं का प्रतिनिधित्व करने और जोर देने के लिए पाठ्यक्रम सामग्री के सुधारात्मक और आन्तरिक हस्तक्षेप की सम्भावनाओं को एक साथ सम्पन्न करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बहुसांस्कृतिक शिक्षा सामाजिक समावेशन को बढ़ाने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करती है, आवश्यकता है तो बस इस बात

की कि बहुसांस्कृतिक शिक्षा को सही रूप से लागू किया जाए जिसके लिए अध्यापकों के साथ-साथ माता-पिता और प्रशासकों को भी अपनी जिम्मेदारी को समझना होगा।

सन्दर्भ

एन.सी.ई.आर.टी. (2020). *इनक्लूजन इन एजुकेशन,* नेशनल कौसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नई दिल्ली.

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (2021). इम्प्लीमेंटेशन प्लान फॉर नेशनल एजुकेशन पालिसी, सार्थक (भाग-1) : स्टूडेंट्स एंड टीचर्स होलिस्टिक एडवांसमेंट थ्रू क्वालिटी एजुकेशन, डिपार्टमेंट ऑफ विद्यालय एजुकेशन, मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया.

कैप्पो, डी.एम. (2002). सोशल इनक्लूजन एज अ डिटरमिनेंट ऑफ मेन्टल हेल्थ एंड वेल बींग, डे, एच.ए. (1998). सोशल एक्सक्लूजन इन पॉलिसी एंड रिसर्च : ऑपरेशनलाइजिंग द कांसेप्ट, 11-24.

कैफे डिसेंसुस एवरीडे, (2021). मल्टीकल्चरलिज्म एंड सोशल इनक्लूजन एट विद्यालय लेवल, जनवरी 30, 2021. रिट्राइव्ड फ्रॉम 23 अप्रैल, 2023, https://cafedissensuseveryday.com/2021/01/30/multiculturalism-and-social-inclusion-at-school-level/

लिमये, एस. (2016). 'विकलांगजनों का सामाजिक समावेशन : मुद्दे और रणनीतियाँ', *योजना पत्रिका,* मई.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (2020). शिक्षा मन्त्रालय, नई दिल्ली.

रोबो, एम. (2014). 'सोशल इनक्लूजन एंड इंक्लूसिव एजुकेशन', *एकेडेमिकस-इंटरनेशनल साइंटिफिक जर्नल.* वोकेशनल एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, अल्बानिया. 191-201.

सोशल इन्क्लूजन फ्रेमवर्क (2016). सुर्री काउंटी काउन्सिल.

शेख, एम. एवं अहमद, एस.बी.वी. (2017). 'रोल ऑफ ग्लोबलाइजेशन इन इंक्लूसिव एजुकेशन', *स्कॉलर्ली रिसर्च जर्नल फॉर इंटरडिसीप्लीनरी स्टडीज,* 4(32). 41-46.

त्यागी, जी. (2016). 'रोल ऑफ टीचर इन इंक्लूसिव एजुकेशन', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड एप्लाइड रिसर्च,* 6(1), 115-116.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 61-75)
UGC-CARE (Group-I)

बच्चों की घरेलू भाषा और शिक्षक : एक समीक्षा

छाया राजोरा*

यह लेख मानक हिन्दी सीखने में बच्चों की घरेलू भाषा अवधी की भूमिका पर शिक्षकों के दृष्टिकोण, धारणाओं एवं शिक्षण शास्त्रीय पद्धतियों का विवरण प्रस्तुत करता है। यह लेख एक ऐसे शोध का अंश है, जिसमें उत्तरप्रदेश के लखनऊ एवं बहराइच जिलों में प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ा रहे 50 शिक्षकों ने भाग लिया। सभी शिक्षक दोनों जिलों के ग्रामीण और शहरी इलाकों के स्कूलों में पढ़ा रहे थे। शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों की घरेलू भाषा अर्थात् अवधी को असहज करार दिया और विभिन्न स्तरों पर गलत तथा हीन माना। उन्होंने अवधी को देहाती करार दिया और इस विद्यालयी भाषा के स्तर पर लाने के लिए गहन सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता पर बल दिया। विद्यार्थियों के वाचन को बदलने के लिए शिक्षक उन्हें लगातार शुद्ध और सही भाषा का प्रयोग करने के लिए टोकते रहते हैं। अवधि के प्रति तिरस्कारपूर्ण रवैये के कारण शिक्षक बच्चों के समृद्ध मौखिक अनुभवों को नहीं पहचानते और मानक भाषा का उपयोग करने पर जोर देते हैं।

* प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की कई परियोजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाई है। भाषा और बोली के सम्बन्ध पर शोध किया है तथा भाषा शिक्षण पर काम करती रहीं हैं।
E-mail:

परिचय

शैक्षिक विमर्श में भाषा का प्रश्न काफी जटिल है। हाल के दशकों में ही इस पर अकादमिक जाँच-पड़ताल होनी शुरू हुई है। ऐसे दो महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जो भाषा की शैक्षणिक पड़ताल में उभरते हैं : पहला, बच्चों को उनकी भाषा में पढ़ाने का दूसरा, उन्हें मानक भाषा पढ़ाना। उत्तरी भारत में हिन्दी एक बोल-चाल की भाषा है और विद्यालयों में एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। साथ ही, यह अन्य विषयों के लिए शिक्षा के माध्यम के रूप में भी काम करती है। उत्तरी भारत के विद्यालयों में पढ़ने वाले काफी सारे बच्चे घर पर अनिवार्यत: बोल-चाल की भाषा के रूप में हिन्दी का उपयोग नहीं करते हैं लेकिन, टी.वी. और इन्टरनेट के कारण उनके माहौल में वह बनी रहती है। बड़ी संख्या में बच्चे घर पर अलग भाषाओं का उपयोग करते हैं जो विद्यालयी हिन्दी से भिन्न होती है (कुमार, 2001)। लेकिन विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को विद्यालयों में पहले दिन से ही हिन्दी में पढ़ाया जाता है।

विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हमेशा से एक जटिल मुद्दा रहा है। कई सरकारी नीतियों ने इस सन्दर्भ में मातृभाषा के उपयोग के महत्व को रेखांकित किया है। 1960 के दशक से ही विभिन्न नीतियाँ और आयोग प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या घरेलू भाषा के उपयोग पर लगातार जोर देते रहे हैं। इन सभी ने एक मत से बच्चे के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में भाषाओं की बहुलता को पहचानने की आवश्यकता पर बल दिया है एवं शैक्षिक संवाद में भाषा के जटिल मुद्दे को सम्बोधित किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने शिक्षा प्रदान करने का माध्यम मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा को बनाया था (मेगनाथन, 2015)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्राथमिक स्तर पर एवं उससे भी आगे, जहाँ तक सम्भव हो, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के महत्व पर बल देती है।

घरेलू भाषा और मानक भाषा के अन्तर्सम्बन्ध का मुद्दा काफी जटिल है। मैंने हिन्दी और अवधी के विशिष्ट सन्दर्भ में इस अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया है जिसमें बच्चे की भाषा पर शिक्षकों के दृष्टिकोण और उनके शिक्षण शास्त्रीय पद्धतियों का विवरण शामिल है। यह लेख बच्चों की घरेलू भाषा अवधी, और मानक भाषा सीखने में उसकी भूमिका पर शिक्षकों के दृष्टिकोण का वर्णन करता है। बच्चों की घरेलू भाषा के सम्बन्ध में शिक्षकों की धारणाओं का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

इस अध्ययन में उत्तर प्रदेश के लखनऊ एवं बहराइच जिलों में प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ा रहे पचास शिक्षकों ने भाग लिया। वे निजी और सरकारी विद्यालयों में पढ़ा रहे थे और आगे लेख में उन्हें तदनुसार निजी विद्यालय शिक्षक (निविशि) और सरकारी विद्यालय शिक्षक (सविशि) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। सभी शिक्षक दोनों जिलों के ग्रामीण और शहरी इलाकों के स्कूलों में पढ़ा रहे थे।

अवधी इंडो-आर्यन भाषा समूह में आती है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से भारत के उत्तर प्रदेश के मध्य भाग (जिसे अवध क्षेत्र भी कहा जाता है) और नेपाल के कुछ हिस्सों में किया जाता है। अवध प्राचीन काल से ही एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है (सक्सेना, 1937)।

वर्तमान में उत्तर प्रदेश के सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, बहराइच, गोंडा, सुल्तानपुर, बाराबंकी, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, श्रावस्ती, बलरामपुर, सिद्धार्थ नगर, अम्बेडकर नगर, प्रयागराज (इलाहाबाद), मिर्जापुर और जौनपुर जिले के कुछ हिस्से अवध क्षेत्र में शामिल किए जाते हैं (भसीन, 2018)। ग्रियर्सन (1904) और सक्सेना (1937) के अनुसार औधी, पूरबी, कोसली और बैसवारी अवधी भाषा के अन्य नाम थे।

खंड 1 : बच्चों के भाषाई ज्ञान-संग्रह को बदलने के लिए शिक्षण

शिक्षकों के अनुसार अवधी स्कूली हिन्दी से विभिन्न स्तरों पर भिन्न होती है। उनके अनुसार अवधी बोलने वाले बच्चों की भाषा और वाक्य-विन्यास गलत होता है और वे अपनी घरेलू भाषा के अनुरूप जातिवाचक संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया का उपयोग करते हैं। निम्नलिखित तीन उप-खंडों में शिक्षकों के दृष्टिकोण का गहराई से विश्लेषण किया गया है।

(1) बच्चों की भाषा का विवरण

सभी सविशि ने कहा कि उनके विद्यार्थी विद्यालय आकर शुरू में क्षेत्रीय भाषा अवधी का इस्तेमाल करते हैं। इस मामले में शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं से मुद्दों की एक समृद्ध शृंखला बनती है जो तालिका 1 में प्रस्तुत की गई है।

तालिका 1

विद्यालय में प्रवेश के समय बच्चों की भाषा पर शिक्षकों द्वारा उठाये गए मुद्दे

	सविशि		निविशि		कुल	
	सं. 30	प्रतिशत	सं. 20	प्रतिशत	सं. 50	प्रतिशत
अवधी शब्दावली के साथ मुख्य रूप से हिन्दी भाषा का प्रयोग	10	33.3	10	50	20	40
केवल अवधी का प्रयोग	14	46.6	1	5	15	30
बच्चे की भाषा में सुधार करना होता है	12	40	2	10	14	28
अवधी औरखड़ी बोली के मिश्रित रूप का प्रयोग करते हैं	2	6.6	1	5	3	8
बच्चे की भाषा शिक्षक की समझ नहीं पाते	4	13.3	-	-	4	8
बच्चे हिन्दी ही बोलते हैं	2	6.6	1	5	3	6
कुछ बच्चे अंग्रेजी वाक्यांश बोलते हैं	-	-	3	15	3	6

प्रतिभागी शिक्षकों में 40 प्रतिशत ऐसे थे जिन्होंने विद्यालय में प्रवेश के समय अपने विद्यार्थियों को मुख्य रूप से अवधी शब्दों के साथ हिन्दी का प्रयोग करते हुए पाया। हालाँकि, सरकारी और निजी विद्यालय के शिक्षकों की राय के बीच उल्लेखनीय अन्तर था। 46.6 प्रतिशत सविशि के अनुसार बच्चे विद्यालय में बातचीत करने के लिए अवधी का इस्तेमाल करते हैं, जबकि केवल 5 प्रतिशत निविशि ने बच्चों को अवधी शब्दावली का बहुतायत में

उपयोग करते देखा था। यहाँ ध्यान देने योग्य आंकड़ा है कि 40 प्रतिशत सविशि और 10 प्रतिशत निविशि का मानना था कि बच्चों की भाषा में सुधार की आवश्यकता है क्योंकि यह विद्यालय में उपयोग की जाने वाली मानक भाषा से अलग होती है। 13.3 प्रतिशत सविशि थे जिन्होंने कहा कि बच्चों की भाषा अलग है इसलिए उनकी अभिव्यक्ति को समझना और कक्षा में संवाद कर पाना मुश्किल हो जाता है। शिक्षकों ने बार-बार कहा कि अवधी मानक हिन्दी से अलग है। वह स्कूली हिन्दी से शब्दावली,वाक्य-विन्यास और उच्चारण नियमों के विभिन्न स्तरों पर अलग है। तालिका 2 शिक्षकों द्वारा शब्दावली के स्तर पर बताये गए अन्तर को प्रस्तुत करती है।

तालिका 2

बच्चों की बोली में शिक्षकों द्वारा पहचाने गए अवधी के शब्द

अवधी	हिन्दी	अवधी	हिन्दी
छगड़ी	बकरी	गईया	गाय
बजरवा	बाजार	गिरगवा	गिर गया
पहुना	रिश्तेदार	वनसठ	उनसठ
नीक	अच्छा	बहा	फेंक
गेन्दा	गेन्द	बकायन	नीम
भात	चावल	दारहे/दाहे	पास
दुई	दो	नियरे	पास
गोड़	पैर	तबिया	थाली
बयार	हवा	दस्तना	चिमटा
बहारना	झाड़ना	मिट्टा	झाड़ना
बल्टिया	बाल्टी	मढई	कच्चा
बिरवा	पेड़	किलवा	केला
भू	मिट्टी	घाम	धूप
पल्ला/किवाड़	दरवाजा	घर	कमरा
रबड़िया	रबड		

तालिका 2 में वे शब्द हैं जिनमें बच्चों द्वारा इस्तेमाल अवधी के रूप और हिन्दी रूप में अन्तर देखा जा सकता है। शिक्षकों ने निराशा भरे स्वर में कहा कि अवधी की एक विशिष्ट शब्दावली है क्योंकि इसमें हिन्दी की तुलना में जातिवाचक संज्ञा और क्रिया अलग-अलग होती हैं, इस कारण वे शुरूआत में विद्यार्थियों के साथ संवाद करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। बहराइच के कई सविशि ने इस कारक को शैक्षणिक कारणों से बच्चों के साथ बात कर पाने एक बड़ी बाधा के रूप में देखा। उनके शब्दों में -

शुरूआत में तो हमारी भाषा को समझ ही नहीं पाए, ना हम इनकी। वो कहते छगड़ी चराने जा रहा हूँ। मैं क्या सोचूँ छगड़ी क्या है?

शुरूआत में तो समझने में दिक्कत आई जो यहाँ की स्थानीय भाषा है, जो इनके घर की क्षेत्रीय भाषा है, उसमें कुछ चीजों में अन्तर था। जैसे हम किसी चीज को फेंक देते हैं तो ये कहते हैं बहा दिया। ये सब चीजें हमको समझ नहीं आती थी।

शिक्षकों ने विद्यार्थियों को अपनी तरह मानक भाषा को समझने और उपयोग करने में असमर्थ माना। उन्होंने बच्चों की घरेलू भाषा के बारे में बात करते समय लगातार अप्रिय लहजे का इस्तेमाल किया जो कि उनकी अरुचि और उदासीनता को चित्रित कर रहा था। सविशि और निविशि दोनों ने बच्चों की भाषा को देहाती कहकर सम्बोधित किया। एक प्रासंगिक अभिव्यक्ति है :

आपको पता ही है देहाती, गाँव की भाषा कैसी होती है, वैसी ही बोलते हैं।

जिस हाव-भाव के साथ शिक्षक ने देहाती शब्द का प्रयोग किया उसमें अवधी बोलने वाला व्यक्ति असभ्य और शालीनता के बिना बात करने वाले की तरह चित्रित हो रहा था। इस तरह के कई अपमानजनक विशेषणों का प्रयोग शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों की भाषा का वर्णन करते हुए किसी न किसी सन्दर्भ में किया। उनकी अभिव्यक्तियाँ हमें भाषा के विशिष्ट रूपों के मुद्दे पर ले जाती हैं जो एक औद्योगिक और आधुनिक संस्थागत ढांचे में वांछनीय हैं। एक समूह की बोली को हीन करार दिया और उसे एक सभ्य समाज के दायरे से बाहर माना (ओरिसिनी, 2002)। उदाहरण के लिए, शिक्षकों ने अवधी की जातिवाचक संज्ञाओं को अपरिष्कृत के रूप में वर्गीकृत किया क्योंकि वह विद्यालय की भाषा के मानकों से अलग थीं।

(2) वाक्य-विन्यास : पूर्वसर्ग और लिंग

शिक्षकों ने बच्चों की घरेलू भाषा और विद्यालयी भाषा के बीच वाक्य-विन्यास, पूर्वसर्ग और लिंग अन्तरों को विशेष माना। उन्होंने अवधी वाक्य विन्यास को गलत माना और सोचा कि उनके विद्यार्थी सही वाक्य बनाने में असमर्थ हैं। एक शिक्षक ने बच्चे से उसकी अनुपस्थिति के बारे में पूछा उस बच्चे का उत्तर इस सन्दर्भ में एक सटीक उदाहरण प्रस्तुत करता है -

शिक्षक : तुम कल स्कूल क्यूँ नहीं आये थे?

बच्चा : हम हैरान थे। (हिन्दी अर्थ - मैं बीमारी के कारण परेशानी में था।)

बच्चे का उत्तर सुनकर शिक्षक चौंक गए क्योंकि इस वाक्यांश का अर्थ मानक हिन्दी में बिल्कुल अलग है। अन्य शिक्षकों ने भी जोर देकर कहा कि बच्चों की घरेलू भाषा के शब्द अजीबोगरीब होते हैं और वाक्य संरचना गलत होती है। अवधी में कर्ता का प्रयोग किए बिना वाक्यों का अर्थपूर्ण सृजन और प्रयोग सम्भव है, लेकिन, एक हिन्दी शिक्षक इसे अनुचित अभिव्यक्ति मानेंगे। तालिका 3 हिन्दी और अवधी की अलग वाक्यात्मक अभिव्यक्तियों को प्रस्तुत करती है जो शिक्षकों ने बताईं।

तालिका 3
वाक्यात्मक अन्तर के उदाहरण

अन्तर	अवधी	हिन्दी	अवधी	हिन्दी
ध्वनियों का मेल	जयेबे, पानी पी आई।	जाते हैं, पानी पी कर आते हैं।	सब लोग उका भात खाये क दहिनी।	सब लोगों ने उसको चावल खाने के लिए दिए।
सर्वनाम	उ दिन रामकय जनम भवा रहय।	उस दिन राम का जन्म हुआ था।	उ सैतानी करत रहय।	वह शैतानी करता रहता था।
वाक्य के स्तर पर	हियाँ आओ।	इधर आओ।	अट गए?	पहुँच गए?
	बिहान भरे।	उस दिन।	खींच दिया, छांट दिया।	कपड़ा धो दियाहै।

उपरोक्त अभिव्यक्तियों से पता चलता है कि हिन्दी में वाक्य की प्रत्येक इकाई अलग होती है जबकि अवधी में ध्वनियों का उच्चारण अलग-अलग नहीं होता। कुछ ध्वनियाँ अपने से पिछली ध्वनि में मिल जाती हैं और एक इकाई के रूप में बोली जाती हैं। ध्वनियों का यह मिलन अवधी को एक खास प्रारूप देता है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप ध्वनियाँ या तो जुड़ती हैं या एक नया शब्द बनाने के लिए बदल जाती हैं (सक्सेना, 1937)। इसलिए एक शहरी हिन्दी भाषी के लिए अवधी भाषा गीतात्मक प्रतीत होती है क्योंकि ध्वनियाँ आपस में घुली-मिली और जल्दी-जल्दी सुनाई आती हैं। जबकि, हिन्दी में हर ध्वनि अलग और स्पष्ट सुनाई आती है। मानक हिन्दी में वाक्य के प्रत्येक भाग को स्पष्ट रूप से उच्चारित किया जाता है, वहीं अवधी में विभिन्न शब्दों के अन्त और शुरूआत की ध्वनियों का मेल हो जाता है। अवधी भाषा में एक नाटकीय प्रतिपादन नहीं होता, जिस पर भारतीय शिक्षक अक्सर हिन्दी कक्षाओं में जोर देते हैं (सिन्हा 2012)। शिक्षकों ने इन अन्तरों को हीनता का सूचक माना, केवल अन्तर नहीं।

तालिका 3 में यह भी देखा जा सकता है कि हिन्दी सर्वनाम अवधी सर्वनाम से अलग होते हैं। हिन्दी सर्वनाम 'वह' अवधी में 'उ' हो जाता है; और सर्वनाम 'उसको' 'उका' बन जाता है। यह उल्लेखनीय है कि अवधी में हिन्दी की तरह सहायक क्रिया नहीं होती और इसके लिए वक्ता भिन्न-भिन्न सहायक क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। स्कूली हिन्दी की संस्कृति में गहराई से डूबे हुए शिक्षक को उपरोक्त विशेषताओं के कारण एक अवधी-भाषी बच्चे का वाक्य-विन्यास गलत लगता है। शिक्षकों की धारणा में गैर-हिन्दी परसर्गों, सहायक क्रियाओं और शब्दावली का प्रयोग सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। इसलिए उन्हें विद्यार्थियों को बार-बार कहना पड़ता है कि वाक्य को सही ढंग से बनाएँ और मानक शब्दावली का उपयोग करें। सभी शिक्षकों ने एक मत से कहा कि वे प्रारम्भिक कक्षाओं से ही बच्चों को घरेलू भाषा के प्रयोग करने पर टोकते हैं और उन्हें मानक स्तर पर लाने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ता है। एक व्यथित सविशि ने निम्नलिखित उदाहरण दिया -

बिल्कुल वाक्य बनाने में तो समस्या आती है। मैंने एक शब्द दे दिया 'पेड़' पर वाक्य बनाओ तो ये बच्चे अगर लिखेंगे 'आम पेड़ बगीचे लगा है' या 'पेड़ आम लगा है',

'बगीचा पेड़ लगा है'। इस तरीके से पूर्वसर्ग में इनकी गलतियाँ होती हैं कि शब्द को कैसे जोड़ना है। वो शब्द समझ गए 'आम' समझ गए लेकिन कहाँ पर वाक्य को जोड़ा है वो समझ ही नहीं पाए।

यह सविशि विद्यार्थियों की गलत वाक्य संरचना पर बात करते हुए भड़क गयीं और उन्होंने कहा कि बच्चे हिन्दी परसर्गों और विभक्तियों को प्रयोग नहीं करते। वे गलत वाक्य बनाते हैं। विभिन्न परसर्गों एवं विभक्तियों का प्रयोग हिन्दी भाषा की विशेषता है,परन्तु अवधी में इनके न होने के कारण बच्चे विद्यालय के प्रारम्भिक दिनों में उनका प्रयोग सही से नहीं कर पाते। जाहिर है, वह उनके लिए एक नया काम होता होगा जिसकी उम्मीद शिक्षक पहले दिन से रखते हैं लेकिन, उसे सिखाते नहीं हैं। वे इसको सिखाने लायक मुद्दा भी नहीं मानते हैं। शिक्षक केवल निम्नलिखित वाक्यों को सार्थक और सही मानेंगे।

बगीचे में पेड़ लगा है।

पेड़ पर आम लगा है।

आम का पेड़ बगीचे में लगा है।

33.3 प्रतिशत सविशि ने बताया कि बच्चे हिन्दी में वाक्य बनाते समय लिंग नियमों की गलती करते हैं। प्रख्यात भाषाविद् बाबू राम सक्सेना (1937) के अध्ययन से पता चलता है कि अवधी में लिंग नियम लचीले होते हैं जबकि हिन्दी में तुलनात्मक रूप से जटिल होते हैं। ये नियम संज्ञाओं, क्रियाओं और परसर्गों के उपयोग को प्रभावित करते हैं और हिन्दी भाषा को एक नियम-शासित प्रारूप देते हैं। उल्लेखनीय है कि हिन्दी भाषा में दो लिंग होते हैं - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। हिन्दी भाषा में क्रिया के रूप और वाक्य संरचना को निर्धारित करने में संज्ञा का लिंग और संख्या एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (कैल्लोग 1893; ओल्फेन,1975; हॉल, 2012)। उदाहरण के लिए, हिन्दी क्रियाएँ जैसे देख, खा, भाग आदि यदि एकवचन पुल्लिंग के साथ प्रयोग की जाएँ तो वे 'आ' ध्वनि के साथ समाप्त होंगी किन्तु यदि इनका प्रयोग एकवचन स्त्रीलिंग के साथ किया जाए तो 'ई' ध्वनि के साथ समाप्त होंगी। निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है -

रोहन आम खाता है।

मोनिका आम खाती है।

इसके साथ ही, अवधी में विभक्तियों का प्रयोग नहीं होता। इसके फलस्वरूप, बच्चों की भाषा में वाक्य-विन्यास प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, उपरोक्त अभिव्यक्ति हिन्दी में भूतकाल में निम्न प्रकार से व्यक्त की जाएगी -

मोनिका ने रोटी खाई।

जबकि एक अवधी वक्ता इसे निम्न रूप में व्यक्त करेगा -

मोनिका रोटी खाया।

इस प्रकार अवधी भाषा में की गई उपरोक्त अभिव्यक्ति में 'ने' विभक्ति नहीं आई और क्रिया में लिंगानुसार परिवर्तन नहीं हुआ। वाजपेयी (1957) के पथ प्रदर्शक कार्य ने दर्शाया कि

'ने' विभक्ति का प्रयोग हिन्दी भाषा की एक विशिष्टता है जो अन्य कई उत्तर भारतीय भाषाओं में नहीं पाई जाती। इसके फलस्वरूप, एक अवधी वक्ता की वाक्य रचना हिन्दी श्रोता को गलत या अधूरी लगती है। तुलसी दास की रचना रामचरितमानस[1] में भी इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। जैसे कि - मरम बचन जब सीता बोला (वाजपेयी, 1957)।

शिक्षकों ने बताया कि अवधी में बात करते समय विद्यार्थी स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नियमों को ठीक से प्रयोग नहीं कर पाते। उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में इस समस्या को व्यक्त किया -

यहाँ तक कि वो पुरुष के लिए भी 'गयी', 'रही' इस्तेमाल करते हैं, उसको पुरुष, महिला में अन्तर बताना मुश्किल हो जाता है। कई बार बताओ, पुरुष के लिए 'था' और महिला के लिए 'थी' इस्तेमाल करना है...

'ता', 'ती' का प्रयोग करना नहीं आता है। लड़की के पीछे 'ता' लगा दिए और लड़के के पीछे 'ती' लगा दिया।

शिक्षक बच्चों के वाचन के साथ-साथ लेखन में लिंग-सम्बन्धी 'गलतियों' को लगातार ठीक करते हैं और वे विद्यालय के पहले दिन से ही ऐसा करना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार लिंग शब्दावली का लचीलापन, जो कि अवधी की विशेषताओं में से एक है, एक शिक्षक की नजर में कक्षायी परेशानी बन जाती है। शिक्षक इसे एक अस्थायी विशेषता नहीं मानते। वे इन्तजार नहीं करना चाहते हैं और इस भरोसे को नहीं बनाए रख पाते कि कक्षा में मानक हिन्दी का कुछ समय तक उपयोग करने से बच्चे उसके अनुरूप लिंग-नियमों का ज्ञान अर्जित कर लेंगे। हिन्दी और इसकी बोलियों में व्याकरणिक लिंग के उपयोग पर हैरिस (1968) ने अपने शोध में रेखांकित किया कि बोलचाल की भाषा और मानक हिन्दी में लिंग नियम के उपयोग में अन्तर होता है। हिन्दी भाषा की बोलियों में लिंग-नियमों का पालन हिन्दी की अपेक्षा असंगत है। दूसरी तरफ, हिन्दी भाषा में वाक्य बनाने के लिए संज्ञा-लिंग वर्गीकरण से सम्बन्धित नियम सख्त और जटिल हैं। इसीलिए अवधी-भाषी बच्चे बोलते समय हिन्दी के पारंपरिक लिंग नियमों का उपयोग करते समय संघर्ष करते हैं। उनकी भाषा के नियम भिन्न हैं। अवधी बोलते समय पुल्लिंग कर्ता के लिए स्त्रीलिंग पहलू-चिह्नक का भी इस्तेमाल किया जा सकता हैं और इसी प्रकार स्त्रीलिंग कर्ता के लिए पुल्लिंग पहलू-चिह्नक का भी प्रयोग कर सकते हैं। प्रतिभागी शिक्षक इस भाषाई विशेषता से अनभिज्ञ और अछूते रह गए। हालाँकि, यह भारत के अधिकांश शिक्षकों की सामान्य प्रवृत्ति है कि वे बोलचाल की भाषाओं की विशेषताओं को सिर्फ त्रुटियों के रूप में ही देखते हैं। फिर भी, यह विचारणीय मुद्दा है कि रामचरितमानस जैसे महाकाव्य के बावजूद अवधी का संस्कार उसकी भूमि पर खड़े स्कूलों में ही तिरस्कार का सामना कर रहा है और उसका इस्तेमाल करने वालों पर हीनता आरोपित हो रही है।

(3) उच्चारण

यह उपखंड विद्यार्थियों की उन त्रुटियों को प्रस्तुत करता है जिनकी चर्चा शिक्षकों ने विस्तार से की। शिक्षक बच्चों के उच्चारण को अशुद्ध मानते हैं जो तालिका 4 में प्रस्तुत हैं -

तालिका 4
हिन्दी और अवधी में उच्चारण में अन्तर

अवधी	हिन्दी	अवधी	हिन्दी
साम	शाम	आवस्यक	आवश्यक
सछम	सक्षम	उतकर्स	उत्कर्ष
बारिस	बारिश	नखलऊ	लखनऊ
पिरिया	प्रिया	लाम	राम
जोस	जोश	सरक	सड़क
छमा	क्षमा	परेंठा	परांठा
कोसिस	कोशिश	परकास	प्रकाश
डिल्ली	दिल्ली	कुत्ती	कुश्ती
कुती	कुटीर	भुंजी	भुनी

शिक्षकों ने यह पाया कि बच्चे कुछ खास स्वरों एवं व्यंजनों का उच्चारण करने में अक्षम होते हैं जैसे कि ल, ड़, एवं संयुक्ताक्षर क्ष, प्र। सक्सेना (1937) के अनुसार, संयुक्ताक्षर जैसे क्ष, प्र अवधी में नहीं पाए जाते। फलस्वरूप, स्कूल में विद्यार्थी काफी वर्षों तक संयुक्त ध्वनियों वाले शब्दों का उच्चारण करने में असमर्थ होते हैं। यह उनके लिखित कार्य में भी परिलक्षित होता है। शिक्षकों की धारणा में, बच्चे लिखने में गलतियाँ करते हैं क्योंकि वे शब्दों का सही उच्चारण नहीं कर पाते। उन्होंने अपनी धारणाओं को इस प्रकार व्यक्त किया -

सही बोलते नहीं हैं, फिर जैसा बोलते हैं वैसा लिख देते हैं।

बच्चे शब्द नहीं बोल पाते, शुद्ध नहीं बोलते, अन्तर नहीं कर पाते श, स, र नहीं बोलते, अभिभावक ही उपयोग नहीं करते तो बच्चे क्यों करेंगे, तो हम यह कोशिश करते हैं कि बच्चे सही बोलें।

वैद और गुप्ता (2002) के अनुसार हिन्दी शब्दांशों के उच्चारण (सिलेबिक) एवं वर्णमालायी (अल्फाबेटिक) नियमों से चलती है। हिन्दी में ऐसे कई शब्द हैं जिनका उच्चारण उनकी वर्तनी से हू-ब-हू नहीं मिलता है। उदाहरण हैं - कौआ, भैया, ग्यारह, ज्ञान आदि। इसके अलावा एक और पहलू है, उदाहरण के लिए 'कमल' शब्द में क और म एवं म और ल के बीच में 'अ' ध्वनि है जो चिह्नित नहीं की जाती। जबकि, शिक्षकों के बीच यह एक सामान्य धारणा है कि विद्यार्थी के मस्तिष्क में किसी भी बोले गए हिन्दी के शब्द के रूप का सीधा सम्बन्ध उसकी वर्तनी से होता है। वे किसी शब्द की वर्तनी और उच्चारण के बीच एक सम्पूर्ण जुड़ाव देखते हैं और इसे एक सरल कड़ी मानते हैं। वे वर्तनी की असली समझ से परे हैं कि वह किसी भी भाषा के लिखित रूप की परंपराओं से आती है (कौलमास, 2003)। जब

अवधी और हिन्दी जैसी दो भाषाओं के बीच पारस्परिक क्रिया की बात आती है, तो किसी शब्द के उच्चारण और वर्तनी के बीच का सम्बन्ध और भी जटिल हो जाता है। कक्षा पहली और दूसरी में वे हिन्दी वर्तनी से परिचित नहीं होने के कारण विद्यार्थी कई सम्भावित उच्चारण और वर्तनी अपने मस्तिष्क में बनाते होंगे। प्रारम्भिक कक्षाओं में वे परिचित होने की प्रक्रिया से गुजरते हैं, लेकिन इससे पहले कि वे इस प्रक्रिया पर पकड़ बना पाएँ, उनके शिक्षक उन्हें गलतियाँ करने वाला घोषित कर देते हैं। शिक्षकों ने गलत उच्चारण के बारे में अपनी पीड़ा जाहिर की और इसके लिए बच्चों के सामाजिक परिवेश को जिम्मेदार ठहराया। उनके अनुसार ऐसी त्रुटियाँ बच्चों के घर के माहौल की कमी है जिनके कारण बच्चे सही ध्वनि और शब्द नहीं बना पाते। यह हिन्दी सीखने में एक बड़ी बाधा बनती है।

उपरोक्त चर्चा में बच्चों की भाषा के सन्दर्भ में शिक्षकों के दृष्टिकोण और अनुभवों का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इससे यह बात उभरती है कि शुरूआती कक्षाओं में प्रवेश के समय बच्चे विद्यालय में अपनी घरेलू भाषा का उपयोग करते हैं, जिसे शिक्षक गलत मानते हैं। जिसके फलस्वरूप वे स्वयं को विद्यार्थियों के साथ स्वाभाविक रूप से संवाद करने में असमर्थ पाते हैं। शिक्षकों ने अवधी और हिन्दी के बीच के अन्तरों का वर्णन किया और तर्क दिया कि बच्चों की घरेलू भाषा की देहाती प्रकृति विद्यालय में हिन्दी सीखने में बाधाएँ पैदा करती है। एक शिक्षक को अवधी-भाषी व्यक्ति का हिन्दी वाक्य-विन्यास भिन्न शब्दावली, परसर्ग और सहायक क्रियाओं की अनुपस्थिति, और लचीले लिंग नियमों के कारण गलत लगता है। बच्चों की घरेलू भाषा जिसमें वे बात करते हैं, प्राथमिक सम्बन्ध बनाते हैं और इस दुनिया का अर्थ बनाते हैं, लेकिन स्कूल में वह एक समस्या बन जाती है। शिक्षकों के दृष्टिकोण में बच्चों की भाषा के प्रति तिरस्कार परिलक्षित होता है।

अगला खंड बच्चों की घरेलू भाषा का शिक्षकों द्वारा तिरस्कार एवं उसके निहितार्थ प्रस्तुत करता है।

खंड 2 : बच्चों की घरेलू भाषा का तिरस्कार

यह खंड विद्यालय में मानक हिन्दी सीखने में घरेलू भाषा के योगदान पर शिक्षकों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इसके दो हिस्से हैं। पहले हिस्से में बच्चों की घरेलू भाषा पर शिक्षकों के तिरस्कार के निहितार्थों की चर्चा है और दूसरा हिस्सा शिक्षकों द्वारा सीखने की प्रक्रिया में शिष्टाचार पर जोर देने का वर्णन करता है।

(1) घरेलू भाषा के प्रति तिरस्कार

प्रतिभागी शिक्षकों में से 40 प्रतिशत शिक्षक ऐसे थे जिन्होंने मुख्यत: बच्चों की घरेलू भाषा की कमियों की व्याख्या की। उन्होंने अवधी और हिन्दी में भिन्नता दर्शाने के लिए अवधी में कमियों का सहारा लिया। फिर भी, विपरीतार्थक निष्कर्ष व्यक्त किया कि अवधी और हिन्दी एक ही भाषा हैं। एक शिक्षक ने इसे निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया -

बोलते तो हिन्दी ही हैं बस क्षेत्रीय भाषा के शब्द ज्यादा होते हैं। थोड़े देहाती जैसे बोलते हैं, वैसे बोलते हैं। हम उनको बताते हैं टोकते हैं ऐसे नहीं, ऐसे बोलो।

यह अभिव्यक्ति भाषा के बारे में शिक्षक की समझ को दर्शाती है। उनके अनुसार अवधी और हिन्दी एक ही भाषा हैं लेकिन साथ ही उन्हें बच्चों की घरेलू भाषा हिन्दी से अलग लगती है। शिक्षकों की अभिव्यक्ति में एक अपर्याप्त समझ उभर कर सामने आई। इस मुद्दे को स्कूल की नजर से देखा जाना चाहिए उससे पता चलता है कि अवधी में त्रुटियाँ हैं और उसके कारण बच्चों की भाषा में विचलन। परिणामस्वरूप, 40 प्रतिशत सविशि और 10 प्रतिशत निविशि को उनके विद्यार्थियों के वाचन को स्कूल के स्तर पर लाने के लिए बार-बार टोकना पड़ता है। उदाहरणत:

जब वो घरेलू भाषा में बोलते हैं तो हम उनको बार-बार बताते हैं, उनसे पूछते हैं कि कौन सी भाषा में अच्छा लगता है। जब घरेलू में बोला तब या जैसे हम बोलते हैं तब फिर बच्चे बोलते हैं...

दिक्कत आती है, शान्ति एवं धैर्य से उनको बताते हैं कि इसको ये नहीं यहाँ पर यह शब्द का प्रयोग करो... प्रबन्धित करते हैं... क्षेत्रीय भाषा में चीजें स्पष्ट होती हैं साक्ष्य होते हैं तो...

इस से पता चलता है कि शिक्षकों का नियमित शिक्षण और संवाद उस मूल्य संरचना पर आधारित हैं जो बच्चे की भाषा को विद्यालय के लिए अनुपयुक्त मानती है। शिक्षकों ने बताया कि उनके विद्यार्थी जान जाते हैं कि तीसरी कक्षा पूरी करने तक उन्हें मानक भाषा में बोलना होगा। हालाँकि, ऐसा हो नहीं पाता तो बच्चे अनायास ही अवधी में बोलते रहते हैं और कई बार उनके साथी उनके शब्दों को गलती के रूप में टोकते जाते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 (एनसीईआरटी, 2006अ) ने इस तर्क पर जोर दिया है कि द्वि/बहुभाषिता संज्ञानात्मक विकास, विविध सोच और शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ावा देती है। प्रारम्भिक कक्षाओं से ही शिक्षक कक्षा में ऐसा माहौल बनाते हैं जिसमें सहपाठी ही भाषा के सही और गलत उपयोग की लगातार याद दिलाने वाले एजेंट बन जाते हैं। होल्ट (2005) ने तर्क दिया है कि ऐसे क्षण एक बच्चे के सार्वजनिक अपमान के होते हैं। अधिकतर बच्चे व्यक्तिगत रूप से कभी न कभी ऐसी परिस्थितियों का सामना करते हैं। बच्चे की घरेलू भाषा और वाचन गहरी जाँच और परख का विषय बन जाते हैं। शुरूआती कक्षाओं में जब बच्चा औपचारिक भाषा से परिचित नहीं होता लेकिन अपने विचारों को सामने रखने की कोशिश करता है तब या तो शिक्षक या उसके सहपाठी उसका ध्यान ज्यादातर उसकी 'गलतियों' पर खींचते हैं। इसके चलते विचार की या सोचने की क्षमता की उपेक्षा हो जाती है। कक्षा का माहौल ऐसा बन जाता है कि एक बच्चा यह समझ बना लेता है कि घरेलू भाषा के शब्दों का उपयोग करना एक गलती है एवं वह उसे इस्तेमाल करके उपहास का पात्र बन जाएगा। होल्ट (पूर्वोक्त) का मानना है कि बार-बार अपमान के ऐसे अनुभव स्कूल को बच्चों के लिए खतरे का स्थान बना देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यालयी भाषा पर शिक्षकों का

जोर और इसके परिणामस्वरूप निर्मित कक्षा का वातावरण एक बच्चे की खुद को स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता को सीमित कर देता है। शिक्षकों के अनुसार एक विद्यार्थी के लिए विद्यालय स्कूली भाषा का ज्ञान प्राप्त करना प्राथमिक महत्व रखता है।

(2) भाषा सीखने के रूप में शिष्टाचार

सभी शिक्षकों ने शिकायत की कि उनके विद्यार्थियों को यह नहीं पता रहता कि शिक्षक की आज्ञा लेते समय कैसे सम्बोधित करना चाहिए जैसे - शौचालय जाने के लिए, कक्षा में प्रवेश करने की अनुमति माँगने के लिए तथा विद्यालय में वयस्कों का अभिवादन करने के लिए। शिक्षकों ने कहा कि वे पहले विद्यार्थियों को ऐसे शिष्टाचार सिखाते हैं क्योंकि उनको बच्चों की भाषाई संस्कृति कमतर लगती हैं। वे घर से ये सब सीख कर नहीं आते। हिन्दी पर जोर देने के बावजूद शिक्षक शिष्टाचारी जुमलों को अंग्रेजी में सिखाते हैं। ऐसा करने को लेकर वे काफी गौरवान्वित महसूस करते हैं। उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में अपनी समझ व्यक्त की -

बच्चे अपने परिवेश से बहुत ज्यादा सम्बद्ध होते हैं। बहुत सारे में बहुत बड़ी-बड़ी समस्याएँ होती हैं। तो मैं पढ़ा रही हूँ वो घर की ही बोलते हैं समझते हैं... जिन बच्चों पर हमारे सिखाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा उन बच्चों को देख कर थोड़ी सी चिड़चिड़ाहट होती है, थोड़ा सा गुस्सा आता है कि इनको आना ही चाहिए और ये कुछ भी नहीं सीख रहे हैं। बार-बार हमने बताया कि सुबह गुड मॉर्निंग बोलते हैं, बच्चा बोल ही नहीं रहा।

हमें इनको बार-बार सिखाना पड़ता है कि बड़े लोगों को 'आप' बोलते हैं 'तुम' नहीं कहते। फिर भी वही बोलते हैं...

वयस्कों का अंग्रेजी में अभिवादन कर पाना एक भाषाई अभिव्यक्ति के रूप में हमारी शिक्षा प्रणाली की औपनिवेशिक जड़ों को उजागर करता है। कुमार (2014) ने एक वयस्क और बच्चे के बीच के सम्बन्ध में औपनिवेशिक शासन की निरन्तरता की पहचान की है। शिक्षक एक औपनिवेशिक गुरु की भूमिका निभाता है, जिसने बच्चे को सोच के नये तरीकों से परिचित कराने की जिम्मेदारी सँभाली ताकि वे बड़ों के अभिवादन का वांछित तरीका सीख सकें। शिक्षकों ने बार-बार जोर देकर कहा कि वे चाहते हैं कि उनके विद्यार्थियों को मानक हिन्दी का उपयोग करना चाहिए लेकिन, वे स्वयं बच्चों को आधी-अधूरी अंग्रेजी में अभिवादन का प्रशिक्षण दे रहे थे। विद्यार्थियों को शिक्षकों ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि बच्चों को एक वयस्क से विशेष रूप से एक शिक्षक को कैसे सम्बोधित करना चाहिए। उन्होंने बच्चों द्वारा 'तुम' द्वारा सम्बोधन के प्रति बार-बार उपयोग पर अपनी नाराजगी दिखाई। हिन्दी में द्वितीय व्यक्ति हेतु तीन व्यक्ति वाचक सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है जो दोनों लिंगों के लिए समान होता है - आप, तुम और तू। हालाँकि, इन सर्वनामों का अर्थ उन सामाजिक स्थितियों और सम्बन्धों पर आधारित होता है जिनमें वे प्रयोग किए जाते हैं। 'आप' सर्वनाम का प्रयोग प्रेषिती के प्रति विनम्रता एवं आदर का सूचक है। इसके अतिरिक्त, वक्ता के शिक्षित होने का

संकेत भी माना जाता है (जैन, 1969)। एक वयस्क के लिए उचित सम्मान-चिह्नक के उपयोग पर जोर देकर शिक्षकों ने प्रयास किया कि बच्चों की भाषा में शालीनता आए। उनका मानना था कि 'आप' का उपयोग करना परिष्कार का प्रतीक है। साथ ही, यह विद्यार्थी और शिक्षक के बीच पदानुक्रम के स्तर को बनाए रखने का भी एक प्रयास था।

एक व्यक्ति की भाषा, ज्ञान और संस्कृति का आपस में अटूट सम्बन्ध होता है। प्रत्येक बच्चे के पास ज्ञान का एक कोडिड (बर्नस्टीन, 2003) स्रोत होता है जो सांस्कृतिक प्रेषण के माध्यम से हस्तान्तरित होता है और भाषा इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हम अपने परिवेश में विकसित होते हुए जो मूलभूत शिक्षाएँ प्राप्त करते हैं, उनमें से एक भाषा का ज्ञान होता है। राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र 'शिक्षा के लक्ष्य' (एनसीईआरटी, 2006ब) के अनुसार "अपनी भाषा को बोलना सीखते समय हम कई और चीजें सीखते हैं। अपनी भाषा के माध्यम से हमें अपने परिवार तथा समुदाय के नैतिक क्रम/सन्दर्श से परिचित कराया जाता है" (पृष्ठ 7)। एक समृद्ध वातावरण और भाषाई अनुभव से बच्चे में विभिन्न श्रेणियों में दुनिया की कल्पना करने का दृष्टिकोण विकसित होता है। उदाहरण के लिए, किसी चीज की अन्तर्निहित अच्छाई या व्यवहार की वांछनीयता का शुरू से ही परिचय मिल जाता है। यह बच्चे की पहचान का एक हिस्सा बन जाता है क्योंकि वह भाषा के माहौल में सीखता और विकसित होता है। भाषा सीखने का यह वातावरण बच्चे की ज्ञान की भावनाओं और मूल्यों की भावनाओं को विकसित करता है। जब कोई बातचीत करता है तो वह संज्ञानात्मक दृष्टिकोण विकसित करता है और पदानुक्रम के विभिन्न प्रतिमानों और संरचनाओं से अवगत होता है। शिक्षक अवधी बच्चों की उन मौलिक ज्ञान भावनाओं और मूल्य भावनाओं को बदलने की कोशिश कर रहे थे जो भाषा एवं संस्कृति के माध्यम से विकसित हुईं थी। इस उद्देश्य से वे मानक हिन्दी के उन सर्वनामों एवं सम्मान-चिह्नों को विद्यार्थियों पर आरोपित करने का प्रयत्न कर रहे थे, जो उन्हें विद्यालय के लिए उपयुक्त लगता था।

पदानुक्रम के एक चिह्नक के रूप में भाषा के पहलू पर बोर्दियो (1991) का अध्ययन हमें सत्ता के तत्व पर ले जाता है। उनका तर्क है कि किसी व्यक्ति द्वारा भाषा का प्रयोग उसकी अनुमानित सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित होता है। भाषा सत्ता का एक साधन है जो उसके वांछित रूप का निर्माण करने एवं उसे बनाये रखने में मदद करती है। मानक भाषा वांछित भाषा-रूप है और क्षेत्रीय बोली को भाषा का निम्न रूप दिया गया है। भाषा सत्ता के माध्यम के रूप में कार्य करती है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की मानसिक परिकल्पनाएँ निर्मित की जाती हैं। एक विद्यालय में ये वस्तुनिष्ठ परिकल्पनाएँ शिक्षण के माध्यम से निर्मित होती हैं। एक शिक्षक द्वारा एक विद्यार्थी की वाचन शैली में लगातार 'त्रुटियों' को इंगित करने की आदत अनिवार्य रूप से एक उद्यम बन जाता है जो विद्यार्थी को उसकी भाषा से अलग करता है। लडूसा (2015) का तर्क है कि स्कूल भाषा की विविध बोलियों को प्रतिबन्धित करते हैं और एक मानक भाषा को बढ़ावा देते हैं। उनका शोध इस बात को रेखांकित करता है कि विद्यालय कुछ शैक्षणिक प्रथाओं का पालन करके भाषा की विचारधाराओं को उत्पन्न

करने के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। विद्यालय ही पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से 'मानक' को परिभाषित करता है। हिन्दी मानकीकरण की इस प्रक्रिया से गुजरी है। इस अध्ययन में भाग लेने वाले शिक्षकों ने भी इस बात पर जोर दिया कि उनके विद्यार्थियों को एक मानक शब्दावली और अभिव्यक्ति का प्रयोग करना चाहिए। उन्होंने किसी भी विषयान्तर को गलत माना। इस चर्चा से पता चलता है कि शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों की भाषा के साथ परिचित हैं ही नहीं। उनकी जानकारी बहुत सीमित है। शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों की घरेलू भाषा के प्रति अपनी पीड़ा और बेचैनी व्यक्त की और इसे विभिन्न स्तरों पर गलत और हीन माना।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह लेख बच्चों की घरेलू भाषा से शिक्षकों के परिचय की सीमाओं का वर्णन करता है। साथ ही, उनके विद्यार्थियों द्वारा बोली जाने वाली घरेलू भाषा के बारे में उनकी अवधारणाओं का भी खुलासा करता है। शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों की घरेलू भाषा यानि अवधी को असहज करार दिया और विभिन्न स्तरों पर गलत तथा हीन माना। उन्होंने अवधी को देहाती करार दिया और इसे विद्यालय की भाषा के स्तर पर लाने के लिए गहन सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता पर बल दिया। विद्यार्थियों के वाचन को बदलने के लिए शिक्षक उन्हें लगातार शुद्ध और सही भाषा का प्रयोग करने के लिए टोकते रहते हैं। हालांकि, उनकी अपने भाषाई कौशल काफी कमजोर थे। उनकी भाषाई अभिव्यक्ति की कमर चरमरायी हुई थी। वे लगातार हिंग्रेजी का इस्तेमाल करते रहे जिसमें हिन्दी विन्यास में अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल वाक्य अधूरे और अनर्गल हो रहे थे। शिक्षकों के लिए शिक्षण अनिवार्य रूप से बच्चों को टोकना, बताना और सुधारना था। शिक्षकों की समझ में भाषा शिक्षण का उद्देश्य बहुत ही सीमित उभर कर आया और वे भाषा के नियमों पर यान्त्रिक तरीके से केन्द्रित थे। शोध लेख से निकला कि एक अवधी भाषी विद्यार्थियों का संघर्ष स्कूल में प्रवेश के साथ ही शुरू हो जाता है और उन्हें सही रूप से अभिव्यक्त करने में असमर्थ करार दे दिया जाता है। अवधी के प्रति तिरस्कार पूर्ण रवैये के कारण शिक्षक बच्चों के समृद्ध मौखिक अनुभवों को नहीं पहचानते और मानक भाषा का उपयोग करने पर जोर देते रहे।

टिप्पणी

1. रामचरितमानस अवधी भाषा में तुलसीदास द्वारा 16वीं शताब्दी में रचित एक महाकाव्य है।

सन्दर्भ सूची

भसीन, आर. (2018). *दास्ताने-ए-अवध.* चेन्नई : नौशन प्रेस.

बर्नस्टीन, बी. (2003). *क्लास, कोड एंड कन्ट्रोल.* लन्दन एंड न्यूयॉर्क : रटलेज.

बोर्दियो, पी. (1991). *लैंग्वेज एंड सिम्बॉलिक पॉवर.* ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड : पोलिटी प्रेस.

कौल्मास, एफ. (2003). *राइटिंग सिस्टम्स एन इंट्रोडक्शन टू देअर लिंगविस्टिक एनालिसिस.* न्यूयॉर्क : केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

ग्रेइरसन, जी.ए. (1904). *लिंगविस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया.* कलकत्ता : ऑफिस ऑफ द सुप्रिटेनडेंट ओ द गवर्नमेंट प्रिंटिंग.

हाल, के. (2012). *अननेचुरल जेंडर इन हिन्दी इन मेकिंग सेंस ऑफ लैंग्वेज : रीडिंग्स इन कल्चर एंड कम्युनिकेशन.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 418-433.

हैलीडे, एम.ए.के. (1969). *रिलेवेंट मॉडल्स ऑफ लैंग्वेज.* एजुकेशनल रिव्यु, 22(1), 26-31.

हैरिस, आर.एम. (1968). 'कोलोकिअल डीविऐशनस इन अर्बन हिन्दी'. *एनथ्रोपोलॉजिकल लिंग्विस्टिक्स,* 10, (9) : 25-34.

होल्ट, जॉन. (2005). *द अंडर अचिविंग स्कूल.* भोपाल : एकलव्य.

जैन, डी.के. (1969). 'वर्बलाईजेशन ऑफ रिस्पेक्ट इन हिन्दी'. *एनथ्रोपोलॉजिकल लिंग्विस्टिक्स.* वॉल्यूम 11, नं. 3 : 79-97 (मार्च).

केल्लोग, रेव. एस.एच. (1893). *अ ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज.* लन्दन : कीगनपॉल, ट्रेंच, त्रुब्नेर एंड कंपनी.

कुमार, कृष्ण. (2001). *स्कूल की हिन्दी इन स्कूल की हिन्दी.* राजकमल : न्यू दिल्ली. 72- 81.

कुमार, कृष्ण. (2014). *पॉलिटिक्स ऑफ एजुकेशन इन कोलोनियल इंडिया.* रट्लेज : लन्दन.

लडूसा, सी. (2015). *हिन्दी इस आवर ग्राउंड, इंग्लिश इस आवर स्काई.* न्यूदिल्ली : फाउंडेशन बुक्स.

मेगानाथान, आर. (2015). 'मीडियम ऑफ इंस्ट्रक्शन इन स्कूल एजुकेशन इन इंडिया : द पालिसी स्टेटस एंड डिमांड फॉर इंग्लिश एजुकेशन'. *इंडियन एजुकेशनल रिव्यु.* वॉल्यूम. 53. न. 2.

नेशनल काउंसिल फॉर एजुकेशन एंड रिसर्च. (2006). *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क - 2005.* न्यू दिल्ली : एनसीईआरटी.

ओल्फेन, एच. वी. (1975). 'आस्पेक्टटेंस एंड मूड इन हिन्दी वर्ब'. *इंडो-ईरानियन जर्नल.* वॉल्यूम. 16. न. 4 : 284- 301.

ओरिसिनी. एफ. (2002). *द हिन्दी पब्लिक स्फीयर, 1920-1940.* न्यू दिल्ली. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सक्सेना, बी. (1937). *एवोलूशुन ऑफ अवधी : अ ब्रांच ऑफ हिन्दी.* दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.

सिन्हा, एस. (2012). 'रीडिंग विदआउट मीनिंग : द डिलेमा ऑफ इंडियन क्लासरूम'. *लैंग्वेज एंड लैंग्वेज टीचिंग,* 1 (1), 22-26.

वाजपेयी, कि. (1957). *हिन्दी शब्दानुशासन.* वाराणसी : नगर प्रचारिणी सभा.

वैद, जे. एंड गुप्ता, ए. (2002). *एक्सप्लोरिंग वर्ड रिकग्निशन इन सेमी-अल्फाबेटिक स्क्रिप्ट : थे केस ऑफ देवनागरी.* ब्रेन एंड लैंग्वेज 81, पृ. 679-690.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 76-84)
UGC-CARE (Group-I)

लैंगिक भूमिकाएँ, खाद्य व्यवहार एवं महिला स्वास्थ्य : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सौम्या पांडे*

इस शोध पत्र में लैंगिक भूमिकाओं और भोजन व्यवहार के बीच सम्बन्धों का पता लगाया गया है। इसके लिए समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य पर जोर दिया गया है कि कैसे सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंड, समाजीकरण और लिंग भेद व्यक्तियों के भोजन की पसन्द और खान-पान की आदतों को प्रभावित करते हैं। इसके लिए द्वितीय पद्धति का व्यवहार करते हुये विभिन्न समाजशास्त्रीय साहित्य तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी शोध रिपोर्ट का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन के परिणामों से प्राप्त होता है कि लिंग आधारित खाद्य व्यवहार समाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं से गहराई से जुड़ा हुआ है जो पारम्परिक लिंग भूमिकाओं को और सशक्त करता है।

बीज शब्द : लैंगिक भूमिका, खाद्य व्यवहार, सांस्कृतिक मानदंड, पारम्परिक मूल्य।

परिचय

अनादि काल से लभभग हर समाज में भोजन से सम्बन्धित प्रथाएँ दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं जो बदले में इसकी संस्कृति एक समृद्ध प्रतिबन्ध है। इस तरह की

*समाजशास्त्र एवं सामाजिक कार्य विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
E-mail: somyapandey1794@gmail.com

खाद्य प्रथाएँ किसी दिए गए सामाजिक सन्दर्भ में लिंग सम्बन्धों को समझने, खाना पकाने में ज्ञान, खाद्य संरक्षण और समुदायों में एवं उनके द्वारा पहचान के निर्माण में सहायक रही है। यह कथन महिलाओं के भोजन के सम्बन्ध में भी सही है।

नारीवादी अध्ययनों से पता चलता है कि महिलाओं के काम के इस पहलू की जाँच उनके घरेलू गतिविधियों के चरित्र और महत्व को स्पष्ट करती है (डिवॉल्ट, 1991)। विकास व्यवहार में 'मानव अधिकार' पहलू को बनाए रखने में इस विषय पर अध्ययन करने वालों को एक घर के क्षेत्र में असमान सम्बन्धों को समझना और भोजन तैयार करने और उपयोग प्रथम तक पहुँच के पहलुओं का अध्ययन करना आवश्यक है। महिलाओं को प्राथमिक पोषणकर्ता और बच्चों एवं परिवार के सदस्यों की देखभाल करने वालों के रूप में निर्दिष्ट करने की लैंगिक रूढ़िवादिता की जड़ें आदिम प्रथाओं से हैं जो प्रकृति में पितृसत्तात्मक कहलाता है जो विकासशील समाजों में विशिष्ट है।

लिंग भूमिका और भोजन व्यवहार का अध्ययन समाजशास्त्र में रुचि का विषय रहा है, क्योंकि यह उन तरीकों की खोज करता है जिसके माध्यम से लिंग मानदंड और भोजन से सम्बन्धित व्यवहारों को सामाजिक संरचना प्रदान होती है। लैंगिक भूमिकाएँ पुरुषों और महिलाओं के लिए उपयुक्त माने जाने वाले व्यवहार, दृष्टिकोण और विशेषताओं के बारे में सामाजिक अपेक्षाओं और मानदंडों को सन्दर्भित करती है (एग्ली, 2012)। इन भूमिकाओं का भोजन व्यवहार सहित जीवन के कई पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कई अध्ययनों ने भोजन के व्यवहार में लिंग अन्तर को प्रलेखित किया है, जैसे - महिलाओं के साथ कुछ प्रकार की भोजन सामग्री सम्पूर्ण रूप में परम्परागत पारिवारिक मूल्यों तथा लिंग भूमिका से जुड़ा हुआ है जो उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के ऊपर गहरा असर डालता है । लिंग भूमिका और भोजन व्यवहार मानव जीवन समाज के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं, जो न केवल हमारे शरीर का पोषण करता है बल्कि खुशी, समाजीकरण और सांस्कृतिक पहचान के स्रोत के रूप में भी कार्य करता है। ये दोनों ही सांस्कृतिक मानदंडों, सामाजिक संरचनाओं और व्यक्तिगत विश्वासों से प्रभावित होते हैं।

भोजन मानव जीवन का एक अनिवार्य घटक है, जो विकास और सेहत के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है। हालाँकि भोजन और लिंग भूमिकाओं के बीच सम्बन्ध को लम्बे समय से मान्यता दी गई है। लैंगिक भूमिकाओं की अवधारणा सामाजिक रूप से निर्मित अपेक्षाओं, व्यवहारों और पुरुष या महिला होने से जुड़ी प्रवृत्तियों को सन्दर्भित करती है (गफ और कोनर, 2006)। सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाओं की एक शृंखला के माध्यम से लैंगिक भूमिकाओं का निर्माण और स्थायीकरण किया जाता है। घर में श्रम विभाजन के माध्यम से लैंगिक भूमिकाओं को सुदृढ़ करने का एक तरीका है, जो अक्सर महिलाओं को भोजन तैयार करने और पकाने की प्राथमिक जिम्मेदारी के सौंपने के साथ होता है (मिंट्ज और बोइस, 2002)। श्रम का यह लैंगिक विभाजन विभिन्न समाजों द्वारा उपभोग किए जाने वाले भोजन के प्रकार और गुणवता को प्रभावित करता है, जिसमें पुरुषों की तुलना में महिलाओं

द्वारा कम गुणवत्ता वाले भोजन और कम फलों और सब्जियों का उपयोग करने की सम्भावना अधिक होती है (हिजा, 2013; गफ और कोनर, 2006)।

लिंग सिद्धान्त और खाद्य पूर्वाग्रह

लिंग को एक सामाजिक रूप से निर्मित अवधारणा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे व्यवहारिक संकेतों स्त्रीत्व और पुरुषत्व के सामाजिक नियम के द्वारा आकार दिया जाता है। लिंग प्रदर्शन कुछ ऐसा व्यवहार है जो लिंग के अर्थ की विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है एवं यह दुनिया में सभी समाजों में विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न होते हैं (स्टोन, 2018)। लिंग व्यवहार को बातचीत की एक शैलीबद्ध तरीके के रूप में देखा जा सकता है, जो सम्मान या प्रभुत्व का संकेत देता है, इससे लिंग की प्रतीकात्मक प्रकृति के रूप में देखा जा सकता है, जो दिन-प्रतिदिन की बातचीत में एक सांस्कृतिक मानदंड पैदा करता है।

खाद्य पूर्वाग्रह को भोजन के वितरण में किसी व्यक्ति या लोगों के समूह के प्रति प्रदर्शित एक अनुचितता के रूप में समझा जा सकता है। इस अवधारणा के अनुसार, किसी व्यक्ति को उसके लिंग के आधार पर भोजन के वितरण में लिंग आधारित भोजन पूर्वाग्रह भेदभाव कहा जाता है, जिससे भोजन की पंसद और पोषण के सन्दर्भ में अध्ययन की विषयवस्तु के रूप में माना जा सकता है। कुपोषण पोषक तत्वों की एक विस्तृत शृंखला की कमी के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर की संरचना और कार्य पर औसत दर्जे का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है (सॉन्डर्स, स्मिथ और स्ट्राउड, 2015)। कुपोषण ज्यादातर गरीबी, सामाजिक अलगाव, और बीमारी से जुड़ा होता है जो मांसपेशियों और हड्डियों की ताकत, ऊतक की मरम्मत, प्रतिरक्षा, और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है (सॉन्डर्स, 2015)।

विश्व स्तर, पर तीन में से दो महिलाएँ क्रोनिक एनीमिया, कुपोषण और थकान से पीड़ित हैं (गे, 2018)। हालाँकि इन मुद्दों के कई अलग-अलग कारण हैं, सामाजिक-सांस्कृतिक साधनों तक अपर्याप्त पहुँच और सम्पत्ति एवं संसाधनों पर सीमित नियन्त्रण लैंगिक भेदभाव का एक प्रमुख कारण है (गे, 2018)। लिंग आधारित शक्ति सम्बन्धों, प्रथाओं और सामाजिक संरचनाओं के सन्दर्भ में महिला के जीवन के अनुभवों से उनमें क्रोनिक एनीमिया के कारण का पता लगाने में सफलता दे सकता है। सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भ, भोजन के वितरण और खपत जैसी रोजमर्रा की स्थितियों में लिंग एवं खाद्य पूर्वाग्रह और सांस्कृतिक क्रियाएँ समाज में लिंग आधारित भेदभाव को बढ़ावा देती है।

लिंग भूमिकाएँ और भोजन विकल्प

लैंगिक भूमिकाएँ विभिन्न तरीकों से भोजन की पसन्द को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड यह निर्धारित कर सकते हैं कि पुरुषों

को अधिक मांस और प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए, जबकि महिलाओं को अधिक फलों और सब्जियों का सेवन करना चाहिए (हिजा, 2013)। इन लैंगिक अपेक्षाओं से भोजन विकल्पों में अन्तर होता है, पुरुषों के उच्च वसा एवं उच्च कैलोरी वाले खाद्य पदार्थों को चुनने की सम्भावना अधिक होती है और महिलाओं को कम वसा और कम कैलोरी वाले खाद्य पदार्थो को चुनने की अधिक सम्भावना होती है। लैंगिक भूमिकाएँ खाने की आदतों को भी प्रभावित कर सकती है, जिसमें भोजन की आवृत्ति, भाग के आकार और स्वल्पाहार व्यवहार शामिल हैं। उदाहरण के लिए, पुरुषों के ज्यादा भोजन करने की सम्भावना अधिक रहती है, जबकि महिलाओं के द्वारा स्वल्पाहार भोजन करने की सम्भावना अधिक रहती है (गफ और कोनर, 2006)। ये खाने की आदतें पुरुषों और महिलाओं के बीच ऊर्जा सेवन और वजन की स्थिति के अन्तर में योगदान कर सकती हैं।

अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि लैंगिक भूमिकाएँ भोजन की पसन्द और वरीयताओं को प्रभावित करती हैं। महिलाओं द्वारा पारम्परिक भोजन पद्धतियों का पालन करने और स्थानीय रूप से उगाए गए और घर पर पकाए गए भोजन का उपभोग करने की अधिक सम्भावना है (जोशी और शर्मा, 2019)। दूसरी ओर पुरुष ऐसे भोजन का सेवन करते हैं जो पारिवारिक परम्परागत मूल्य से बन्धनमुक्त होता है भोजन व्यवहार में इन लैंगिक अन्तरों को विभिन्न कारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जिसमें लिंग आधारित समाजीकरण, सांस्कृतिक मानदंड और संसाधनों तक पहुँच शामिल हैं।

संस्कृति और सामाजिक मानदंड

लैंगिक भोजन व्यवहार को सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंडो द्वारा आकार दिया जाता है। उदाहरण स्वरूप कई सांस्कृतियों में स्नेह, आदर एवं देखभाल को व्यक्त करने के लिए अक्सर महिलाओं को भोजन के साथ जोड़ा गया है, जैसे - भारतीय समाज में ज्यादातर यह पाया जाता है कि परिवार में महिलाएँ पुरुषों के भोजन के बाद अपना भोजन करती हैं साथ ही महिलाओं से अक्सर अपने परिवारों के लिए भोजन उपलब्ध कराने की अपेक्षा की जाती है (मिंट्ज और बोइस, 2002)। पारिवारिक मूल्यों में धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाओं से प्रेरित जैविक नियतत्ववाद, लिंग स्तरीकरण और लिंग भूमिकाओं की विचारधाराओं ने एक महिला की गतिविधि को परिवार में खाद्य दायित्व से जोड़ दिया है। यह काफी हद तक महिलाओं की पहचान के इर्द-गिर्द निर्मित होता है, जो कई जरूरतों के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होता है। परिवार की भोजन की जरूरतों के लिए 'प्रदान' करने का दायित्व महिलाओं की एकमात्र जिम्मेदारी के रूप में समाज की कल्पना में बना हुआ है और इसलिए यह महिलाओं के रोजमर्रा के जीवन में निकटता से जुड़ा है और उन्हें परिवार में भूख को हराने के लिए पूरी तरह उनका समाजीकरण किया जाता है एवं ऐसा करने में वे स्वयं भूखी रह जाती हैं। तथ्य यह है कि महिलाओं को पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए जिम्मेदार बनाया जाता है जो उनके लिए एक पारिवारिक दायित्व है और इसके परिणामस्वरूप परिवार में महिलाओं के लिए

महिलाओं द्वारा हल की जाने वाली समस्या खड़ी करती है। इसके अलावा, सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड उन खाद्य पदार्थों को प्रभावित कर सकते हैं जो भोजन के लिए उपलब्ध और स्वीकार्य हैं। उदाहरण के लिए कुछ संस्कृतियों में शाकाहार को स्त्री गुण के रूप में देखा जाता है, जिसके कारण पुरुषों को पौधे-आधारित खाद्य पदार्थों के सेवन करने की सम्भावना कम होती है (रूबी, 2012)। ये सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड भोजन के प्रकार और स्वास्थ्य परिणामों में लिंग आधारित अन्तर में योगदान कर सकते हैं।

स्त्रीत्व, भोजन और भारतीय परिवार

भारत में घरेलू भोजन तैयार करने में महिलाओं का अधिकांश समय लगता है, हालाँकि जो तैयार किया जा रहा है उसकी गुणवत्ता और पोषण सम्बन्धी सामग्री एक गहरा मुद्दा है जिस पर अध्ययन की आवश्यकता है। पारम्परिक प्रथाएँ बताती हैं कि सभी पुरुष सदस्यों और बच्चों को खिलाए जाने के बाद महिलाएँ सबसे आखिर में खाती हैं। अक्सर हाशिए के तबके की महिलाओं के पास परिवार के खाने के बाद भोजन नहीं रह जाता है : ज्यादातर मामलों मे परिवार बड़े होते हैं, अपने परिवारों के भोजन की खपत की रक्षा के लिए इस तरह के बलिदान आगे पीढ़ियों में लिंग विशिष्ट असमानताओं एवं महिलाओं के खराब स्वास्थ्य को कायम रखते हैं। भारत में महिलाओं के लिए इस तरह के खाद्य स्त्री समाज के लिए एक बड़ी चुनौती है। अच्छे मातृत्व के विचार के लिए भोजन का प्रावधान केन्द्रीय है, इसलिए यदि महिलाएँ इस सांस्कृतिक, लिंग पक्षपाती आवश्यकता को पूरा करने में विफल रहती हैं, तो उन्हें स्त्रीत्व में भी असफल कहा जाता है। खाद्य प्रथाओं में इस तरह का लिंग-आधारित भेदभाव महिलाओं को शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर कर देता है, जिससे अन्तत: समाज में महिलाओं को एक सशक्त नागरिक बनाने में अक्षम करता है।

भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं के घर से बाहर काम करने की सम्भावना बहुत कम होती है जिसके कारण उनकी उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं होती है। बहुत सी महिलाएँ जानकारी देती हैं कि उनके अपने जीवन पर निर्णय लेने की स्वतन्त्रता बहुत कम है (कॉफी, 2017)। दो भारतीय राज्यों (दिल्ली और उत्तर प्रदेश) में महिलाओं के बीच सोशल एटीट्यूड रिसर्च फॉर इंडिया द्वारा 2016 में किए गए एक फोन सर्वेक्षण में पाया गया कि दिल्ली में तीन वयस्कों में से एक और उत्तर प्रदेश में दस में से छह वयस्क उन घरों में रहते हैं जहाँ पुरुष पहले खाते हैं। गरीब घर की महिलाएँ ज्यादातर समय भूखी रह जाती हैं जो सीधे उनको खराब स्वास्थ्य स्थितियों की ओर ले जाती है। इसलिए भोजन और स्त्रीत्व को एक निर्मित वास्तविकता से देखना अनिवार्य है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक रूप से जुड़े हुए हैं। नीचे दिया गया दंड आरेख घर में पहले पुरुषों को खिलाने की अस्वास्थ्यकर प्रथा को दर्शाता है।

आकृति 1
पारिवारिक खान-पान की प्रथाएँ

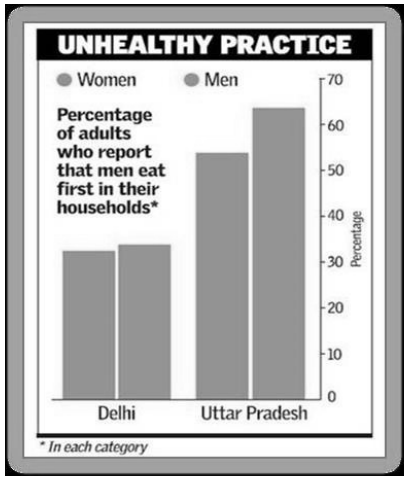

स्रोत : सोशल एटीट्यूड रिसर्च फॉर इंडिया

लैंगिक भूमिकाएँ, खाद्य व्यवहार एवं महिला स्वास्थ्य

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 (2015-16) की रिपोर्ट बताती है कि रक्ताल्पता प्रजनन क्षमता वाली 53 प्रतिशत महिलाओं को प्रभावित करता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि देश में 15-19 आयु वर्ग के 23 प्रतिशत पुरुष और 50 प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ रक्ताल्पता से पीड़ित हैं। मध्य प्रदेश राज्य योजना आयोग (2010) के अनुसार, रक्ताल्पता मध्य प्रदेश में एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है, खासकर महिलाओं और बच्चों के लिए। रक्ताल्पता, कमजोरी, शारीरिक और मानसिक क्षमता में कमी, संक्रामक रोगों में वृद्धि प्रसव पूर्व मृत्यु दर, समय से पहले प्रसव और जन्म के समय कम वजन के कारण मातृ मृत्यु दर राज्य की एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है। मध्य प्रदेश की 39 प्रतिशत किशोरियों में से आधे से अधिक (57 प्रतिशत) सामान्य रक्ताल्पता से सामाजिक-आर्थिक असमानता और कुपोषण जुड़ा हुआ है। सामाजिक-आर्थिक असमानता धार्मिक और जाति वर्गीकरण के माध्यम से आबादी के बीच विभिन्न भेदभावपूर्ण वर्गीकरणों से भी उत्पन्न होती है। कुपोषण का सम्बन्ध आहार के सम्बन्ध में सांस्कृतिक प्रथाओं से भी है।

भारत में गर्भवती, स्तनपान कराने वाली महिलाओं और पूर्वस्कूली बच्चों में रक्ताल्पता के उच्च प्रसार के लिए आयरन और अन्य आवश्यक पोषक तत्वों में तेजी से वृद्धि की आवश्यकता है। रक्ताल्पता के लिए उच्च जोखिम वाले समूहों में शिशु, किशोर और गर्भवती महिलाएँ शामिल हैं (जोशी, 2013)। व्यक्तिगत स्तर पर भोजन के विकल्पों को प्रभावित करने वाले कई कारकों और उन विकल्पों को चलानें में संस्कृति की भूमिका को समझने के लिए व्यक्तिगत भोजन प्रणाली महत्वपूर्ण है। भोजन के विकल्प इस बारे में हैं कि

लोग जो खाना खाते हैं उसे क्यों खाते है, और भोजन के बारे में निर्णय उन प्रक्रियाओं का परिणाम हैं जो जटिल है, जो जैविक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक और राजनीतिक कारकों से प्रेरित हैं। भोजन चयन व्यवहार पहचान, प्राथमिकताओं, और सांस्कृतिक अर्थों की सामाजिक और आर्थिक अभिव्यक्ति से जुड़े हुए हैं और पोषण सम्बन्धी स्थिति और स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण निर्धारक हैं (मोंटेरोसा, 2020)। कई अध्ययनों से यह भी पता चला है कि महिला सशक्तीकरण (परिवार या समाज में महिलाओं के लिए विकल्प, नियन्त्रण और शक्ति के रूप में कल्पना की गई) महिलाओं के बीच पोषण सम्बन्धी स्थिति के सकारात्मक पहलुओं से महत्वपूर्ण रूप से जुड़ा हुआ है (सेथुरमन, 2006)। महिलाएँ अपनी जरूरतों के बारे में सोचने से पहले अपने परिवार में दूसरों के स्वास्थ्य और भलाई को प्राथमिकता देती है, यहाँ तक कि वे अपने लिए चिकित्सा देखभाल भी नहीं लेती हैं, जो काफी हद तक महिलाओं की आत्म-मूल्य की भावना को प्रभावित करता हैं (देसाई, 1994)।

परिणाम

स्वास्थ्य चर्चा में समाजशास्त्रीय ज्ञान की अनदेखी मूल रूप से भारत में शैक्षणिक अनुसन्धान और स्वास्थ्य शिक्षा प्रणाली में जैविक वैज्ञानिक ज्ञान प्रणाली के प्रभुत्व की विरासत के कारण देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थिति को बदतर बनाती है। इस अध्ययन का उद्देश्य विशेषकर महिलाओं में रक्ताल्पता को प्रभावित करने वाले समाजशास्त्रीय कारकों का पता लगाना है। जबकि मध्य प्रदेश की महिलाओं में रक्ताल्पता की उच्च दर पर प्रमुख चर्चा भोजन, पोषण और जैविक स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ताओं के इर्द-गिर्द घूमती है, लेकिन यह प्रमुख चर्चा इस बात को नजर अन्दाज करती है कि राज्य में महिलाओं के बीच विशिष्ट प्रकार की खाने की सांस्कृतिक कारकों के माध्यम से महिलाओं की लिंग भूमिकाओं, भोजन व्यवहार का पता लगाना है जो महिलाओं की विषय-वस्तु को आकार देने में मदद करता है जो राज्य में महिलाओं में विशिष्ट प्रकार की स्वास्थ्य समस्याएँ (यानि कम हीमोग्लोबिन और रक्ताल्पता) पैदा करता हैं।

द्वितीयक स्रोत से विभिन्न समाजशास्त्रीय साहित्य, सरकारी एवं गैर-सरकारी शोध साहित्यों का अध्ययन और विश्लेषणों से लैंगिक भूमिकाओं और खाद्य व्यवहार के बीच सम्बन्धों से कई प्रमुख तथ्य परिणाम के रूप में प्राप्त हुए हैं।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि - 1. पारपंरिक लिंग भूमिका को व्यक्तियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थो के प्रकार को प्रभावित करते हैं, जिसमें महिलाओं के भोजन को पवित्रता के साथ जोड़ते हुए शाकाहारी भोजन सामग्री को अधिक जोर दिया गया है। इस प्रकार पारिवारिक सांस्कृतिक मूल्य भारतीय समाज में यह दर्शाता है कि महिला को परिवार की पवित्रता को बनाये रखने में अधिक महत्व दिया गया है। 2. लैंगिक भूमिकाओं को व्यक्तियों द्वारा भोजन तैयार करने और परोसने के तरीके को प्रभावित करने के लिए पाया

गया, जिसमें महिलाओं को अधिकांश खाना पकाने ओर घर के भीतर परोसने के लिए जिम्मेदार माना जाता है। इसे पारम्परिक लैंगिक भूमिकाओं को सुदृढ़ करने के लिए देखा गया, जिसमें महिलाओं को प्राथमिक देखभाल करने वाली और परिवार के पोषण के लिए जिम्मेदार के रूप में देखा गया। 3. लैंगिक भूमिकाओं ने भोजन और खाने के व्यवहार के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को प्रभावित किया जिसमें अक्सर महिलाओं के शरीर को एक निर्दिष्ट खाद्य पदार्थ से जोड़ा जाता है एवं अधिकतर उनके भोजन को पारिवारिक आदर्शों के साथ बाँध दिया जाता है तथा उनकी भोजन सेवन की स्वतन्त्रता को कम कर देता है। 4. पुरुष विस्तारित समाज में महिलाओं के शरीर को अधिकतर सुन्दरता के साथ देखा है जिसके कारण महिलाएँ विशेषत: किशोर लड़कियों में अपनी शारीरिक सुन्दरता और बनावट के लिए कम डाइट व्यवहार का पालन करती हैं जो कहीं न कहीं उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। 5. अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि महिलाएँ अपने खान-पान और स्वास्थ्य को लेकर सामाजिक दबाब महसूस करती हैं।

निष्कर्ष

यह शोध अध्ययन लिंग भूमिकाओं और खाद्य व्यवहार के बीच सम्बन्धों में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। अध्ययन पुरुषों और महिलाओं दोनों के बीच स्वस्थ्य भोजन प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए लिंग-संवेदनशील प्रतिबन्धों की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है। लिंग भूमिकाएँ और व्यवहार मानव समाज के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं जो आपस में जुड़े हुए हैं। लैंगिक भूमिकाएँ भोजन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को आकार देती है और हमारे भोजन की पसन्द और खाने की आदतों को प्रभावित करती हैं। सांस्कृतिक अपेक्षाएँ और सामाजिक दबाव भोजन के व्यवहार को प्रभावित करते हैं, जिससे भोजन की पसन्द और खाने की आदतों में लिंग भेद दिखाई देता है। अत: खाद्य व्यवहार पर लैंगिक भूमिकाओं के प्रभाव को पहचानना एवं अधिक समावेशी और विविध खाद्य संस्कृति को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है तथा व्यक्तियों, खासकर महिलाओं को उनके सामाजिक अपेक्षाओं के बजाय उनकी व्यक्तिगत प्राथमिकताओं और मूल्यों के आधार पर चुनाव करने की स्वाधीनता होनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

एग्ली, ए.एच. एंड वुड, डब्लू. (2012), 'सोशल रोल थ्योरी', *थ्योरीस ऑफ सोशल साइकोलॉजी,* सेज, लन्दन, पृ. 458-476.

डिवॉल्ट, एम. ऐल. (1991), *फीडिंग द फॅमिली : दी सोशल आर्गेनाइजेशन ऑफ केयरिंग एज जेंडर,* न्यू वर्क: शिकागो: दी यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो.

देसाई, एस. (1994), *जेंडर इनक्वालिटी एंड डेमोग्राफिक बिहेवियर,* इंडिया, न्यू वर्क: दी पापुलेशन कौंसिल, न्यूयार्क.

गे, जे. (2018), *दी हेल्थ ऑफ वीमेन : ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव* : रूटलेज, न्यूयार्क.

गफ, बी एंड कोनर, एम.टी. (2006), 'बैरियर्स टू हेअल्थी ईटिंग अमंग मेन: ए क्वालिटेटिव एनालिसिस', *सोशल साइंस एंड मेडिसिन,* पृ. 387-395.

हिजा, एच.ए.बी. एवं अन्य (2013), 'डाइट क्वालिटी ऑफ अमेरिकन्स डिफर बी पेज, सेक्स, रेस/एथनिसिटी, इनकम एंड एजुकेशन लेवल', *जर्नल ऑफ दी अकादमी ऑफ नुएट्रिशन एंड डिएटिक्स,* 113(2), पृ. 297-306.

जोशी, ए. एवं शर्मा, एस.बी. (2019), 'जेंडर रोल एंड फूड प्रैक्टिसेज इन इंडियन फैमिलीज', *जर्नल ऑफ फूड रिसर्च,* आईआईएसएन : 1927-08878, पृ. 1-12.

जोशी, पी. एवं अन्य (2013), 'परेवालेन्स ऑफ एनीमिया अमंग द जनरल पॉपुलेशन ऑफ मालवा (एम.पी.), इंडिया', *जर्नल ऑफ एवोलुशन ऑफ मेडिकल एंड डेंटल साइंसेज,* वॉल्यूम 2

कॉफी, डी. (2017), 'व्हेन वीमेन ईट लास्ट', *द हिन्दू.*

मोंटरोसा, इ.सी. एवं अन्य (2020), 'सोसिओ-कल्चरल इन्फ्लुएंस ओन फूड चोइसस एंड इम्प्लीकेशन फॉर सस्टेनेबल हेल्थी डाइट्स', *फूड एंड न्यूट्रिशन बुलेटिन,* पृ. 41.

मिंट्ज, एस.डब्लू. एंड डु बोइस सी.एम. (2002), 'दी एंथ्रोपोलॉजी ऑफ फूड एंड ईटिंग', *एन्युअल रिव्यु ऑफ एंथ्रोपोजॉजी,* वॉल्यूम 1, पृ. 99-119.

रूबी, एम.बी. (2012), 'वागीटेरियनिस्म : ए ब्लोसोमिंग फील्ड ऑफ स्टडी', *एपेटाइट,* पृ. 141-50.

सॉन्डर्स, इ.एट. अल. (2015), 'हाउ जेंडर नॉर्म्स एफेक्ट एनीमिया इन सेलेक्ट विल्लगेस इन रूरल ओडिशा, इंडिया : ए क्वालिटेटिव स्टडी', *न्यूट्रिशन,* पृ. 86.

सेथुरमन के. एवं अन्य (2006), 'वीमेन'स एम्पावरमेंट एंड डोमेस्टिक वायलेंस : दी रोले ऑफ सोसिओ-कल्चरल डेटर्मिनेन्ट्स इन मैटरनल एंड चाइल्ड अंडर-नुट्रिशन इन ट्राइबल एंड रूरल कम्युनिटी इन साउथ इंडिया', *फूड न्यूट्रिशन बुलेटिन,* पृ. 27.

स्टोन, एल. एंड किंग, डी.इ. (2018), *किनशिप एंड जेंडर : एन इंट्रोडक्शन,* न्यू यॉर्क: रूटलेज.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 85-95)
UGC-CARE (Group-I)

भारतीय समाज एवं संस्कृति : एक दृष्टि (असहमति की बहुलता के विशेष सन्दर्भों में)

पुनीत कुमार*

हिन्दुस्तान की तहजीब ने रूढ़ होने से स्वंय को हमेशा शेष रखा है। समय के साथ जिस परिमार्जन की आवश्यकता हुई तब भारतीय संस्कृति ने उसे स्वीकार करने में कृपणता का प्रदर्शन कभी नहीं किया। विभिन्न जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय, भिन्न संस्कृति अथवा किसी अन्य सभ्यता की स्वीकार्यता एवं वैचारिक विभिन्नता और असहमति को भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने उदारवादी मन और संश्लेषणवादी एवं समावेशी मानस के साथ शिरोधार्य किया है। यही अपरिहार्य नम्यता ही वह उत्कृष्ट कारक है जिसने 8000 ई.पू. की भारतीय संस्कृति और सभ्यता को निरन्तर एवं प्रासंगिक बनाये रखा है। सामाजिक असहमति और तत्पश्चात् प्रतिरोध के प्रति रचनात्मक भाव से स्वीकृति निर्मिति ही वह प्रमुख तत्व हैं जो किसी सभ्यता और संस्कृति को संश्लेषणवादी एवं समावेशी स्पर्श प्रदान करते हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने प्रासंगिक प्रतिरोध एवं सामयिक असहमति की उपेक्षा कभी नहीं की, अपितु कभी शास्त्रार्थ के रूप में, कभी रचनात्मक विघटन के स्वरूप में, तो कभी अपरिहार्य परिमार्जन की स्वीकृति के रूप में असहमति और प्रतिरोध को स्वीकारा है। भारतीय समाज और संस्कृति प्राचीन काल से आज तक अपना संशोधन एवं परिमार्जन सामाजिक असहमति एवं प्रासंगिक प्रतिरोध से करती रही है। प्राचीन काल का शास्त्रार्थ, तत्समय प्रचलित धर्मों और सम्प्रदायों में

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, शासकीय एसएमएस स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)
E-mail: puneetkumarsrivastav@gmail.com

भिन्न-भिन्न शाखाओं का निकलना, मध्यकालीन और सूफी काव्य का अपनी रचनाओं के जरिये धर्म के पाखण्डों एवं समाज तथा संस्कृति के अमानवीय रूपों को उजागर कर, समाज के मानवीय स्वरूप एवं धर्म के शिवम् स्परूप की स्थापना का आह्वान करना, तत्पश्चात् राजाओं और अंग्रेजों की शोषक व्यवस्था के प्रति असहमति एवं प्रतिरोध और अन्ततः आजाद भारत का अपने संविधान, न्यायिक निर्णयों और अन्य सभी आधुनिक प्रतिरोध की शैलियों से अपरिहार्य परिमार्जन से लेशमात्र पीछे न हटना, इस तथ्य के परिचायक हैं कि भारतीय समाज और संस्कृति असहमति एवं प्रतिरोध की बहुलताओं से सदैव सुसज्जित रहा है, परिणामस्वरूप धार्मिक, जातिगत, सांस्कृतिक और साप्रदायिक बहुलताओं को आवश्यक गरिमा के साथ स्वीकार्यता की कमी हिन्दुस्तान में कभी नहीं रही।

बीज शब्द : समाज एवं संस्कृति, समावेशी मानस, सा।श्लेषणवादी मानस, वैचारिक विभिन्नता, मानवतावादी दर्शनिक।

परिचय

नवीनतम अनुसन्धानों ने स्थापित किया है कि सिन्धु घाटी सम्यता लगभग 8000 वर्ष पुरानी है। मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता क्रमशः 7000 और 6500 वर्ष प्राचीन हैं। अर्थात् हिन्दुस्तानी सभ्यता की बुनियाद प्राचीनतम है। चकित करने वाला तथ्य यह नहीं है, अपितु इतनी पुरातन सभ्यता का जीवन्त और निरन्तर होना आश्चर्यजनक तथ्य है। हिन्दुस्तानी तहजीब इतनी पुरानी होते हुए भी प्रासंगिकता, उपयोगिता और आवश्यकता के तत्वों से कभी भी हीन नहीं हुई। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण है भारतीय सभ्यता की समावेशी, संश्लेषणवादी एवं सहिष्णु संस्कृति। हिन्दुस्तान की तहजीब ने रूढ़ होने से स्वयं को हमेशा शेष रखा है। समय के साथ जिस परिमार्जन की आवश्यकता जब-जब हुई भारतीय संस्कृति ने उसे स्वीकार करने में कृपणता का प्रदर्शन कभी नहीं किया। विभिन्न जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय, भिन्न संस्कृति अथवा किसी अन्य सभ्यता की स्वीकार्यता एवं वैचारिक विभिन्नता और असहमति को भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने उदारवादी मन और संश्लेषणवादी एवं समावेशी मानस के साथ शिरोधार्य किया है। यही अपरिहार्य नम्यता ही वह उत्कृष्ट कारक है जिसने 8000 ई.पू. की संस्कृति और सभ्यता को निरन्तर एवं प्रासंगिक बनाये रखा है। सामाजिक असहमति और तत्पश्चात प्रतिरोध के प्रति रचनात्मक भाव से स्वीकृति निर्मिति ही वह प्रमुख तत्व हैं जो किसी सभ्यता और संस्कृति को संश्लेषणवादी एवं समावेशी स्पर्श प्रदान करते है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने प्रासंगिक प्रतिरोध एवं सामयिक असहमति की उपेक्षा कभी नहीं की हैं अपितु कभी शास्त्रार्थ के रूप में, कभी रचनात्मक विघटन के स्वरूप में, तो कभी अपरिहार्य परिमार्जन की स्वीकृति के रूप में असहमति और प्रतिरोध को स्वीकारा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक इस 'स्वीकार्यता' की कमी कभी नहीं रही है। अर्थात् भारतीय समाज जिस सभ्यता एवं संस्कृति का प्राचीन काल से उपासक रहा है वह उदारवादी, संश्लेषणवादी, समावेशी और सहिष्णु हमेशा रही है। भारतीय समाज की यह एक अद्भुत एवं अनन्य ऊर्जा है।

समाज एवं संस्कृति

कोई समाज और संस्कृति जीवन्तता के स्पर्श से और सजीवता के स्पन्दन से कितना समृद्ध है? इसका मापदण्ड क्या हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर से पहले यह जरूरी है कि यह स्पष्ट हो जाये कि 'समाज' और 'संस्कृति' का क्या अर्थ है और यह दोनों शब्द किन भावार्थों से अपना स्वरूप निर्धारित करते हैं? सरल शब्दों में समाज विभिन्न जातियों, धर्मों एवं वर्गों से मिलकर बनता है। संस्कृति इन विभिन्न जातियों, धर्मों एवं वर्गों के आचार-विचार, मानस, मनोवृत्ति, अभिव्यक्ति के विविध तरीकों और रहन-सहन की शैलियों का ही समुच्चय होती है। विख्यात चिन्तक एडवर्ट टायलर के शब्दों में संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, कानून, प्रथा एवं अन्य किन्हीं आदतों एवं क्षमताओं का समावेश होता है जिन्हें मनुष्य ने मानव समाज का सदस्य होने के कारण प्राप्त किया है। जाहिर है कि संस्कृति विरासत में प्राप्त वह सीखा हुआ व्यवहार या आचरण है जो एक मनुष्य अपने समाज में प्राप्त करता है और उसी के अनुसार अपनी जीवनशैली का निर्वहन करता है। इस प्रकार यह बात साफ है कि मनुष्य, समाज और संस्कृति आपस में सम्बन्धित है। समाज, मनुष्यों के सम्बन्धों का योग है, और समाज ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो कुछ ज्ञान, विज्ञान, विधि, विधान, रीति, रिवाज, परम्परा या संक्षेप में मूर्त और अमूर्त हस्तान्तरित करता है, वही उस समाज की संस्कृति है। एक समाज अपने मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का यदि योग है तो यह भी मानना होगा कि समाज में समानता, असमानता, विभिन्नता, सहयोग और संघर्ष तथा सहमति, असहमति और प्रतिरोध भी पाये जाते हैं। दरअसल जब विभिन्न कारक होते हैं तभी मनुष्यों का झुंड समाज कहलाने का अधिकारी होता है। सरल शब्दों में, एक समाज मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप ही बनता है। तीन शब्द और हैं जिन्हें स्पष्ट करना जरूरी है - 'असहमति', 'प्रतिरोध' एवं 'बहुलता'। 'असहमति', 'प्रतिरोध' की प्रारम्भिक अवस्था है। किसी प्रचलित विचार, अवधारणा, विधि, विधान, सिद्धान्त, व्यवस्था और मानसिकता को जब मन, मानस, मनोवृत्ति, सभ्यता और संस्कार स्वीकार नहीं कर पाते हैं तो वह अवस्था असहमति की होती है। इस 'असहमति' के वैचारिक स्वरूप को जब इस उद्देश्य से अभिव्यक्त किया जाता है कि उसके प्रति सहमति की रचना होनी चाहिए, वहाँ से 'प्रतिरोध' की स्थिति प्रारम्भ होती है। यह 'असहमति' एवं 'प्रतिरोध' पूरी तरह से वैचारिक होता है। 'बहुलता' का अर्थ है विभिन्नता। यह 'विभिन्नता', सांस्कृतिक, सामाजिक, वैचारिक और सैद्धान्तिक, किसी भी स्वरूप में हो सकती है। इन सबको एक शब्द बहुसंस्कृति में भी समेट सकते हैं क्योंकि बहुसंस्कृति, समाज विशेष के विभिन्न वैचारिक और सैद्धान्तिक मानस का तथा विविध आचार-विचार का एक समुच्चय है। अर्थात् बहुलता, बहुसंस्कृतिवाद एवं बहुलवाद का ही पर्याय है।

प्रश्न फिर से सामने आता है कि समाज और संस्कृति की जीवन्तता एवं सजीवता का क्या मापदण्ड हो सकता है? समाज की निर्मिति जिन विभिन्नताओं और विविधताओं से होती है वह एक मजबूत कारक होता है उस समाज की जीवन्तता का। समाज के विविध अवयवों से

जिस संस्कृति की रचना होती है, स्वाभाविक है कि वह भी विविधताओं से परिपूर्ण होती है। दूसरे शब्दों में, समाज की विविधता संस्कृति की विविधताओं का कारण होती है और संस्कृति की विभिन्नता समाज की सजीवता एवं जीवन्तता के स्पन्दन का आधार होता है। इस प्रकार समाज और संस्कृति एक-दूसरे को प्रत्येक स्तर पर प्रभावित करते है। स्पष्ट है कि किसी भी समाज और संस्कृति का शाश्वत मौलिक वैभव उसमें व्याप्त बहुलता, भिन्नता और विविधता ही है।

प्राचीन काल

जब असहमति की बहुलता और बहुलवाद के प्रति सहमति के सन्दर्भों में भारतीय समाज का विश्लेषण किया जाता है तो स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही भारतीय समाज और संस्कृति, असहमति एवं बहुलवाद के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण रखता रहा है। ऋग्वेद वह प्राचीनतम ग्रन्थ है जो 1500-1200 ई.पू. की रचना स्वीकारी जाती है। इसके दसवें मंडल के नासदीय सूक्त का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से है। परन्तु उसमें इस प्रकार के अनेक उल्लेख हैं जो जिज्ञासु और सन्देहात्मक प्रश्नों को प्रस्तुत करते हैं। जिज्ञासा, असहमति और सन्देह ही ज्ञान-विज्ञान की ओर आकृष्ट होने की पहली सीढ़ी है। नासदीय सूक्त के छठे मन्त्र में सृष्टि की उत्पत्ति और रचना को लेकर जिज्ञासा व्यक्त की गयी है और इस जिज्ञासा को सन्देहात्मक स्वरूप में अपूर्ण ही छोड़ दिया गया है (थापर, 2020)। शायद भावी पीढ़ी के ज्ञान, सन्धान और अनुसन्धान के लिए। स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन, प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के माध्यम से ज्ञान का शिलान्यास सन्देह एवं जिज्ञासा से करता है। अर्थात् तत्समय के वर्तमान और उपलब्ध ज्ञान, विज्ञान एवं दर्शन के प्रति असहमत होकर हिन्दुस्तानी दर्शन अपना प्रारम्भ करता है।

ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में मक्खली गोसाल ने 'आजीविक' या 'आजीवक' सम्प्रदाय की स्थापना की थी, यह दर्शन वेद और कर्मकाण्ड के प्रति असहमति और प्रतिरोध के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था। 'आजीवक' दर्शन 'नियति' को स्वीकारता है अर्थात् एक मनुष्य की नियति निश्चित है जिसे स्वीकारने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं है। यह दर्शन चौदहवीं सदी तक भारतवर्ष में प्रचलित रहा। इसी प्रकार ईसापूर्व छठवीं सदी में एक और दर्शन अस्तित्व में आया जिसे 'चार्वाक' दर्शन कहा जाता है। चार्वाक दर्शन भी प्राचीन वेदों के अस्तित्व को नकारता है और कर्म और मोक्ष के दर्शन को स्वीकारता है। यह स्वयं के अनुभव से प्राप्त होने वाले ज्ञान के महत्व को मान्यता देता है। भारतीय दर्शन के सदियों पुराने वैदिक दर्शन को इस प्रकार अस्वीकारना, रचनात्मक असहमति की परम्परा का ही समृद्ध साक्ष्य है।

बौद्ध दर्शन, आजीवक दर्शन की तरह वैदिक दर्शन एवं कर्मकाण्डों के प्रति असहमति प्रकट करता है। बौद्ध दर्शन, गौतम बुद्ध की शिक्षाओं पर आधारित है। यह दर्शन छठवीं सदी से मध्य चौथी सदी ईसा पूर्व तक हिन्दुस्तान तथा मध्य और दक्षिण एशिया के देशों में प्रचलित रहा है। 'बौद्ध दर्शन आष्टांगिक मार्ग के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने अथवा प्रबुद्ध होने की आवश्यकता को स्वीकरता है। यह अष्टांगिक मार्ग हैं सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प,

सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् उद्यम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। इस मार्ग के प्रथम दो अंग प्रज्ञा के और अन्तिम तीन समाधि के हैं। बीच के तीन शील (आचरण) के हैं (वीकीपीडिया, 2021)। यहाँ सम्यक् शब्द का अर्थ है उचित, सही या सत्य। गौतम बुद्ध या सिद्धार्थ का विचार है कि जन्म से कोई भी जाति से निकाला हुआ नहीं है न ही कोई जन्म से ब्राह्मण है, अपने कर्मों से ही कोई जाति बहिष्कृत हो सकता है अथवा ब्राह्मण बन सकता है। प्रत्येक मानव स्वतन्त्रता एवं आजादी प्राप्त करना चाहता है और किसी को भी इसमें हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार जैन दर्शन जो कि वैराग्य और तपस्या की श्रमण नीति वचन पर केन्द्रित है तथा अहिंसा को उच्चतम आदर्श स्वीकारता है और सभी प्राणियों के प्रति सम्मानीय रहने का आह्वान करता है। सांसारिकता से मुक्ति का आह्वान करता हुआ जैन दर्शन, सामाजिक व्यवस्था के सदियों से प्रचलित पदानुक्रम को अस्वीकारता है। इतना ही नहीं जैन दर्शन प्रचलित धार्मिक व्यवस्था और धार्मिक मान्यताओं को भी नहीं स्वीकारता है। स्पष्ट है कि जैन दर्शन पूर्व प्रचलित वैदिक दर्शन एवं कर्मकाण्ड के प्रति असहमत है (वाजपेयी 2017)। इसी तरह जब सुभाषितों पर दृष्टि डाली जाती है तो वहाँ भी उस दर्शन का अनुभव होता है जो असहमत होने और प्रचलित मान्यताओं को अस्वीकार करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता है। सुभाषित, संस्कृत एवं प्राकृत काव्य का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। सुभाषित श्लोक प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दुस्तान में बहुत लोकप्रिय थे। नैतिकता एवं नीति शास्त्र पर आधारित यह सुभाषित राजनीतिक, धार्मिक, राजकीय, प्रेम इत्यादि विषयों पर अपनी सहमति और असहमति प्रकट करते रहते थे। प्रायः व्यंग्यपूर्ण शैली में, आत्म चेतना की समृद्धि का आह्वान सुभाषितों द्वारा प्रमुख रूप से किया गया है (वाजपेयी 2017)। भर्तहरि (संस्कृत, पाँचवीं सदी), सोनोका (बंगाली, ग्यारहवीं सदी), क्षेमेन्द्र (संस्कृत, ग्यारहवीं सदी), बिल्हण (कश्मीरी, ग्यारहवीं सदी), कल्हण (कश्मीरी, बारहवीं सदी) इत्यादि इसी असहमति की जीवन्त परम्परा के दार्शनिक कवि हैं। इसी प्रकार प्राचीन तमिल कवियों और तेलुगु कवियों की रचनाओं में भी प्रचुर साक्ष्य हैं जो यह स्थापित करते हैं कि प्रचलित ज्ञान, दर्शन, रीति-रिवाज और परम्पराओं के प्रति प्रश्नवाचक होना अथवा असहमत होना बहुत नैसर्गिक प्रवृत्ति है तथा समाज के प्रासंगिक बने रहने के लिए अपरिहार्य भी है इस असहमति और प्रतिरोध की बहुत समृद्ध परम्परा सिख गुरुओं में भी रही है जिसके परिणामस्वरूप उनके बलिदान की कथाएँ सभी जानते हैं।

मध्य काल

प्रचलित सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं एवं मान्यताओं के प्रति तुलसीदास (1532-1623), कबीर (1398-1518), नामदेव (1270-1350), रैदास (1377-1520), तुकाराम (1598-1650), मीराबाई (1498-1521) और जनाबाई (1258-1350) इत्यादि की रचनाओं में जिस दार्शनिकता का सूत्रपात हुआ है, वह प्रचलित सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं एवं मान्यताओं के प्रति असहमति और तत्पश्चात् सन्देह और जिज्ञासा के अनेक

कौतूहलों से ही ओत-प्रोत नहीं हैं, अपितु मानव मात्र की करुणा और प्रेम को सर्वोपरि स्वीकारता है तथा प्रत्येक प्राणी के प्रति सहृदय रहने का आह्वान करता है। इसी क्रम में सूफी काव्य भी देखा जाना चाहिए। अमीर खुसरो (1253-1325), दारा शिकोह (1615-1659), शाह सरमद (1590-1661), बुल्लेशाह (1680-1757) और शाह लतीफ (1689/1690-1752) वह सूफी कवि हैं जिनके लिए मानवीय अस्मिता और उसके हृदय में बसने वाले प्रेम और करुणा से बढ़कर कुछ नहीं है। इन मानवीय भावनाओं पर प्रहार करने वाली प्रत्येक व्यवस्था, परम्परा और रीतिरिवाज के प्रति यह सब आजीवन असहमत रहे और प्रचलित पाखण्डों का प्रतिरोध भी करते रहे। इसी मानववादी दर्शन के सशक्त साक्ष्य प्राचीन उर्दू काव्य में भी दिखायी देते है। सौदा (1713-1781), मीर (1723-1810) और गालिब (1797-1869) उस दौर के शीर्ष शायर हैं जिनका दर्शन सिर्फ इंसानी मोहब्बत को स्वीकारता है। उसमें किसी भी हस्तक्षेप को यह दार्शनिक कवि किसी अपराध से कम नहीं समझते हैं। हिन्दुस्तान के अमर समाज सुधारक भी इसी परम्परा में स्मरण किये जा सकते हैं। राजा राममोहन राय (1772-1833), ज्योतिबा फूले (1827-1890), सावित्रीबाई फूले (1831-1897), पंडिता रमाबाई (1858-1922) और ताराबाई शिन्दे (1850-1910) वह कुछ खास नाम हैं जिन्होंने व्यवस्था के मानवीय स्वरूप के अतिरिक्त सब कुछ अस्वीकार किया है और सदियों पुरानी अप्रासंगिक परम्पराओं के प्रति असहमत होने में पीछे नहीं हटे हैं। यह असहमति, प्रतिरोध, सन्देह और जिज्ञासा ही किसी भी समाज और संस्कृति की उत्तरोत्तर प्रगति एवं विकारों को मिटाने का रचनात्मक आधार होता है। ऋग्वेदकालीन भारतवर्ष से वर्तमान हिन्दुस्तान की प्रगति की तस्वीर स्वयं एक सशक्त साक्ष्य है, असहमति और जिज्ञासा के परिणाम और प्रभाव का। अर्थात् असहमति, सन्देह एवं परिणामस्वरूप निर्मित जिज्ञासा तथा इसके फलस्वरूप प्राप्त ज्ञान का अर्जन हिन्दुस्तान की प्राचीन एवं समृद्ध परम्परा है।

आजादी के पूर्व

वर्ष 1857 वह कालखण्ड है जहाँ से हिन्दुस्तान की आजादी के प्रति दीवानगी के निशान साक्ष्य स्वरूप में देखे जा सकते है। आजादी के पहले के इस कालखण्ड में भी अनेक उदाहरण हैं जब असहमति के जीवन्त साक्ष्य अनुभव किये जा सकते हैं। 1857 का संग्राम स्वयं असहमति और प्रतिरोध का उदाहरण है। उस दौर में जब लोकमान्य तिलक (1856-1920) 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे' कहते हैं, तो वह पूरी ब्रिटिश राज व्यवस्था के प्रति अपनी असहमति ही प्रकट कर रहे होते हैं। इसी प्रकार जब गुरुदेव टैगोर (1861-1941) राष्ट्रवाद को एक गम्भीर खतरा बताते हैं, तब वह राष्ट्र और राष्ट्रवाद की प्रचलित अवधारणा पर ही सन्देह प्रकट करते हैं। उस समय के विख्यात स्वतन्त्रता सेनानी और शायर हसरत मोहानी (1875-1951) ने लोकमान्य तिलक की स्वराज की अवधारणा का पूरी तरह समर्थन किया था। हसरत मोहानी वह अमर सेनानी हैं जिनको अंग्रेजों ने उनके विचारों के आधार पर जेल में डाला था। 1921 में हसरत मोहानी ने 'इंकलाब

जिन्दाबाद' का नारा दिया था। यह वह क्रान्तिकारी आह्वान था जिसने अंग्रेजों की जड़ों को हिला दिया था। इतना ही नहीं जिस आजादी को पाने के लिए इन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया, उस स्वतन्त्र भारत के संविधान पर संविधान सभा के सदस्य के रूप में हस्ताक्षर करने के प्रति सहमत नहीं थे क्योंकि उनकी दृष्टि में उसमें अनेक न्यूनताएँ थीं। ऐसी रचनात्मक असहमति और ऐसा निर्माणात्मक प्रतिरोध भारतीय समाज और संस्कृति की ऋग्वेदकालीन असहमति की विरासत और प्रतिरोध की प्राचीन भारतीय दार्शनिक थाती का ही अनन्य साक्ष्य है। राष्ट्रपिता बापू (1869-1948) का सम्पूर्ण दर्शन और आचरण ही असहमति और प्रतिरोध का सजीव साक्ष्य है। 1915 में अफ्रीका से भारत आने के बाद महात्मा गाँधी स्वराज और स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रति ही सहमत रहे। असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद 1922 में जब न्यायालय में उन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया था, उस समय न्यायालय में उन्होंने जो सुप्रसिद्ध भाषण दिया था, उसमें उन्होंने कहा था कि मेरे विचार में किसी बुराई के साथ असहयोग करना उतना ही आवश्यक कर्तव्य है, जितना अपरिहार्य दायित्व किसी अच्छाई के साथ सहयोग करना है (वाजपेयी 2017)। 1930 में उनके द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया था। इस नामकरण से बापू की असहमति का दर्शन स्वयमेव पुष्ट होता है। 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' और 'करो या मरो' का आह्वान तत्कालीन अन्यायी विधि-व्यवस्था के प्रति असहमति और प्रतिरोध ही था। इसी प्रकार की असहमति और प्रतिरोध का दार्शनिक स्वरूप काजी नजरूल इस्लाम (1899-1976) और पेरियार ई.वी. रामास्वामी (1879-1973) की रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

रचनात्मक असहमति एवं सात्विक प्रतिरोध के अनेक उदाहरण शहीदे आजम भगतसिंह, मानवतावदी दार्शनिक मानवेन्द्र नाथ राय और बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर के दर्शन और विचारों में भी है। अपनी प्रसिद्ध रचना 'मैं नास्तिक क्यों हूँ?' में भगतसिंह (1907-1931) लिखते हैं कि मैं किसी सार्वभौम शक्ति के अस्तित्व को पूरी तरह नकारता हूँ। मैं पूरी तरह से सहमत हूँ कि ऐसे किसी भी सर्वशक्तिमान का कोई अस्तित्व नहीं हैं जिसने इस ब्रह्माण्ड की रचना की हो और जो इसे निर्देशित और नियन्त्रित करता है। ....पश्चिमी और पूर्वी दर्शन बिल्कुल भिन्न है। प्रत्येक भूभाग में भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक विचारधाराएँ हैं। एशिया में मुस्लिम धर्म, हिन्दू मान्यताओं से बिल्कुल अलग है। जैन और बौद्ध मान्यताएँ ब्राह्मणवाद से सहमत नहीं है। ब्राह्मणवाद में भी दो भिन्न विचारधाराएँ हैं - आर्य समाज और सनातन धर्म। प्राचीन काल का चार्वाक दर्शन भी स्वतन्त्र दर्शन है जिसने ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती दी थी। यह सब भिन्न धर्म और दर्शन यह दावा करते है कि मात्र वही एक असली धर्म है। यही सभी बुराइयों की जड़ है (वाजपेयी 2017)।

मानवेन्द्र नाथ (1887-1954) एक मानववादी विचारक थे। वह महात्मा गाँधी के इस विचार से पूर्णरूपेण असहमत थे कि राजनीति और धर्म का मिश्रण होना चाहिए। एम.एन. राय ने उग्र मानववाद की स्थापना की थी उनका मानना था कि उग्र मानववाद साम्यवाद की

कमियों से अछूता है (वाजपेयी 2017)। राय की वैचारिक असहमति का अध्ययन दर्शनिक संसार में आज भी बहुत सम्मान से किया जाता है।

बाबासाहेब अम्बेडकर (1891-1956) वह विशाल व्यक्तित्व हैं जिनका वैचारिक दर्शन अपने समय से बहुत आगे का था। बाबासाहब आजीवन सामाजिक भेदभाव से असहमत और संघर्षशील रहे। अपने सुप्रसिद्ध भाषण 'जाति का विनाश' में वह लिखते हैं कि 'मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि जब तक आप अपनी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन नहीं करेंगे आपको प्रगति का कोई पथ प्राप्त नहीं होगा (वाजपेयी 2017)। शताब्दियों से प्रचलित सामाजिक व्यवस्था के प्रति इतनी प्रगतिशील असहमति, हिन्दुस्तान की असहमति की बहुलता की समृद्ध परम्परा की ही निश्चय ही एक सशक्त कड़ी है।

संविधान सभा

भारतीय संविधान सभा में संविधान की रचना के समय जो वाद-विवाद और विमर्श हुए थे उनका अध्ययन भी यह मजबूती से स्थापित करता है कि पूरी संविधान सभा असहमति, प्रतिरोध और जिज्ञासा जैसे मौलिक तथ्यों से ही प्रेरित थी। संविधान सभा में जब भी किसी मुद्दे पर बहस हुई, प्रत्येक सदस्य असहमत होने के अपने अधिकार को सर्वोपरि रखता था। शायद यही भारतीय संविधान की विलक्षणता का सशक्त कारण है। संविधान सभा के सम्पूर्ण विमर्श में असहमति एवं प्रतिरोध के अनेक दृष्टान्त है। यहाँ अग्रलिखित दृष्टान्तों का उल्लेख पर्याप्त है। संविधान सभा में दो मुद्दों समान नागरिक संहिता और हिन्दू कोड बिल पर जो विमर्श हुआ है उसकी उत्कृष्टता देखने योग्य है। समान नागरिक संहिता के स्वरूप पर मोहम्मद इस्माइल, नजीरुद्दीन अहमद, महमूद अली बेग और बी पोकर इत्यादि द्वारा यह कहकर असहमति व्यक्त की गयी थी कि यह संहिता अल्पसंख्यकों के निजी कानून में हस्तक्षेप करता है और यह उचित नहीं है तथा समान नागरिक संहिता की स्थापना से मौलिक अधिकारों का हनन होगा। इन असहमतियों का प्रतिरोध कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर और डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा तर्कसंगत तरीके से किया गया था। के.एम. मुंशी का मानना था कि निजी विधियों को पन्थ का हिस्सा बताना अंग्रेजों का षड़यन्त्र था। समान नागरिक संहिता जिन विषयों से सम्बन्धित है वे सामाजिक प्रकृति के है तथा महिला समानता को पुष्ट करते हैं। अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर का मत था कि भूतकाल को शाश्वत और चिरस्थायी स्वीकार लेना उचित नहीं है। अय्यर ने भी के.एम. मुंशी के विचारों से सहमति प्रकट की थी। डॉ. अम्बेडकर भी समान नागरिक संहिता पर प्रस्तुत किसी भी संशोधन से असहमत थे। डॉ. अम्बेडकर का तर्क था कि मात्र विवाह और उत्तराधिकार का क्षेत्र है जहाँ व्यवहार विधि का हस्तक्षेप नहीं हो पाया है तथा मुस्लिम निजी विधियाँ कभी अपरिवर्तनशील नहीं रही हैं (भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद वोल्यूम 3)।

इसी प्रकार जब हिन्दू कोड बिल का प्रस्ताव सभा में रखा गया था तब उस पर अनेक संशोधनों को प्रस्तुत किया गया था। कई सदस्य यह तर्क भी दे रहे थे कि हिन्दू कोड बिल के

स्थान पर एक विधि संहिता (समान नागरिक संहिता) को लागू किया जाना अधिक प्रासंगिक होगा। इन तर्कों के प्रति डॉ. अम्बेडकर ने अपना प्रतिरोध इस प्रकार दर्ज किया था - "मुझे यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि कल तक जो लोग इस कानून के सर्वथा विरोधी थे, वे ही आज यह कह रहे हैं कि वे एक भारतीय नागरिक संहिता के लिए तैयार हैं।" कहावत है कि चीते के शरीर से धब्बे कभी दूर नहीं होते... (भारतीय संविधान सभा (विधायी) 31 अगस्त 1948)। यह दृष्टान्त यह स्पष्ट करते हैं कि संविधान निर्माण के दौरान विमर्श का आवश्यक अंश असहमति और प्रतिरोध ही था तत्पश्चात् सम्पन्न होने वाले वाद-विवाद के परिणामस्वरूप प्राप्त श्रेष्ठ तथ्यों को संविधान में स्वीकारा जाता था।

भारतीय संविधान

26 जनवरी 1950 को जो भारतीय संविधान क्रियान्वित हुआ है वह भी संविधान सभा की असहमति एवं प्रतिरोध की समृद्ध परम्परा के प्रति कटिबद्ध है। संविधान की प्रस्तावना सम्प्रभु, समाजवादी, पन्थनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक, गणतन्त्र जैसे मूल्यवान शब्दार्थों से सारगर्भित होने के साथ-साथ न्याय, स्वन्तत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सभी मानवीय स्वरूपों को समाहित करती है। इन मानवीय स्वरूपों के प्रति स्वीकार्य मानस और मनोवृत्ति असहमति और प्रतिरोध सदृश्य रचनात्मक उद्यम के प्रति कदापि नकारात्मक नहीं हो सकती है। स्वतन्त्र भारतवर्ष के प्रथम विधि मन्त्री के रूप में बाबासाहेब ने 2 सितम्बर 1953 को राज्य सभा में राज्यपाल की भूमिका पर विमर्श के दौरान कहा था कि यदि संविधान के प्रावधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षा नहीं दे सकते है तो उसमें वांछनीय सुधार अपरिहार्य है (वाजपेयी 2017)। स्पष्ट है कि यह विचार भारतीय संविधान के एक प्रमुख वास्तुशिल्प के हैं। अर्थात् असहमति, प्रतिरोध, संशोधन एवं परिमार्जन भारतीय संविधान की मौलिक विशिष्टता है। अनुच्छेद 32 भी इस असहमति के अधिकार की पुष्टि करता है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक अपनी असहमति के संरक्षण के लिए न्यायपालिका के समक्ष उपस्थित हो सकता है। भारतीय संविधान का यह अनुच्छेद जिस प्रकार से प्रत्येक नागरिक को उपलब्ध है वह भी यह स्थापित करता है कि भारत का संविधान भारतीय समाज की धार्मिक, सामाजिक, जातिगत और सांस्कृतिक बहुलता को ससम्मान स्वीकारता है और भारतीय संविधान के इस 'सम्मान' की रक्षा का दायित्व न्यायपालिका का परम कर्तव्य है, यह अनुच्छेद 32 स्पष्ट करता है।

भारतीय न्यायपालिका

न्यायिक इतिहास के पटल पर अनेक ऐसे साक्ष्य हैं जो भारतीय समाज और संस्कृति की असहमति की बहुलवादी परम्परा और बहुलवादी संस्कृति के प्रति सहमति की पुष्टि वैधानिक तेवर के साथ करते है। उदाहरण के तौर पर केशवानन्द भारती (1972) का मामला देखा जा सकता है। यह वह केस था जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा पूर्व के दो मामलों शंकरी प्रसाद (1951) एवं गोलकनाथ (1967) में अपने ही निर्णयों के प्रति असहमति व्यक्त की गयी

थी तथा यह रेखांकित किया गया था कि विधायिका मौलिक अधिकारों सहित पूरे संविधान में संशोधन कर सकती है परन्तु संविधान का आधारभूत या मौलिक ढाँचा अथवा संरचना प्रभावित नहीं होनी चाहिए। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति सीकरी ने आधारभूत संरचना के जो प्रमुख बिन्दु बताये थे, वे थे - संविधान की सर्वोच्चता, शासन का जनतान्त्रिक एवं गणतन्त्रीय स्वरूप, संविधान का धर्मनिरपेक्ष आचरण, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्ति का विभाजन और संविधान का संघीय ढाँचा। इसी सूची में न्यायमूर्ति शेलट और न्यायमूर्ति ग्रोवर ने दो और बिन्दु जोड़े थे - मौलिक अधिकारों द्वारा संरक्षित वैयक्तिक गरिमा की संस्तुति और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की स्थापना (मूडी 2013)। स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय ने असहमत होने के अधिकार का ही प्रयोग किया था, केशवानन्द भारती के मामले में। इसी प्रकार मेनका गाँधी (1978), शाहबानो बेगम (1985), ओल्गा टेलीस (1985), इंदिरा साहनी (1992) और विशाखा (1997) इत्यादि मामले भी हैं जिसमें उच्चतम न्यायालय ने प्रचलित व्यवस्थाओं और स्वीकृत मापदण्डों के प्रति अपनी असहमति प्रस्तुत की है तथा निर्णय का सर्वोच्च आधार मानवोचित साम्यता अथवा मानवीय संस्कृति की स्थापना की प्रशस्ति को स्वीकारा है। इतना ही नहीं शीर्ष न्यायालय ने इस 'स्थापना की प्रशस्ति' हेतु स्थापित विधि, विधान, परम्परा और रीति-रिवाज के प्रति असहमत होना बहुत स्वाभाविक एवं न्यायोचित स्वीकारा है।

उपसंहार

इन समस्त दृष्टान्तों, साक्ष्यों और उदाहरणों से यह तथ्य मजबूती से स्थापित होता है कि भारतीय समाज और संस्कृति प्राचीन काल से आज तक अपना संशोधन एवं परिमार्जन सामाजिक असहमति एवं प्रासंगिक प्रतिरोध से करती रही है। प्राचीन काल के विभिन्न शास्त्रार्थ, फलस्वरूप प्राप्त तथ्यों की रोशनी में आवश्यक ढाँचागत सुधार, उस समय के प्रत्येक धर्म, दर्शन और समाज एवं सम्बन्धित संस्कृति में स्वीकृत था। यही कारण है कि भारतवर्ष का प्रत्येक धर्म एवं दर्शन निरन्तर परिमार्जित होकर श्रेष्ठतर हुआ एवं मानवीय तत्वों के उत्कृष्ट स्वरूपों को समाहित कर सका। प्राचीन काल का शास्त्रार्थ, तत्समय प्रचलित धर्मो और सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न शाखाओं का निकलना, मध्यकालीन और सूफी काव्य का अपनी रचनाओं के जरिए धर्म के पाखण्डों एवं समाज तथा संस्कृति के अमानवीय रूपों को उजागर कर, समाज के मानवीय स्वरूप एवं धर्म के शिवम स्परूप की स्थापना का आह्वान करना, तत्पश्चात राजाओं और अंग्रेजों की शोषक व्यवस्था के प्रति असहमति एवं प्रतिरोध और अन्तत: आजाद भारत का अपने संविधान, न्यायिक निर्णयों और अन्य सभी आधुनिक प्रतिरोध की शैलियों से अपरिहार्य परिमार्जन से लेशमात्र पीछे न हटना, इस तथ्य के परिचायक है कि भारतीय समाज और संस्कृति असहमति एवं प्रतिरोध की बहुलताओं से सदैव सुसज्जित रहा है, परिणाम स्परूप धार्मिक, जातिगत, सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक बहुलताओं को आवश्यक गरिमा के साथ स्वीकार्यता की कमी हिन्दुस्तान में कभी नहीं रही, उपरोक्त विश्लेषण यह स्पष्ट

करता है। हिन्दुस्तान में असहमति कोई नयी अवधारणा नहीं है, इसकी भिन्न-भिन्न शैलियाँ जरूर आधुनिक है। एक जनतान्त्रिक और उदारवादी समाज में असहमति को प्रश्नों के जरिये हमेशा प्रोत्साहित किया जाता है और सामाजिक विमर्श को स्वीकारा जाता रहा है (थापर 2020)। भारतीय समाज एवं संस्कृति की सजीवता, जीवन्त स्पन्दन और रचनात्मक मानस का सर्वोच्च कारण, असहमति एवं प्रतिरोध तत्पश्चात् आवश्यक परिमार्जन की स्वीकृति की प्राचीन सशक्त परम्परा ही है। यह एक सात्विक सत्य है।

सन्दर्भ

एच.आइ.एम.एस. वीकीपीडिया.ओआरजी. 23.12.21 को अवलोकित

भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद, वोल्यूम 3, पृ. 729-750

भारतीय संविधान सभा (विधायी), 31 अगस्त 1948, पृ. 2318-2754

मूडी, जिया (2013) *10 जजमेंट दैट चेन्ज्ड इंडिया,* पेग्यूइन बुक्स इंडिया, नयी दिल्ली, पृ. 14।

थापर, रोमिला (2020) *वायसेज ऑफ डिस्सेन्ट,* सीगल बुक्स, नयी दिल्ली पृ. 4

वैदिक-लिटरेचर.ब्लागस्पॉट.कॉम 21.12.2021 को अवलोकित

वाजपेयी, अशोक (2017) *इंडिया डिस्सेन्ट्स स्पीकिंग,* टाइगर पब्लिशिंग प्रा.लि., नयी दिल्ली, पृ. 18-191

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 96-104)
UGC-CARE (Group-I)

भारत में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण कृषि भूमि का ह्रास तथा कृषक समाज पर पड़ने वाले इसके प्रभाव का अध्ययन

ऋतु रानी*

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में आर्थिक विकास में तीव्रता लाने हेतु औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का रोजगार की खोज में शहरों की ओर पलायन प्रारम्भ हो गया, इस प्रक्रिया से शहरीकरण में तेजी आयी। औद्योगीकरण तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण नये-नये शहरों का उदय हुआ तथा शहरों के आकार में भी वृद्धि हुई। विभिन्न विद्वानों के अध्ययनों से पता चलता है कि अधिकांश भारतीय शहर अपने क्षितिजीय विस्तार से चतुर्दिक् फैली कृषि भूमि का अतिक्रमण कर रहे हैं। कृषि भूमि अतिक्रमण की यह प्रक्रिया वर्ष 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के बाद से अत्यधिक तीव्र हो गयी है, परिणामत: कृषि संचालित क्षेत्र वर्ष 1991 में 165.5 मिलियन हेक्टेयर से घट कर 2015-16 में 157.5 मिलियन हेक्टेयर रह गया है। यह शोधपत्र देश में औद्योगीकरण और नगरीकरण के परिणामस्वरूप होने वाले कृषि भूमि ह्रास का कृषक समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करता है। विश्लेषण हेतु विभिन्न वर्षों की जनगणना और कृषि गणना तथा विभिन्न अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में यह पाया गया

*शोध छात्रा, समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार)
E-mail: ranireetu1728@gmail-com

है कि कृषि भूमि का अधिग्रहण होने से वहाँ के कृषकों में पुनर्वास, भूमिहीनता, खाद्य असुरक्षा तथा आजीविकाविहीन हो जाने जैसी समस्याएँ सामने आयीं हैं।

प्रस्तावना

यह सर्वविदित है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है तथा अपनी आजीविका के लिए कृषि एवं कृषि सम्बद्ध क्रियाकलापों पर निर्भर है। अत: कृषि ही भारत में ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक जीवन का आधार है (यादव, 2022)।

आर्थिक विकास हेतु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया गया, नये उद्योगों की स्थापना से शहरों में कुशल तथा अकुशल श्रम की माँग बढ़ गयी जिसकी आपूर्ति हेतु रोजगार की खोज में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर कामगारों के रूप में जनसंख्या का पलायन प्रारम्भ हो गया। भारत में इस प्रक्रिया का परिणाम तीन रूपों में परिलक्षित हुआ - 1. शहरों के क्षेत्रफल में वृद्धि, 2. शहरों की जनसंख्या में वृद्धि, तथा 3. नये शहरी क्षेत्रों का उद्‌भव। शहरों में बढ़ती जनसंख्या, शहरों का बढ़ता क्षेत्रफल और नये शहरी क्षेत्रों के उद्‌भव के साथ सड़क, आवासीय मकान, मॉल, उद्योग, पार्क आदि हेतु अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता होती है। इस अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता को शहर के चतुर्दिक् फैली गहन कृषि भूमि का अतिक्रमण करके पूरा किया जाता है।

मैकिंसे ग्लोबल इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट के अनुसार बढ़ती शहरी जनसंख्या का भार वहन करने के लिए वर्ष 2030 तक भारत को 700 से 900 मिलियन वर्ग मीटर वाणिज्यिक तथा आवासीय अतिरिक्त भूमि की, 2.4 बिलियन वर्ग मीटर अतिरिक्त सड़क तथा 7400 वर्ग किलोमीटर अतिरिक्त मेट्रो तथा भूमिगत मार्ग की आवश्यकता होगी। यह अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता शहरों के बाहर की ओर होने वाले फैलाव को प्रेरित करेगी। यह शोध पत्र मुख्यत: निम्न बिन्दुओं का विश्लेषण करता है : 1. भारत में शहरीकरण का स्तर, 2. कृषि भूमि के ह्रास का आकलन, 3. विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कृषक समाज पर पड़ने वाले कृषि भूमि ह्रास के प्रभाव का विश्लेषण, तथा 4. सुझाव और निष्कर्ष।

साहित्य समीक्षा

शहरीकरण और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप होने वाले कृषि भूमि ह्रास पर भारत सहित विश्व के अनेक देशों में अध्ययन किया गया है जैसे फजल, (2000) ने अपने अध्ययन में पाया कि कृषि भूमि का प्रयोग बेचने के उपरान्त गैर-कृषि कार्यों में दो प्रकार से होता है - 1. पुन: प्राप्त कर सकने योग्य प्रयोग, इसमें गैर कृषि भूमि को पुन: कृषि कार्य हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है जैसे पार्क, स्टेडियम आदि। 2. पुन: प्राप्त न कर सकने योग्य प्रयोग, इसमें पक्की कांक्रीट से ढँकी भूमि आती है जिसे पुन: कृषि कार्य में प्रयोग नहीं लिया जा सकता है। देवन और यामागुची (2009) ने ढाका शहर पर अध्ययन करके बताया कि

ढाका शहर का बढ़ता हुआ आकार उसके चारों तरफ विस्तृत कृषि भूमि का भक्षण करता जा रहा है, जिन शहरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है उनमें नये आवासीय मकानों का निर्माण शहर के बाहरी विस्तार का प्रमुख कारण हैं। कृषि भूमि छिन जाने से आजीविका की पुनर्स्थापना सबसे मुख्य समस्या होती है। आजादी एवं अन्य (2011) ने विकसित तथा विकासशील देशों के तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष में यह बताया कि विकसित देशों में शहरीकरण उच्चतम स्तर को प्राप्त कर चुका है अत: वहाँ शहरीकरण की गति मंद है और इसके परिणामस्वरूप होने वाला कृषि भूमि ह्रास विकासशील देशों की तुलना में न्यूनतम स्तर पर है। पाण्डेय और सेतो (2015) ने यह निष्कर्ष निकाला कि नयें तथा छोटे शहर बड़े शहरों की अपेक्षा अधिक कृषि कार्य में प्रयुक्त भूमि को गैर कृषि उपयोग में परिवर्तित कर रहे हैं तथा यह भी बताया कि विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों के विकास तथा कृषि भूमि ह्रास के मध्य सकारात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है। देबेला एवं अन्य (2020) ने अपने अध्ययन में पाया कि कुछ ही कृषक क्षतिपूर्ति राशि का प्रयोग अपनी आजीविका को पुन: संचालित करने हेतु करते हैं। कृषि भूमि में ह्रास कृषि उत्पादन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है जो कि खाद्य असुरक्षा को जन्म देता है।

भारत में शहरीकरण का स्तर

भारत में कुल जनसंख्या के साथ-साथ शहरी जनसंख्या भी निरन्तर बढ़ती जा रही है परन्तु शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से कहीं ज्यादा है। तालिका 1 में वर्ष 1901 से वर्ष 2011 तक शहरी जनसंख्या, कुल जनसंख्या में उसका प्रतिशत तथा कुल शहरी क्षेत्रों/कस्बों की संख्या को दर्शाया गया है।

तालिका 1

वर्ष	कुल जनसंख्या (मिलियन में)	कुल शहरी जनसंख्या (मिलियन में)	कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का अनुपात	कुल शहरी क्षेत्रों/ कस्बों की संख्या
1901	238.3	25.8	10.83	1827
1911	252.1	25.9	10.27	1815
1921	251.3	28.1	11.18	1949
1931	278.9	33.5	12.01	2072
1941	318.6	44.2	13.87	2250
1951	361.0	62.4	17.29	2843
1961	439.2	78.9	17.96	2365
1971	548.1	109.1	19.91	2590
1981	683.3	159.4	23.33	3378
1991	846.3	217.6	25.71	3768
2001	1027.1	285.4	27.78	5161
2011	1210.2	377.1	31.16	7935

स्रोत : विभिन्न वर्षों की जनगणना से परिकलित

चित्र 1

कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का हिस्सा

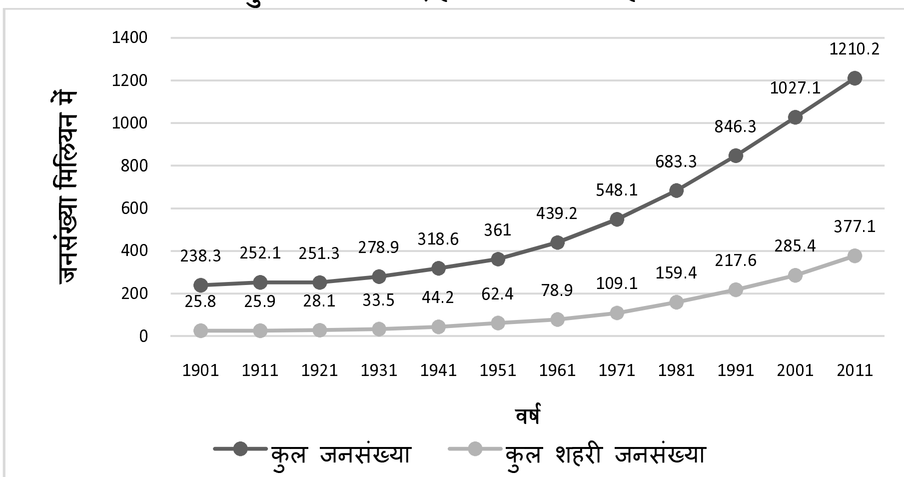

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि प्रत्येक जनगणना में कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का अनुपात लगातार बढ़ता जा रहा है, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शहरी जनसंख्या के वृद्धि दर में अधिक तेजी आयी है। वर्ष 1901 में जहाँ 25.8 मिलियन (10.83 प्रतिशत) जनसंख्या शहरों में निवास करती थी जो कि स्वतन्त्रता के पश्चात् हुई वर्ष 1951 की जनगणना में 62.4 मिलियन (17.29 प्रतिशत) तक पहुँच गई, अत: 50 वर्षों में कुल वृद्धि 37 मिलियन से भी कम रही। कुल शहरी जनसंख्या का वर्ष 2011 में बढ़कर 377.1 मिलियन (31.16 प्रतिशत) हो गयी, अत: वर्ष 1951 से वर्ष 2011 के 60 वर्षों के दौरान कुल शहरी जनसंख्या में लगभग 315 मिलियन की वृद्धि हुई। अगर कुल कस्बों/शहरी क्षेत्रों पर गौर किया जाये तो जहाँ वर्ष 1901 में इनकी कुल संख्या 1827 थी, वर्ष 1951 में बढ़कर 2843 तथा वर्ष 1991 में बढ़कर 3768 तक पहुँच गयी इसके पश्चात् शहरी क्षेत्रों/कस्बों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि अंकित की गयी तथा इनकी कुल संख्या वर्ष 2011 तक दोगुने से ज्यादा बढ़कर 7935 पहुँच गयी। शहरी जनसंख्या तथा शहरी क्षेत्रों/कस्बों में हुई वर्ष 1991 के बाद वृद्धि में वैश्वीकरण के योगदान को भी देखा जा सकता है। जहाँ वर्ष 1901 से वर्ष 1991 के मध्य कुल शहरी जनसंख्या में लगभग 192 मिलियन की वृद्धि हुई तथा इसी समयान्तराल में शहरी क्षेत्रों/कस्बों की संख्या में 1941 की निरपेक्ष वृद्धि हुई जबकि वर्ष 1991 के बाद से मात्र 20 वर्षों में शहरी जनसंख्या में कुल निरपेक्ष वृद्धि 160 मिलियन रही तथा शहरी क्षेत्रों/कस्बों की संख्या में कुल वृद्धि 4177 की रही। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्ष 1991 के बाद से शहरी जनसंख्या और शहरी क्षेत्रों/कस्बों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है जबकि कुल जनसंख्या की वृद्धि दर वर्ष 1991 के बाद से लगातार कम होती जा रही है. वर्ष 1991 के बाद से आयी इस तीव्रता का मुख्य कारण खुली अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण है।

कृषि भूमि के ह्रास का आकलन

अब तक के विवरण से स्पष्ट है कि भारत में शहरीकरण और औद्योगीकरण तीव्र गति से हो रहा है तथा विभिन्न विद्वानों के अध्ययनों से यह भी स्पष्ट है कि भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण कृषि भूमि ह्रास का मुख्य कारण है। भारत में शहरीकरण और औद्योगीकरण का स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है तथा इस प्रक्रिया में वर्ष 1991 के बाद से अधिक तेजी आयी है। यही कारण है कि वर्ष 1991 के बाद कुल कृषि संचालित क्षेत्र लगातार कम होता जा रहा है। वर्ष 1990-91 में जहाँ कुल कृषि संचालित क्षेत्र 165.5 मिलियन हेक्टेयर था वह 2015-16 में यह घटकर 157.14 मिलियन हेक्टेयर तक पहुँच गया है तथा आगे भी इसके घटने का अनुमान लगाया जा रहा है। मैकिन्से ग्लोबल इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट के अनुसार बढ़ती शहरी जनसंख्या के कारण भारत को प्रतिवर्ष 300 से 450 किलोमीटर मेट्रो लाइन तथा 19000 से 25000 किलोमीटर सड़क प्रतिवर्ष निर्माण करने की जरूरत है। इस निर्माण का परिणाम बड़े स्तर पर कृषि भूमि ह्रास के रूप में सामने आएगा। क्योंकि समतल होने के कारण कृषि भूमि शहरी और औद्योगिक निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त होती है। एक अनुमान के अनुसार 2000 से 2010 के बीच भारत में लगभग 0.7 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि का ह्रास हुआ है जो कि दिल्ली के क्षेत्रफल से 5 गुना अधिक है (पाण्डेय और सेतो, 2015)।

तालिका 2

	1970-71	1976-77	1980-81	1985-86	1990-91	1995-96	2000-01	2005-06	2010-11	2015-16
कृषि संचालित क्षेत्र (000' हेक्टेयर में)	162318	163343	163797	164562	165507	163355	159436	158323	159592	157817
भू जोतों का औसत आकार (हेक्टेयर में)	2.28	2.00	1.84	1.69	1.55	1.41	1.33	1.23	1.15	1.08

स्रोत : कृषि जनगणना

अगर भारत के कुछ प्रमुख शहरों पर किये गए अध्ययनों की बात की जाये तो वर्ष 2006 में कोलकाता के सिंगूर में 997 एकड़ मुख्य कृषि भूमि का अधिग्रहण एक कार फैक्ट्री लगाने के लिए किया गया (घटक एवं अन्य, 2013)। फजल, (2001) के अनुसार वर्ष 1988 से 1998 के बीच सहारनपुर शहर के क्षेत्रफल में लगभग 81 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, इससे

1683 हेक्टेयर कृषि भूमि का ह्रास हुआ है। रहमान एवं अन्य, (2011) के द्वारा हैदराबाद-सिकंदराबाद पर किये गये अध्ययन से पता चलता है कि इन जुड़वा नगरों के क्षेत्रफल में वर्ष 1971 से 2005 के मध्य 235 वर्ग किलोमीटर की वृद्धि हुई है जिससे 215 वर्ग किलोमीटर मुख्य कृषि भूमि का ह्रास हुआ है। मुंडे (2016) के द्वारा पुणे शहर पर किये गये शोध से पता चलता है कि वर्ष 1973 से 2014 के बीच कुल निर्मित क्षेत्र में 135 वर्ग किलोमीटर की निरपेक्ष वृद्धि हुई है इससे शहर के चारों ओर विस्तृत कृषि भूमि का ह्रास हुआ है।

कृषि उपज और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव

खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से भारत दुनिया के अत्यन्त खराब स्थिति वाले देशों की सूची में आता है। मैकिन्से ग्लोबल इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट के अनुसार भारत को बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु वर्ष 2025 तक 400 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्यान्न की आवश्यकता होगी, ऐसे लगातार कृषि भूमि का संकुचन एक बड़ी समस्या उत्पन्न करता जा रहा है।

तालिका 3

भू जोतों की संख्या (हजार में)

क्र.	वर्ग	1970-71	1976-77	1980-81	1985-86	1990-91	1995-96	2000-01	2005-06	2010-11	2015-16
1	सीमान्त	36200	44523	50122	56147	63389	71179	75408	83694	92826	100251
2	छोटे	13432	14728	16072	17922	20092	21643	22695	23930	24779	25809
3	अर्द्ध मध्यम	10681	11666	12455	13252	13923	14261	14021	14127	13896	13993
4	मध्यम	7932	8212	8068	7916	7580	7092	6577	6375	5875	5561
5	बड़े	2766	2440	2166	1918	1654	1404	1230	1096	973	838
	कुल	71011	81569	88883	97155	106637	115580	119931	129222	138348	146454

स्रोत : कृषि पर अखिल भारतीय प्रतिवेदन - 2015

चित्र 2

भू जोतों की संख्या (हजार में)

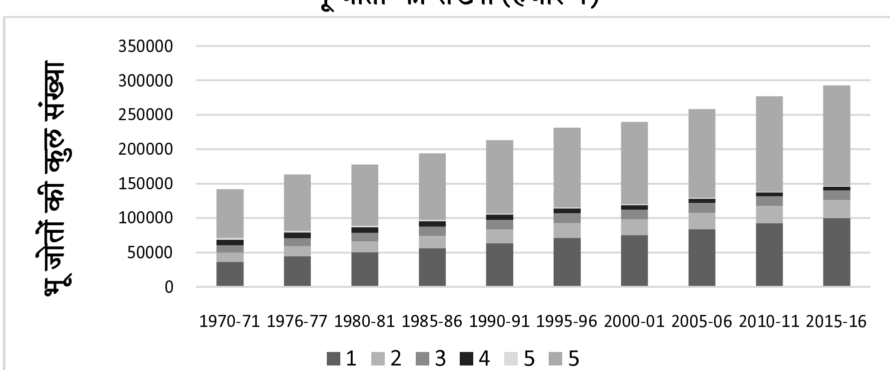

तालिका 3 तथा चित्र 2 से स्पष्ट है कि शहरीकरण के कारण केवल कृषि भूमि का संकुचन ही नहीं हुआ है अपितु औसत जोतों का आकार भी कम होता जा रहा है। बड़े और मध्यम जोतों की कुल संख्या जहाँ वर्ष 1970-71 में क्रमशः 7932000 तथा 2726000 थी, घटकर वर्ष 2015-16 में केवल क्रमशः 5561000 तथा 838000 ही बची है, जबकि इसी समयान्तराल में सीमान्त जोतों की संख्या 36200000 से बढ़ कर 100251000 हो गयी, छोटे जोतों की कुल संख्या 13432000 से बढ़कर 25809000 तक पंहुच गई। अर्द्ध मध्यम जोतों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। उसी समयावधि में अर्द्ध मध्यम जोतों की संख्या भी 10681000 से बढ़कर 13393000 हो गयी। सीमान्त एवं छोटे भू जोत कुल कृषि भूमि का 86.08 प्रतिशत भाग उपयोग करते हैं जिनका आकार 2 हेक्टेयर से कम है। कृषि जोतों का आकार छोटा होने से उनकी जरूरतें पूरी नहीं हो पातीं हैं इससे वे कृषि को आजीविका के साधन के रूप में त्याग रहे हैं (सिंह एवं भोगल, 2014)।

तालिका 4
खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल (000’ हेक्टेयर में)

	2010-11	2015-16
कुल अनाज	110511	107978
कुल दालें	22260	20588
कुल खाद्यान्न	147894	144008

स्रोत : कृषि जनगणना

उपर्युक्त तालिका संख्या-4 के अनुसार भारत में खाद्यान्नों के अन्तर्गत कुल बोया गया क्षेत्रफल लगातार तेजी से कम होता जा रहा है। वर्ष 2010-11 में खाद्यान्न 147894000 हेक्टेयर में बोये गये थे वहीं यह क्षेत्रफल वर्ष 2015-16 में घटकर 144008000 हेक्टेयर ही रह गया। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी ग्लोबल हंगर इंडेक्स-2022 में भारत को 121 देशों की सूची में 107वाँ स्थान मिला जबकि ग्लोबल फूड सिक्यूरिटी इंडेक्स-2022 में भारत को 113 देशों की सूची में 68वें स्थान पर रखा गया। खाद्य असुरक्षा के कारण ही भारत में सबसे अधिक कुपोषित जनसंख्या निवास करती है। इस स्थिति को सुधारने हेतु भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को व्यापक स्तर पर चलाया जा रहा है। परन्तु कृषि भूमि के क्षेत्रफल में लगातार गिरावट से खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से किसानों की स्थिति दिन-प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से सीमान्त और छोटे कृषक परिवार अधिक संवेदनशील हैं जिनकी प्रतिदिन की आय बहुत कम है।

कृषकों की आजीविका पर प्रभाव

कृषि भूमि के कारण आजीविका विहीन हुए कृषक कर्ज लेने पर मजबूर हो जाते हैं। राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय की रिपोर्ट के अनुसार 2 प्रतिशत से अधिक कृषक परिवार

कर्ज में फंसे हैं। एक परिवार पर औसतन रुपये 74000 से अधिक का कर्ज है। लिए गये कुल कर्ज का केवल 58 प्रतिशत ही कृषि में उपयोग के उद्देश्य से लिया गया है। कृषि से वंचित कृषक या तो दिहाड़ी मजदूर बन जाते हैं या तो शहरों में जाकर प्रदूषित वातावरण में कम मजदूरी पर काम करने को मजबूर होते हैं। देबेला एवं अन्य (2020) के अध्ययन के अनुसार बहुत कम कृषक परिवार कृषि भूमि अधिग्रहण के बदले प्राप्त क्षतिपूर्ति राशि प्रयोग आजीविका की पुनर्स्थापना हेतु कर पाते हैं। इन्होंने अध्ययन के दौरान पाया कि क्षतिपूर्ति राशि का अधिकांश भाग सामाजिक प्रथाओं, आवास बनाने, चिकित्सा, शिक्षा आदि में ही प्रयोग किया जाता है। यह धनराशि जल्दी ही समाप्त हो जाती है इसके बाद उनकी स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।

सुझाव एवं निष्कर्ष

जैसे-जैसे भारत में शहरी जनसंख्या बढ़ती जा रही है वैसे ही भारत में शहरी क्षेत्रों की संख्या, शहरों में जनसंख्या तथा शहरों का क्षेत्रफल भी बढ़ता जा रहा है। शहरी जनसंख्या में वृद्धि का मुख्य कारण औद्योगीकरण से उत्पन्न रोजगार की तलाश में ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर प्रवासन है। अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि नयें शहरी क्षेत्रों का उद्‌भव होने से तथा शहरों के क्षेत्रफल में वृद्धि होने से उसके चारों ओर विस्तृत कृषि भूमि का ह्रास होता जा रहा है। कृषि भूमि का ह्रास कृषकों की आजीविका को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। कृषि से विस्थापित होने के बाद कृषक आजीविका हेतु लगातार संघर्ष करते हैं। अत: सरकार को स्थानीय निकायों से मिलकर कृषि भूमि के संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाने की जरूरत है। एक ऐसे विभाग की स्थापना की जानी चाहिए जो नियमित रूप से कृषि भूमि का परिकलन कर इसके संरक्षण हेतु उचित नियमावली निर्धारित करता हो। यह भविष्य में खाद्य सुरक्षा, कृषकों की आजीविका तथा पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची

आजादी, एच., हो, पी., और हस्फियती, एल. (2011). 'एग्रीकल्चरल लैंड कन्वर्शन ड्राईवर्स: ए काम्परिजन बिटवीन लेस डेवलप्ड एंड डेवलप्ड'. *लैंड डीग्रेडेशन एंड डेवलपमेंट,* 22(6), 596-604. https://doi.org/10.1002/ldr.1037

देवन, ए.एम., और यामागुची, वाई. (2009). 'यूजिंग रिमोट सेंसिंग एंड जीआईएस टू डिटेक्ट एंड मॉनिटर लैंड यूज एंड लैंड कवर चेंज इन ढाका मेट्रोपोलिटन ऑफ बांग्लादेश ड्यूरिंग 1960-2005'. *एनवायर्नमेंटल मोनिटरिंग एंड असेसमेंट,* 150(1-4), 237-249. https://doi.org/10.1007/s10661-008-0226-5

देबेला, डी.डी., स्टेलमचर, टी., आजादी, एच., केल्बोरो, जी., लेबैली, पी., एवं घोरबानी, एम. (2020). 'दी इम्पैक्ट ऑफ इंडस्ट्रियल इन्वेस्टमेंट ऑन लैंड यूज एंड स्माल होल्डर फार्मर्स लाइवलीहुड इन इथिओपिया'. *लैंड यूज पालिसी,* 99 (सितम्बर), 105091. https://doi.org/10.1016/j.landusepol.2020.105091

फजल, एस. (2000). 'अर्बन एक्सपेंशन एंड लॉस ऑफ एग्रीकल्चरल लैंड - ए जीआईएस बेस्ड स्टडी ऑफ सहारनपुर सिटी, इंडिया'. *एनवायर्नमेंटल एंड अर्बनाइजेशन,* 12(2), 133-149. https://doi.org/10.1177/095624780001200211

फजल, एस. (2001). 'द नीड ऑफ प्रिजर्विंग फार्मलैंड : ए केस स्टडी फ्रॉम ए प्रिडॉमिनेंटली एग्रेरियन इकोनॉमी (इंडिया)'. *लैंडस्केप एंड अर्बन प्लानिंग,* 55(1), 1-13. https://doi.org/10.1016/S0169-2046(00)00134-1

घटक, एम., मित्र, एस., मुखर्जी, डी., एवं नाथ, ए. (2013). 'लैंड एक्विजीशन एंड कम्पनसेशन : व्हाट रियली हेप्पन्ड इन सिंगुर?' *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* 48(21), 32-44.

मुंडे, एन.एन. (2016). 'मॉनिटरिंग फिजिकल एक्सपेंशन ऑफ पुणे सिटी यूजिंग जीआईएस एंड रिमोट सेंसिंग टेक्नीक'. *ग्लोबल जर्नल फॉर रिसर्च एनेलिसिस,* 5(9), 157-158.

पाण्डेय, बी., एवं सेतो, के.सी. (2015). 'अर्बनाइजेशन एंड एग्रीकल्चरल लैंड लॉस इन इंडिया : कम्पेयरिंग सेटेलाईट विथ सेन्सस डेटा'. *जर्नल ऑफ एनवायर्नमेंटल मैनेजमेंट,* 148, 53-66. https://doi.org/10.1016/j.jenvman.2014.05.014

रहमान, ए., अग्रवाल, एस.पी., नेजबैड, एम., एवं फजल, एस. (2011). 'मॉनिटरिंग अर्बन स्प्राल यूजिंग जीआईएस एंड रिमोट सेंसिंग टेक्नीक ऑफ ए फास्ट ग्रोविंग अर्बन सेंटर, इंडिया'. *आईईईई जर्नल ऑफ सिलेक्टेड टॉपिक्स इन एप्लाइड अर्थ ऑब्जर्वेशन एंड रिमोट सेंसिंग,* 4(1), 56-64. https://doi.org/10.1109/JSTARS.2010.2084072

सिंह, एस., एवं भोगल, एस. (2014). 'डिपिजनटाइजेशन इन पंजाब : स्टेटस ऑफ फार्मर्स'. *करेंट साइंस,* 106(10).

यादव जितेन्द्र. (2022). 'भारतीय किसान की चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ'. *अपनी माटी,* 41.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 105-114)
UGC-CARE (Group-I)

प्रकृति की संरक्षक एवं पूजक बैगा जनजाति : मध्य प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में

नूतन केवट* एवं रंजू हासिनी साहू†

भारतीय समाज में विभिन्न जनजातीय समुदाय का पाया जाना हमारी सांस्कृतिक विरासत है। आधुनिक युग उपभोगवाद पर आधारित है, वर्तमान में आदिम जनजाति के जीवन के पहलुओं का अध्ययन करना भी आधुनिक समाज की आवश्यरकता है, भारतीय बैगा जनजाति ने स्वंय को विपरीत परिस्थितियों में भी प्रकृति की गोद में जीवित रखा है। सतत विकास के क्षेत्र में मानव व्यवहार और पर्यावरण को समझने के लिए विशिष्ट शोध की आवश्यकता है, जिससे प्रकृति से घनिष्टता रखने वाली बैगा जनजाति समुदाय के योगदान पर प्रकाश डाला जा सके। यह लेख विशिष्ट अनुसन्धान के क्षेत्र में मानव व्यवहार एवं प्रकृति प्रेम पर केन्द्रित है। इस अध्ययन के द्वारा बैगा जनजाति के प्राकृतिक प्रेम पर प्रकाश डाला गया है। यह अध्ययन शोध विषय के रूप में तथ्यों का संकलन द्वितीयक स्रोत एवं अवलोकन से प्राप्त किया गया है, जिसका उद्देश्य बैगा जनजाति की उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा एवं जीवन में प्रकृति की उपयोगिता का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है।

*शोधार्थी, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्य प्रदेश)
E-mail: nootankewat@gmail.com
†आचार्य, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्य प्रदेश)
E-mail: ranju.sahoooigntu.ac.in

प्रस्तावना

मध्यप्रदेश आदिवासी बाहुल्य प्रदेश है, जहाँ पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता विद्यमान है। मध्य प्रदेश देश का पहला ऐसा राज्य है, जिसमें भारत की सम्पूर्ण अनुसूचित जनजाति का 14.15 प्रतिशत जनजाति समुदाय निवासरत है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश की आदिवासी जनसंख्या 1,53,16,787 है। मध्य प्रदेश में यह कुल जनसंख्या का 20.1 प्रतिशत है। बैगा जनजाति भारत में झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश में मुख्य रूप से पाई जाती है जिसमें मध्य प्रदेश में सर्वाधिक है। सम्पूर्ण भारत में वर्ष 2011 के अनुसार बैगा जनजाति की कुल जनसंख्या 5,52,495 है, जिसमें सर्वाधिक बैगा जनजाति मध्य प्रदेश में निवासरत है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश में कुल बैगा जनजाति 4,14,526 है, जिसमें ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या क्रमशः 3,94,032 एवं 20,494 है। अनूपपुर जिले की कुल बैगा जनजाति की जनसंख्या 30,211 है, ग्रामीण एवं शहरी क्रमशः 24,245 एवं 12,113 है, तथा कुल जनसंख्या जिसमें महिला एवं पुरुष क्रमशः 15,116 एवं 15,095 हैं। वर्ष 2001 एवं 2011 के अनुसार बैगा जनजाति की साक्षरता दर क्रमशः 34.3 व 47.2 प्रतिशत है, तथा वर्ष 2001 एवं 2011 के अनुसार, महिला साक्षरता दर क्रमशः 20.1 एवं 37.9 प्रतिशत है। ढेबर आयोग ने 1973 में बैगा जनजाति को मध्य प्रदेश विशेष पिछड़ी जनजाति समूह के रूप में घोषित किया है एवं वर्ष 2006 में भारत सरकार ने इनका विशेष पिछड़ी विलुप्त जनजाति समूह के रूप में पुनः नामकरण किया है। मध्य प्रदेश में 43 जनजातियाँ निवासरत हैं, जिसमें तीन विशेष पिछड़ी जनजाति बैगा, भारिया एवं सहरिया हैं। विशेष पिछड़ी जनजाति की मान्यता भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित मापदण्डों के आधार पर सुनिश्चित की गयी है - कृषि-पूर्व स्तर की प्रौद्योगिकी, स्थिर या घटती हुई जनसंख्या, कम साक्षरता दर एवं अर्थव्यवस्था का न्यूनतम स्तर भारत सरकार द्वारा चिह्नांकित क्षेत्र में निवास करने वाली विशेष पिछड़ी जनजाति को आदिमजाति समूह के रूप में सम्मिलित कर विशेष दर्जा प्रदान किया गया है। बैगा जनजाति मध्याप्रदेश के मण्डला, बालाघाट, डिंडौरी, अनूपपुर, शहडोल एवं उमरिया में संकेन्द्रित है। इन जिलों के 1,144 ग्रामों में बैगा जनजाति चिह्नांकित क्षेत्र में निवासरत है।

बैगा जनजाति भारत की अति प्राचीन जनजाति है, जो विन्ध्य पर्वत श्रेणी पर निवासरत है। मैकाल पुत्र बैगा जनजातियाँ मध्य प्रदेश के अमरकंटक क्षेत्र नर्मदा उद्गम के चारों ओर फैली हुई हैं। आदि सभ्यता की जननी रेवा ही मैकाल सुता और बैगा मैकाल सुत कहलाते है। 1872 ई. में कैप्टन फोरसिथ थामस ने अपनी पुस्तक 'द हालैण्ड ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया' में उल्लेख किया है कि यह जनजाति दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है एवं यह पिछड़ी हुई अवस्था में आधुनिक सभ्यता से दूरी बना कर रखने वाली जनजाति है और इनको अपनी पहचान खो जाने का भय बना रहता है, जिससे यह जनजाति आज भी वन क्षेत्र में अपने समूह में और गैर समाज से दूर स्वतन्त्रतापूर्वक रहना पसन्द करती है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन के लिए चयनित क्षेत्र पुष्पराज विकासखण्ड, अनूपपुर जिले के मध्य भाग में स्थित है जो मध्य प्रदेश सरकार द्वारा घोषित 89 आदिवासी विकासखंडों में से एक है। अनूपपुर जिले की कुल जनसंख्या (22,1589) का 78 प्रतिशत जनजाति पुष्पराज विकासखण्ड में निवासरत है। यह क्षेत्र बैगा जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है। वर्ष 2011 के अनुसार अनूपपुर जिले की कुल बैगा जनजाति की जनसंख्याा 30,211 है, ग्रामीण एवं शहरी क्रमशः 24,245 एवं 12,113 है, तथा कुल जनसंख्या जिसमें महिला एवं पुरुष क्रमशः 15,116 एवं 15,095 हैं। यह क्षेत्र बैगा जनजाति की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक विविधता से धनी है। अतः इस क्षेत्र को अध्ययन हेतु चयनित किया गया है।

रसेल और हीरालाल के अनुसार, बैगा जनजाति की उत्पत्ति भारत के छोटा नागपुर पठार की आदि जनजाति भुइया से मानते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ भूमि, पृथ्वी है। भारत में बैगा जनजाति का निवास मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड प्रमुख रूप से है। बैगाओं की प्रमुख शाखाएँ - भूमिया, बिझवार, भरौतिया, नाहर, भैना, कोडवान, मुड़िया या मारिया हैं (एल्विन वैरियर, द बैगा 1935)। ये उपजातियाँ विभिन्न बहिर्विवाही गोत्र में विभाजित हैं।

बैगा जनजति की उत्पत्ति मैकाल पर्वत, जो अमरकंटक से सालटेकरी बालाघाट तक फैला है, ये उसके मध्य उच्च स्थलों, सघन साल वनों के बीच निवास करती है। भरौतिया, भूमिया बैगाओं से पूर्णरूपेण मिलती है, जो सघन रूप से बालाघाट की बैहर तहसील एवं डिंडौरी जिले के बैगा चक में निवासरत है। बैगा जनजाति भरौतिया शब्द का अर्थ भरण पोषण कराने वाला से मानते हैं। बिझवार उपजाति बैगाओं की सबसे सभ्य उपजाति है। यह जनजाति मध्य प्रदेश के विध्याचल पर्वत से पश्चिमी भाग तक विस्तारित है। ये अपने आप को विध्याचल से अर्थात् विध्याचल वाले या विन्धौवार कहकर सम्बोधित किया करते हैं (चौरसिया, 2004)।

बैगा जनजाति का प्रकृति प्रेम

बैगा जनजति प्रकृति द्वारा भेंट की गई वनोपज पर अश्रित रहने वाली जनजाति है। जंगल, जल, जमीन से इनका प्राचीन सम्बन्ध रहा है और इनकी सामाजिक एकता और शरीर की बनावट प्रकृति के अनुकूल होती है। धरती के पुत्र कहलाने वाली जनजाति की परम्परागत खेती अलग पहचान लिये होती है। ये धरती को अपनी पुत्री मानकर उसका पेट नहीं चीरते, न ही हल कुदाली से खेती करते हैं बल्कि, शुष्क होने वाली खेती, छींट कर बोई जाने वाली फसलें कोदो, कुटकी, सांवा, मक्का, ज्वार आदि की खेती करते हैं। बैगा जनजाति आदिम कृषक नवपाषाणकालीन से आगे कभी नहीं उठ पाए हैं जो स्थातन्तरित कृषि अर्थात् डहिया कृषि पर निर्भर है। बैगा जनजति स्थानान्तरित कृषि (बेवार) हेतु वन क्षेत्र के किसी समतल भूमि पर केवल झाड़ियों को ही काट कर कृषि योग्य भूमि बनाते हैं। यह प्रतीत होता है कि ये प्रकृति की सुन्दरता जंगल को बिना काटे, भली-भाँति रखना जानते हैं। वनोपज से प्राप्त फल-फूल ही इनकी खाद्य समग्री होती है जिसमें चार, चिरौंजी, महुआ, तेन्दु, आवला भेलमा,

शहद और कन्दमूल से ही अपनी जीविका चलाते हैं। प्रकृति की सही पहचान रखने वाली जनजाति बैगा आदिम कृषि कला की जनक मानी जाती है। बिना जोत की खेती करने को ये प्रकृति का वरदान मानते हैं और वन्य जीवों को अपना मित्र और सहयोग पोषी मानते हैं।

बैगा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वत: स्थान परिवर्तित कर मौसम अनुसार खेती और निवास बदलते रहते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में वर्षा काल और मैदानी क्षेत्रों में ग्रीष्म काल तथा शीतकालीन समय में वनों के बीच उँचाइयों में अपना आवास अदल-बदल कर घास, फूस एवं बाँस के झोपड़े में रहते हैं तथा पशुओ के लिए साल की लकड़ियों का बाड़ा बनाते हैं। बैगा जनजाति परम्परा रूप में चिकित्सक जाति के रूप में पहचानी जाती है और अपने ज्ञान का विस्तार पैतृक रूप से करती आ रही है। ये अपने पूर्वजों से अति प्राचीन औषधियुक्त पेड़-पौधों, जड़ी-बूटियों की पहचान जैसे हर्रा, बहेरा, पचगुड्डु, चिरायता, गिलोय, ब्राम्ही, रीठा, शीकाकाई, सोमवल्ली एवं कन्द के खान-पान और औषधि की पहचान रखते हैं। बैगा वैद्यक जगत् में आज भी रामायणकालीन सुषेण को अपना पूर्वज मानते हैं। वैद्यनाथ वन औषधि की व्युत्पत्ति बैगा जनजाति के वैद्यक के रूप में विद्यमान है। बैगा जनजाति अनपढ़ होते हुए भी प्रकृतिक आपदाओं से निपटने का भरपूर ज्ञान रखती है। माझी जनजाति में बैगा वैद्य के रूप में माने गये हैं (मजुमदार, 1949)।

यह जनजाति अपने भोजन में पोषक तत्वों का ध्यान रखते हुए खाद्य पदार्थ का चयन करती है, बरसात के दिनों में नरगबासा जिसे करील कहते हैं, खाते है एवं चकौड़ा (केशिया टोरा) को हरी भाजी के रूप में सेवन करते हैं। इसकी पत्तियों में कैल्शियम की भरपूर मात्रा पाई जाती है एवं बीजों को जीवाणुरोधक के रूप में प्रयोग किया जाता है। साथ ही प्रोटीन के रूप में पिहरी मशरूम का सेवन करते हैं। महुआ को मेवा के रूप में उपयोग करते हैं। दुनिया का पहला पुष्प संचय फल-फूल, बीज (डोरी) के रूप में रखते हैं। ये जनजाति महुए के पेड़ पर अपनी कुल्हाड़ी नहीं चलाती। ये उसे अपना देवता मानते हैं। इसके सामाजिक धार्मिक संस्कार में मदिरा एवं महुआ अनिवार्य होता है। पेय पदार्थ के रूप में महुआ का लाटा अर्थात् चना महुआ को पीस कर भोज्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। कवि रामलखन जलेश के अनुसार अपनी कविता में बैगा जनजाति को फूल शब्द को लेकर रहन-सहन एवं जीवन को परिभाषित किया गया है -

फूल को चाबै, फूलहि खावै, फूलहि पियै तपावै,
फूल पकावै, फूल में परसै, फूल में ईश बुलावै।
है पिता पुत्र के नाम एक ही, महुआ देव कहावै,
जल, जमीन, जंगल संरक्षक, बैगा जलेश सब भावै।

उपरोक्त पक्तियों का अभिप्राय है कि बैगा जनजाति फूल को चबाती है, अर्थात् महुए के लाटे को चबाती है, महुआ उबालकर खाती है और, महुआ की मदिरा को फूल कहते हैं जिसे धरती पर अर्पित कर दिया जाता है। महुआ को फूल अर्थात् काँसा के बटुए में पकाया जाता है, फूल की थाली में परोसा जाता है एवं महुए के फूल से निर्मित पेय पदार्थ मदिरा को फूल कहा जाता है जिसे देवता को अर्पित किया जाता है।

बैगा जनजाति की सामाजिक एवं धार्मिक संरचना

बैगा जनजाति की सामाजिक एकता मधुमक्खीं जैसी होती है जो अपना अलग संसार जो कि कुछ समय पश्चात् अपने घर अर्थात् छत्ते को छोड़कर नया आवास स्थान चुनकर बनाते है एक मुखिया का आदेश पालन और समाज में समता का स्थान होता है। महिला एवं पुरुष बराबरी के साथ शिकार, कन्दमूल एकत्रित कर जीवकापार्जन करते हैं। पर्यावरण संरक्षण से बैगा जनजातियों सदैव आत्ममनिर्भरता विद्यमान रही है, सामाजिक एकता का प्रतीक के रूप में साप्ताहिक हाट का आयोजन किया जाता है जहाँ विभिन्न प्रकार की जरूरत की वस्तुएँ खरीदी एवं बेची जाती है, और धार्मिक आयोजन भी किया जाता है। प्राकृतिक उत्पाद एवं मिटटी से निर्मित बर्तन बांस से बनी टोकरियाँ, लकड़ी एवं लोहे से बने औजार अपनी कारीगरी को बनाए हुए है एवं प्रकृति से अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। मोहलन की छाल से रस्सी का निर्माण करते है।

गुदना स्थाई आभूषण के रूप में

बैगा जनजातियों में प्रकृति की सुरक्षा के लिए इनके गोत्र चिह्न प्रेरक तत्व हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित होते हैं अत: ये अपने रीति-रिवाज एवं रूढ़ीवादी परम्पराओं में दृढ़ता से विश्वास रखते हैं। बैगाओं में गुदने का आकल्पन लम्बी रेखाओं पर आधारित होता है, जो कि विभिन्न प्रकार के टोटम या कुल चिह्न का प्रतीक होते हैं यह उनके कुलदेवता, और देवी से सम्बन्धित होते हैं। उनका यह मानना है कि टोटम से जंगली जानवरों एवं विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक बाधाओं से रक्षा होती है। यह जनजाति गुदना प्रिय जनजाति है, यह उनका स्थाई आभूषण है। उनके गुदना में स्वयं के रीति-रिवाज का जिक्र दिखाई पड़ता है। ये गुदना के रूप में विंशिष्ट पहचान बनाये हुए माथा, छाती, भुजा, पर आभूषण होते है। ऐसा माना जाता है कि मृत्यु के पश्चात् भी अपने पूर्वज से गोदना के माध्यम से मिलते हैं। गुदना गोदने के लिए रमतिला का तेल और सरई की गोंद मिलाकर एक मिट्टी के पात्र से ढककर उस मिश्रण के धुँए से काजल बनाते हैं तथा काजल को बीजा की लकड़ी से तैयार घोल या भीलावा रस का भी उपयोग करते हैं और मिश्रण से सुई द्वारा चित्र उकेरा जाता है, गुदना एक प्रकार का सामुदायिक चिह्न है, जो अति आवश्यक माना जाता है (चौरसिया, 2004)।

बैगा जनजाति ने विभिन्न प्रकार की धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक परम्पराओं के माध्यम से प्रकृति प्रेम को अपने जीवन में सजोये रखा है।

बैगा जनजाति के धार्मिक त्यौहार

बैगा जनजातियाँ प्रकृति के सान्निध्य में रहकर ऐसा जीवन जीने की आदि होती है जो सहज सुलभ प्राकृतिक साधनों पर आधारित होती है। भौगोलिक दुर्गमता एवं प्रकृति के सीमित संसाधनों के कारण प्रकृति की प्रतिकूलता में बेगा जनजाति स्वयं को असहाय एवं निरीह महसूस करते है। उनका विश्वास है कि दैवीय-पारलौकिक शक्ति के आशीर्वाद से

अच्छा एवं नाराजगी से बुरा होता है। अत: वे देवी-देवताओं का प्रसन्न करने हेतु अनुष्ठानिक क्रिया करते हैं। वही कार्य होने पर कृतज्ञता स्वरूप देवी देवताओं की अराधना की जाती है। बैगा जनजाति बहुदेववादी है। देवधामों को बैगा जनजाति दो भागों में विभक्त करती है ग्राम देवता ठाकुर देव, बूढ़ादेव, नारायणदेव, खेरमाई, आदि तथा घर के देवी-देवताओं में बूढ़ा बजारी देव, दूल्हादेव इत्यादि हैं। साल वृक्ष, पलाश, महुआ की पूजा करते हैं और नीम को अपनी माता देवी का दर्जा देते हैं। प्रकृति की पूजा फसल के पकने पर जवारे, भोजलिया त्यौहार मनाया जाता है।

बिदरी

बिदरी पूजा बैगा जनजाति की प्रकृति के प्रति आस्था का रूप में बीज बोने के पूर्व का त्यौहार है, जो कि जेठ या आषाढ़ में की जाती है एवं बिदरी पूजा अच्छी फसल की कामना की जाती है। गृह स्वामी महलोन के पत्ते से बने दोने में बोए जाने वाले अलग-अलग अनाज के बीजों को भरकर इकट्ठा करते हैं एवं धरती माता को गुनिया द्वारा भोग अर्पित किया जाता है।

नवखाई

फसलों की प्राप्ति पर भादों के माह में नवखाई त्यौहार मनाया जाता है, जिसमें देवी देवताओं के प्रति कृतज्ञता स्वरूप आभार को व्यक्त कर नये अन्न का भोग अर्पित किया जाता है। यह उत्सव के रूप में प्रकृति प्रेम को दर्शाता है।

हरेली

श्रावण मास की अमावस्या को बैगा जनजाति हरेली त्यौहार मनाते हैं वास्तव में यह त्यौहार अच्छी फसल की कामना एवं धन-धान्य की बढ़ोतरी के लिए मनाया जाने का त्यौहार है जिससे मवेशी को भरपूर चारा मिलेगा। बैगा इसे मनाने के लिए अपने घर एवं सार की साफ सफाई एवं लीपा-पोती करते हैं। भरोतिया बैगा भिलवा, बाबालटी, और बास के खखरा पत्ते घर में खोसते हैं। गुनिया इसी दिन से चेला बनाकर औषधि एवं मन्त्र ज्ञान देना आरंभ करता है और जड़ी बुटियों को जगाता है।

दशहरा

दशहरा में बैगा लोग अपने देवी देवताओं की पूजा करते है इस त्यौहार में ठाकुर देव की विशेष पूजा की जाती है समस्त लोग मिलकर पूजा करते हैं।

चंडी पूजा

चंडी पूजा बैगाओं का देवी पूजा का महत्त्वपूर्ण धर्मिक त्यौहार है दीवाली के दूसरे दिन बैगा घर के आँगन में देवी के प्रतीक के रूप में चंडी बाँधते हैं, चंडी वास्तव में आठ-दस

हाथ लम्बा बाँस होता है जिसे गेरू चूने से बिन्दी आदि द्वारा चित्रित कर सजाया जाता है, इस पर घंटी लाल ध्वजा एवं मोर पंख बाँधकर देवीय स्वरूप दिया जाता है। चंडी को मड़ई में घुमाने एवं सुगरा देने की परम्परा मनाई जाती है (तिवारी, 1995)।

रसनवा

वन देवता का नया रस अर्पित करने का यह पर्व मनाया जाता है यह पर्व प्रति नौ वर्ष के अन्तराल में मनाने का प्रचलन है। जंगल में अपने आप पैदा होने वाली मोहती और अनेड़ा नाम की लगभग 5-5 फुट लम्बी झाड़ियाँ पाई जाती हैं, जिनमें नौ वर्ष में फूल एवं फल आते हैं। मधुपर्व के रूप में मनाये जाने वाले इस पर्व में बाँस में पकी कुटकी और शहद मोहती और अमेड़ा की झाड़ियों को चढ़ाया जाता है। जंगली जानवरों से रक्षा के लिए देवता को प्रसन्न करने यह त्यौहार मनाया जाता है। शक्ति प्राप्त करने एवं रोग व्याधि से मुक्ति के लिए रसनवा मनाने की परम्परा है (तिवारी, 1997)।

बैगा निवासी का एक विशेष क्षेत्र गढ़ के रूप में एक वन-आश्रित पीवीटीजी से सम्बन्धित क्षेत्र है, गढ़ अक्सर आरक्षित वनों में होते हैं, गढ़ों की पूजा एक जीवित परम्परा है। गढ़ पवित्र स्थान हैं (गाँव, पेड़, चट्टानें, या गुफाएँ) जो पारम्परिक गाँव या वन सीमाओं से बहुत आगे तक फैली हो सकती हैं एवं देवताओं, पवित्र पौधों और कुलदेवता पशु प्रजातियों के साथ जुड़ा हुआ है जो उनके विशेष कुलों द्वारा संरक्षित स्थान है।

बैगा आदिवासी में जीवों के प्रति दया एवं प्रकृतिक सम्पदा का संरक्षण

बैगा जनजातियों के जीवन में पशु-पक्षियों का विशेष महत्त्व रहा है, जंगल के नजदीक जनजीवन इनकी मौखिक कथाओं में विद्यमान है, साथ ही कलाकृतियों में रहन-सहन साथ दिखता पड़ता है। बैगा जनजाति आखेटक प्रवृत्ति की जनजाति है, किन्तु अनावश्यक शिकार नहीं करती केवल भोजन के लिये सीमित शिकार करना इनकी विशेषता है। इनका सामाजिक एवं धार्मिक चिह्न तीर कमान है। ये वैवाहिक संस्कार में धनुष बाण का उपयोग बरा छेद कर रस्म करते हैं। शिकार पर जाने से पहले ये मसवासी देव की पूजा करते हैं, जो कि शिकार के देवता माने जाते हैं वह इनके धनुष बाण पर निवास करते हैं सत्ति भवानी देवी बाण में निवास करती है, जिनसे ये जनजाति शेर, भालू, मधुमक्खी, सापों से रक्षा करने का आह्वान करती है। बरछी, भाला विभिन्न प्रकार के फन्दों का प्रयोग कर खरगोश, तीतर, जंगली सुअर, मुर्गी, चीतल, साभर, जंगली भैंसे, हिरण आदि का शिकार करते हैं, इन उपकरणों के माध्यम से भोजन हेतु आवश्यकता से अधिक शिकार नहीं करते हैं। ये जनजाति व्यवसाय के रूप में जीवों का शिकार नहीं करती है। साथ ही मछली को भोजन के रूप में प्रकृति से प्राप्त करते हैं। समुदाय में छोटी मछली के मारने पर दण्ड का प्रावधान किया जाता है, साथ ही प्राप्त शिकार को बराबर भागों में विभाजित किया जाता है। जीवों के प्रति इनका विशेष लगाव होता है ये अपने घरों में साथ में रखते हैं। बैगा जनजाति का प्रमुख व्यवसाय पशुपालन, कृषि, वनोपज संकलन करना

है। वर्तमान में वनों पर बाह्य हस्तक्षेप होने से इनकी आजीविका पर संकट दिखाई पड़ रहा है और कृषि एवं वनोपज संग्रहण के स्थान पर मजदूरी की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

इन जनजातियों में वनस्पतियों को संरक्षण का विशेष पारम्परिक ज्ञान होता है, रतनजोत (जेट्रोफा) के तेल से प्रकाश की व्यववस्थ की जाती रही है एवं अनाज के बीजों का रखरखाव मिट्टी के बड़े बर्तनों में किया जाता रहा है, मक्का के बीजों को रसोईघरों में लटका कर रखते हैं जिससे उसे नमी और कीटाणु से सुरक्षित रखा जा सके। सूक्ष्म बीजों को लकड़ी एवं कंडे की राख में लपेट कर पोटली बना कर टाँग दिया जाता है। देशी बीजों को संरक्षित कर कई वर्षों तक तकनीकी ज्ञान से सुरक्षित रखा जाता है।

बैगा आदिवासी में सामाजिक व पारम्परिक लोकगीतों में जीवों पर दया व प्रकृति संरक्षण

बैगाओं का पारम्परिक नृत्य सैला, सुआ झरपत, रीना, सुवा, सैला, बिल्मा, भदौनी जो कि सामूहिक रूप से गाते हैं। बैगा जनजाति सामाजिक एकता के रूप में करमा नृत्य का आयोजन करती है जिसका उदेश्य मनोरंजन के साथ सम्पूर्ण शारीरिक व्यायाम हो जाता है।

बैगा जनजाति मध्यप्रदेश के अस्तित्व में आने के पूर्व सेन्ट्रल प्रोविन्स के समीप रीवा राज्य में निवासरत रही है जो बघेलखण्ड अर्थात् विन्ध्य क्षेत्र में पाई जाती है। बघेली में बैगानी भाषा की झलक लोक गीत में दिखाई देती है (गौतम, 2002)।

बैगा जनजाति द्वारा ददरिया एवं फाग गीत, धान के खेत महुआ और अन्य वनोपज को जंगल में संग्रहण के समय गाया जाता है। बैगा लोग गायन और नृत्य करना पसन्द करते हैं, इसलिए उनके पास गीतों का पर्याप्त संग्रह है। जंगल में और सुन्दर प्राकृतिक परिवेश होने के कारण, वे हमेशा हर्षित और लय से भरे रहते हैं। बैगा जनजाति की लोक कथाओं में प्रकृति एवं जीवों का उल्लेख मिलता है, जनजातियों में विशेष रूप से पशु पक्षियों की मौखिक कथाएँ प्रचलित हैं। जनजातियों में प्रकृति एवं जीवों के संरक्षण के प्रति उनकी भावनाएँ और संवेदनाएँ, उनके लोकगीतों में स्पष्ट दिखाई देती है। जिसमें चिड़िया और बन्दर का उल्लेख है मनुष्य के जैसे हाथ-पाँव रखते हुए बन्दर पावस काल में भीगता रहता है, और अपने लिए पानी से सुरक्षा के लिए कुछ नहीं कर पाता, वहीं दूसरी ओर चिड़िया पावस के लगते ही पेड़ों पर तिनके-तिनके जुटा कर, हवामहल का निर्माण घोंसले के रूप में कर डालती है।

पावस में पेड़ पर बैठा हुआ भीगता बन्दर उछल-कूद मचाते हुए बया नामक चिड़िया के घोंसले को तहस-नहस कर देता है, नन्ही चिड़िया, दीर्घायु वाले बन्दर का कुछ नहीं कर पाती। दुखी मन से चिड़िया अपना आवासीय नीड़ (घोंसले) के टूटने पर अपना गुस्सा व्यंग्य ईश्वर आदिवासियों के परम्परागत लोकगीत में यह दृश्य को दर्शाया गया है -

मोर बनें खोथाइला उजारे, बन्दरवा तैं ना मरे दऊ मारे।-2
चुंन चुंन तिनका खोंथदईला बनायेन, काहे नोंच तैं डारे।।
काहे नोंच तैं डारे, बन्दरवा तैं, ना मरे दहिजारे। - 2
तैं ना मरे दहिजारे, बन्दरवा, तैं ना मरे दऊ मारे।। - 2

इसी प्रकार वन जीवों पर दया के भाव आदिवासी लोकगीतों में दिखाई पड़ता है,
बिरसीबाई बैगा
उम्र 60 वर्ष
निवास सरहाकोना, अनूपपुर (म.प्र.)

बैगा आदिवासी का परम्परा गीत

हरिअर दुबिला, चरै गाय,
चराई मा, होइ गइसे देर।
आगू तो अहिरा, पांछु मा गाय,
हरिअर दुबिला चरै गाय।
चराई मा हाई गइसे देर।

इस आदिवासी लोकगीत में, गाय और चरवाहे का चित्रण है, गाय वन में चरती है शाम को देर होने का कारण है कि, गाय हरी हरी दूब चरने में लगी रहती है और अहीर गाय के आगे रहता है और गाय पीछे चरते हुए चलती है। अहीर द्वारा गाय को पीछे से हाका नहीं गया इसलिए चराई अर्थात लौटने का समय देर हो जाती है।

निष्कर्ष

बैगा जनजाति के जनजीवन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आज भी पारम्परिक ज्ञान के साथ प्रकृति द्वारा भेंट की गई उपहार को अपने अनुकूल समुचित दोहन करती है तथा प्राकृतिक जीवों को अपना मित्र एवं सहयोग पोषी मानती है। इस प्रकार के सामाजिक अनुसन्धान की गुणात्मक अनुसन्धान पद्धति में तथ्यों का अध्ययन से ज्ञात होता है कि बैगा जनजाति अत्यंत सरल स्वभाव से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना जानती है तथा उनकी जीवनशैली से प्रकृतिक संतुलन में बाधा नहीं आई। आधुनिकता के दौर में इन जनजाति की संस्कृति में आधुनिकता का समावेश हो रहा है। मानव आवश्यतकताओं की पूर्ति के लिए वनों का लगातार दोहन किये जाने से वन्य जीवों एवं जनजातीय समुदाय पर बुरा प्रभाव दिखाई दे रहा है। वन संसाधनों को बनाए रखने के लिए प्रकृति के संरक्षण की अति आवश्यकता है। बैगा जनजाति में प्रकृति की सुरक्षा के लिए इनके गोत्र चिह्न लोकगीत एवं धार्मिक क्रिया कलाप प्रेरकतत्व हैं, जिनकी सहायता से वनों को सुरक्षित रखने का भाव प्रकट होता है, पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जनजातीय समुदाय के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव समुदाय में प्रकृति सुरक्षित रखने का भाव होने चाहिए।

सन्दर्भ सूची

एल्विन, वैरियर (1939) : *द बैगा,* जान मुर्रय अलबेमार्ले स्ट्रीट, डब्लु लन्दन, पृ. 1
चौरसिया, विजय कुमार (2004) : *प्रकृति पुत्र बैगा,* म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल.

फोरसिथ, कैप्टिन, जे. (1872) : *द हालैण्ड आफ सेन्ट्रल इण्डिया,* चोपमैन एण्ड हाल, लन्दन, पृ. 23.

गौतम, के. राजेश (2002) : *द हंटर गैदरर्स आफ सेन्ट्रल इण्डिया,* रीडवर्थी, ISBN 35018107X, पृ. 27.

मजूमदार, डी.एन. (1949) : *द रेसियल बेसिस आफ इण्यियन सोशल स्ट्रर्कचर इस्ट्र्न ऐन्थ्रोपोलाजिस्ट,* 2(3),

मध्य प्रदेश की अनुसूचित जनजाति जनसंख्या (2011) : आदिम जाति अनुसन्धान एवं विकास संस्थान, मध्य प्रदेश शासन, भोपाल, पृ. 266.

रसेल, आर.वी. एण्ड हीरालाल (1916) : *एण्ड कास्ट्स आफ सेन्ट्रल प्रोविन्स आफ इण्डिया,* वाल्यूम दो, लन्दन, पृ. 79.

स्टेटिस्टिकल प्रोफाइल आफ शीड्यूल्ड ट्राइब्स (2013) : जनजाति मंत्रालय का सांख्यिकी विभाग, भारत सरकार, पृ. 143.

तिवारी, एस., (1997) : *बैगा आफ सेन्ट्रल इण्डिया,* अनमोल प्रकाशन प्रायवेट लिमिटेड, न्यू देहली.

तिवारी, एस. (1995) : *मध्य भारत की जनजातियों की स्थिति एवं विकास,* अनमोल प्रकाशन प्रायवेट लिमिटेड, न्यू देहली. वाल्यूम 21, पृ. 173.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 115-123)
UGC-CARE (Group-I)

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जनजातीय भाषाओं की दशा और दिशा

मनोहर भी. येरकलवार*

भाषाएँ मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। किसी भी मानव समुदाय की पहचान उसकी भाषा, जीवनशैली और संस्कृति से होती है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है, जो मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ जोड़ती है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा और संस्कृति नष्ट होने से मानव समाज का अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। भाषा के खत्म होने के साथ ही सदियों से फल-फूल रही सम्पूर्ण संस्कृति और भाषा से जुड़े लोगों की सोच, हजारों वर्षों से संजोया ज्ञान, उनका दर्शन, मान्यताएँ और उनका विश्वास भी खत्म हो जाता है जिसकी भरपाई करना असम्भव है। आज की स्थिति ऐसी हो गई है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया में दुनिया के सैकड़ों बोलियाँ और भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं और कई भाषाएँ, तथा बोलियाँ लुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। अगर उसे सही समय पर संरक्षित नहीं किया गया तो मानव के प्राचीन ज्ञान का भंडार नष्ट हो जाएगा।

बीज शब्द : जनजातीय भाषा, वैश्वीकरण, जनजातीय समाज, आस्ट्रिक भाषा, द्रविड़ भाषा।

---

*सह-आचार्य, समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.) **E-mail: manoharigntu@gmail.com**

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जनजातीय भाषाओं की दशा और दिशा

प्रस्तावना

वैश्वीकरण एक बहु-आयामी प्रक्रिया है जिसका प्रभाव आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और तकनीकी पर दिखाई देता है। वैश्वीकरण का आशय सम्पूर्ण विश्व का परस्पर सहयोग एवं समन्वय से विश्व कुटुम्बकम् की संकल्पना साकार होती है। इससे सम्पूर्ण विश्व में बाजारी शक्तियाँ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगती हैं और परिणामस्वरूप वस्तुओं की कीमत सभी देशों में लगभग एक समान हो जाती है। जिस माध्यम से सभी देशों के लोग एक दूसरे से वस्तु का लेनदेन करते समय अपनी भाषा का भी लेनदेन करते हैं। इस माध्यम से विश्व की एक भाषा अंग्रेजी बनते जा रही है। इस प्रकार वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व के बाजारों का एकीकरण होता है। अत: कहा जाता है कि वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सभी व्यापारियों का अन्तरराष्ट्रीयकरण हो जाता है, जिसके माध्यम से विश्व के सभी देशों के लोगों में भाषा और विचारों का लेनदेन होता है। वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व बाजार का एकीकरण होता है। संचार क्रान्ति में भी परिवर्तन होता है। इस तरह से कई सारी घटनाओं में परिवर्तन होता है। वैश्वीकरण के माध्यम से निजीकरण, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त एवं व्यापारी संस्थाओं का विकासशील देशों पर प्रभाव, नारी शोषण, स्थानिक भाषाओं का ह्रास और बेरोजगारी, इस तरह से कई सारी समस्याओं का निर्माण होता है।

वैश्वीकरण के माध्यम से मानव जीवन के समस्त क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन आया है, जिससे शासन व्यवस्था, दूरसंचार व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य और तकनीकी क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है और मानव जीवन सरल और सुविधायुक्त बना है। वहीं दूसरी तरफ वैश्वीकरण का विकासशील और अविकसित राष्ट्रों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता हुआ दिखता है। इसके चलते रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और भाषा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एवं गुणवत्ता में गिरावट देखने को मिलती है।

भारत विविधता में एकता वाला देश है। यहाँ अनेक जाति, धर्म, वंश, पन्थ, प्रान्त, भाषा और वेशभूषा होते हुए भी विविधता में एकता दिखाई देती है। यही भारत की आन, बान, शान और सभी का सम्मान है। संविधान में सभी को समानता दी गई है। भारत में 730 से अधिक जनजातियाँ और उनकी कई उपजातियाँ निवासरत हैं। जनजातियों की एक अलग पहचान अर्थात् भाषा होती है। इनकी भाषाओं पर विचार करते हुए यह तथ्य अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि भाषाएँ मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, इसीलिए मानव के विकास की गाथा, पारम्परिक ज्ञान बोली भाषा के माध्यम से हजारों सालों से निरन्तर चलती आ रही है। किसी भी मानव समुदाय की पहचान उसकी भाषा, जीवनशैली और संस्कृति से होती है। आज की स्थिति ऐसी हो गई है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया में दुनिया की सैकड़ों बोलियाँ-भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं और कई भाषाएँ और बोलियाँ लुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। अगर उसे सही समय पर नहीं बचाया गया तो आने वाले समय में मानव के प्राचीन ज्ञान का भंडार नष्ट हो जाएगा। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ जोड़ता है। मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाने में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भाषा के बिना किसी समाज की संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति की सबसे बड़ी, सबसे प्रभावी और शक्तिशाली वाहिका भाषा ही होती है। भाषा में ही संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण उपादान, उसकी चिन्तन-आध्यात्मिक-ज्ञान-साहित्य-शास्त्रीय-लोक सम्पदा निर्मित, संचारित और प्रवाहित होती है। भारत में आदिवासियों की अस्मिता और अस्तित्व पर संकट तो सदियों से ही आ रहा है। लेकिन अब तो उनके अस्तित्व पर ही खतरा मँडरा रहा है। आदिवासी किसान है और खेती करते-करते खेती से सम्बन्धित अन्य व्यवसाय को अपनाकर अपना जीवन यापन करते हैं। जमीन और जंगल के बिना आदिवासी की पहचान ही नहीं हो सकती। आदिवासियों का मतलब ही यह है, उनका जंगल, जमीन उनकी बोली-भाषा और उनकी संस्कृति, उनकी जीवनशैली तथा उनका शारीरिक गठन यह उनकी पहचान है। पिछले कई सालों से आदिवासियों की पहचान भाषा और संस्कृति धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। भाषा और संस्कृति नष्ट हो जाती है तो आदिवासियों का अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। भाषा के खत्म होने के साथ ही सदियों से फल-फूल रही सम्पूर्ण संस्कृति और भाषा से जुड़े लोगों की सोच, हजारों वर्षों से संजोया ज्ञान, उनका दर्शन, मान्यताएँ और उनका विश्वास भी खत्म हो जाता है। जिसकी भरपाई करना असम्भव है। एक कहावत है कि किसी को खत्म करना हो तो उसकी भाषा, बोली को नष्ट कर दो। आज के काल में यही होता हुआ नजर आ रहा है। कई सारे आदिवासियों की बोली भाषाओं पर ना कोई अनुसन्धान होता है। ना कोई उनकी बोली भाषा को शिक्षा में लाया जाता है। आज के काल में तो अंग्रेजी के माध्यम से हर गाँव शहर में अंग्रेजी भाषा का प्रचार और प्रसार हो रहा है। जिस माध्यम से आदिवासियों के शिक्षित बच्चे भी अंग्रेजी भाषा की तरफ झुकते जा रहे हैं। जिससे धीरे-धीरे आदिवासियों की भाषा लुप्त होती जा रही हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जनजातीय भाषाओं की स्थिति को जानना तथा जनजातीय भाषाओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है।

जनजातीय भाषाओं का उद्गम

भाषा एक ऐसा माध्यम है, जो प्राणी या मानव को अपने विचारों और अपने जीवन की अनुभूतियों को दूसरों पर प्रकट करने तथा वार्तालाप करने में मददगार होती है। भाषा एक प्रवाहमान नदी के समान होती है। उसकी संस्कृति, ऊर्जा सदैव प्रेरणा का स्रोत बनी रहती है। बिना भाषा के समाज एवं साहित्य का निर्माण सम्भव नहीं हो सकता। और नहीं भाषा के बिना समाज की पहचान बनती है। प्रत्येक समाज की अपनी भाषा होती है। समाज और संस्कृति की पहचान भाषा से ही होती है। भाषा मानसिक क्रिया का फल होता है। विचार भाषा का प्राण एवं आत्मा है। भाषा का अर्थ ही विचारों को व्यक्त करना है। इसके अभाव में भाषा के विचार और व्यवहार लंगड़े बन कर रह जाते हैं। भाषा धर्म का अभिन्न अंग होता है। बिना भाषा के अपने हृदय की बात अपनों को कह नहीं सकते।

पर्यावरण पर निर्भरता के कारण समय के साथ मिला ज्ञान धरती की विभिन्न भाषाओं में संजोया गया है। इस तरह भाषा, संस्कृति और पर्यावरण की कड़ियाँ एक-दूसरे से

जुड़ी हैं। भाषा मानव सभ्यता की सर्वोत्तम उपलब्धि है। बिना भाषा के समाज का निर्माण सम्भव नहीं है। भारत की संस्कृति भाषा का अमूल्य धन है। जिसके द्वारा विचारों का आदान प्रदान किया जाता है। चिन्तन, मनन भाषा के द्वारा ही होता है। बिना भाषा के मानव के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जो भाषा हृदय से निकलती है, उस भाषा को मातृभाषा कहते हैं। जिसका अपना लोक साहित्य होता है। साहित्य समाज का दर्पण है। जिसमें समाज के लोगों का दर्शन होता है। लोकसाहित्य और लोक गीतों के अनुसार "गोंडवाना के योग सिद्ध महायोगी शम्भूशेक जो तन्दरी विद्या के महाज्ञानी थे। जो पूकराल जगत के ज्योतिष भी थे। उनके प्रिय वाद्य डमरू के नांद से ही गोंडी भाषा की उत्पत्ति हुई। योगीराज शम्भूशेक जिसके वाद्ययन्त्र से गोंडी शब्द निकले, उसे ही गोंडी भाषा में गोयदांडी कहते हैं। उसी गोयदांडी बजने की आवाज के स्वरों को सुनकर पहचानकर गोंडी धर्मगुरु पुनेम मुठवा पहांदी कुपाड लिंगो ने डमरू के लेंग से स्वयं व्यंजनों का निर्माण किया। और गोयदांडी वाणी को उपचारित कर भाषा का रूप दिया। सबसे पहले कुवाड़ लिंगों को बारह स्वरों का ज्ञान प्राप्त हुआ था" (ताराम 2010)। इस तरह से आदिवासियों के भाषाओं के उद्गम का इतिहास रहा है।

मानव समाज के विकास में भाषा या सांकेतिक भाषा का एक विशिष्ट महत्व रहा है। आज दुनिया एक कुटुम्ब के करीब पहुंच रही है, वह भाषा की ही देन है। किसी भी समाज का अध्ययन करने के लिए उस समाज की भाषा का ज्ञान होना बहुत जरूरी है। भाषा हमारे विचारों को दूसरों तक पहुंचाने का माध्यम है। जनजातियों की विभिन्न प्रकार की बोलियाँ हैं। आम तौर पर, जनजातियों में 205 बोलियाँ और 225 उप-बोलियाँ होती हैं। कई जनजातियों की भाषा की कोई लिपि ही नहीं है, क्योंकि जब आदिवासी लोग अपना व्यवसाय करते हैं, तो उनके पास उनके प्रतीकात्मक संकेत होते हैं, जिसके अनुसार उस जनजाति के लोग बचपन से ही अपनी भाषा सीख सकते थे। लेकिन अधिकांश जनजातियाँ अशिक्षित होने के कारण झुग्गी-झोपड़ियों और पहाड़ी क्षेत्रों में रहने के कारण अपनी भाषा को लिखित रूप में नहीं लिख सकती थीं। उन्होंने कभी इसकी आवश्यकता महसूस नहीं की। वे अक्सर भोजन की तलाश में जंगल और पहाड़ियों में घूमते रहते थे, इसलिए वे कभी भी अपनी भाषा को लिपिबद्ध नहीं कर पाए। लेकिन प्राय: सभी जनजातियों की बोली अलग-अलग होती है।

भारत में अंग्रेजों के आने से पहले किसी भी आदिवासी भाषा के पास अपनी कोई लिपि नहीं थी। "पहली बार किसी आदिवासी ने सन्ताली भाषा की लिपि को निर्मित किया। यह लिपि झारखंड के आदिवासियों को पंडित रघुनाथ मुरमू की एक देन है" (गुप्ता 2015)। इसके बाद ईसाई मिशनरियों ने कुछ आदिवासी क्षेत्रों की बोलियों का अध्ययन किया और उस भाषा के लिए रोमन लिपि का इस्तेमाल किया। भारत की स्वतन्त्रता के बाद, सरकार ने जनजाति के विकास के उद्देश्य से आदिवासी क्षेत्र में स्कूल और कॉलेज खोले। उस आदिवासी क्षेत्र के लोगों ने उस बोली का अध्ययन किया और उन्हें अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से शिक्षा देने की कोशिश की और इसलिए आदिवासियों की बोलियों को तीन भाषा समूहों में वर्गीकृत किया गया।

1. चीन-तिब्बती भाषा समूह

भारत के उत्तर-पूर्वी भागों में रहने वाले चीन-तिब्बती लोगों के सम्पर्क और प्रभाव के कारण उस क्षेत्र में रहने वाली जनजातियाँ चीन-तिब्बती भाषा समूह में विभाजित है। इस भाषा समूह में हिमाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी लोगों की बोलियाँ नागा, मिज़ो, कुकी, कोन्याक, मणिपुरी, तांगखुल, खासी, दफ़ला, बोडो, लेपचा, निकोर, अबोर, लुशाई आदि शामिल हैं।

2. आस्ट्रिक भाषा समूह

इस भाषा समूह में पूर्वी भारत के पश्चिम बंगाल, झारखंड, ओड़ीसा, बिहार और छतीसगढ़ के आदिवासियों की बोलियाँ शामिल हैं। इसमें सन्थाली, खड़िया, सावरा मुंडारी, हो, भूमिज, गारो, खासी, कोरकू, गढ़वा आदि जनजातियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाएँ इस समूह के अन्तर्गत आती हैं।

3. द्रविड़ भाषा समूह

इस भाषा समूह में दक्षिण और मध्य भारत की आदिवासी बोलियाँ शामिल हैं। इस भाषा को बोलने वाले आदिवासी मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश आदि राज्यों में रहते हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी गोंडी, कुडुख, कुई, कोड़गु, ओरांव, माल्तो, तोडा, मालेर, सावर, कोया, पानियन, चेंचू, इरूला, कादर आदि भाषाएँ शामिल हैं।

इस प्रकार भारत के आदिवासीऐसी भाषाएँ बोलते हैं जो चीन-तिब्बत, आस्ट्रिक और द्रविड़ भाषा समूहों के अन्तर्गत आती हैं। जब से आदिवासियों ने शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के अन्य लोगों के साथ बातचीत करना शुरू किया, वे अन्य समाज की भाषाओं की नकल करने लगे। इस कारण कई आदिवासी एक से अधिक भाषाएँ बोल सकते थे। उदाहरणार्थ महाराष्ट्र में रहने वाले गोंड, कोरकू, भील आदिवासी एक से अधिक भाषा बोलते हैं। एक अपनी भाषा बोलता है, दूसरा मराठी या हिंदी। जनजातीय लोगों के अन्य लोगों के साथ निरन्तर सम्पर्क के कारण, उनकी भाषा आदिवासी भाषा को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के विदर्भ में रहने वाली गोंडी जनजाति की बोली में हिन्दी के शब्द बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। इस तरह से उनके अपनी मूल भाषा में धीरे-धीरे परिवर्तन होता हुआ नजर आ रहा है।

जनजातीय भाषाओं की दशा

पूरे विश्‍व में भारत एक ऐसा विशाल लोकतन्त्र वाला देश है। जहां पर संविधान के कारण वहाँ की जनता ही सर्वोपरि है। इस तरह से कई सारी जनजातियाँ आज भी भारत के घने जंगल में निवासरत हैं। उनकी प्रथा, परम्पराएँ, रीती रिवाज, भाषा अलग-अलग है। इसी तरह से भारत में आठ करोड आबादी जनजातियों की है, जिसमें 705 जनजातियाँ और कई सारे उप जातियाँ शामिल है। भारतीय लोकतन्त्र को चलाने के लिए भारत के सभी लोगों का सहभाग होना अनिवार्य है। आज आज़ादी के 75 सालों के बाद भी भारत में ऐसा जनजातीय समूह जो

जंगलों में रहते हुए अपनी प्रथा, परम्परा और बोली भाषा से सम्पन्न है और वे दूसरों की भाषा तक नहीं जानते हैं, तो भारत के लोकतन्त्र में किस तरह से उनका सहभाग दर्ज करें। उनकी सहभागिता बढ़ाने के लिए उनकी भाषा का विकास होना और भाषा को साहित्य में लिखना और लिपिबद्द करना बहुत जरूरी है। अंग्रेज शासनकर्ता इसमें माहिर थे। वे जिस क्षेत्र में जाते थे। वहाँ के आदिवासीयों की बोली का परिचय पाने के लिए वे साहित्य सम्बन्धी एक व्याकरण तैयार करते थे और आदिवासी बोली का गहन अध्ययन कर के आदिवासी के प्रथा, परम्परा को लिखित दस्तावेज बनाते थे। इस तरह से उनका आदिवासी भाषा को संरक्षित करने में बहुत बड़ा योगदान था। आदिवासियों का वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया गया अपना कोई इतिहास नहीं है। उनके विचार और भावनाएँ उनके लोकगीतों, किंवदन्तियों और परम्पराओं में प्रतिबिंबित होते हैं। यह लोकगीत और परम्पराएँ आधुनिकता की शक्तियों के प्रभाव से धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। फिर भी जनजातियों के पास बहुत कुछ साहित्य है, जिसका ऐतिहासिक महत्व आज भी उतना ही है। भाषा को बोली के माध्यम से उपयोग करने की प्रक्रिया में कुछ भाषाएँ विकास कर रही है, तो कुछ भाषाएँ लगातार खत्म होती जा रही है।

भाषा एक ऐसा माध्यम है जो परम्परागत ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, पर्यावरणीय अनुभव, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास को जीवित और गतिमान बनाये रखती है। युनेस्को ने संसार की लुप्तप्राय भाषाओं की सूची में 2464 भाषाओं को सम्मिलित किया है। इन भाषाओं को बोलने वालों के आधार पर चार अलग-अलग श्रेणियों में रखा गया है। 1. लुप्तप्राय, 2. निश्चित रूप से लुप्त, 3. असुरक्षित, और 4. गम्भीर रूप से लुप्त। "इन सूची में भारत की 197 भाषाओं को भी सम्मिलित किया गया है। जिसमें से 5 भाषाएँ लुप्त हो चुकी है। जिसमें दो मणिपुर, दो उत्तराखंड और एक आसाम की भाषा है (सिंह 2022)। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 2000 तक विश्व में लगभग 7000 भाषाएँ थीं, जिनमें से लगभग 2500 भाषाएँ संकटापन्न थीं। ऐसा आशंका है कि, सन् 2050 तक लगभग 90 प्रतिशत भाषाएँ लुप्त हो जाएँगी। भारत में 1961 की जनगणना में 1652 भाषाएँ दर्ज हुई थीं। लेकिन जब 1971 की जनगणना में 10 हजार से कम लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को दर्ज न करने का नियम बना तो उस गणना में देश में केवल 108 भाषाएँ ही दर्ज पाईं है। वर्ष 2011 की जनगणना में 10 हजार से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली 121 भाषाएँ ही दर्ज हुई है, जिनमें से 22 भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची के अन्तर्गत दर्ज है, जिनका प्रयोग 96.71 प्रतिशत आबादी करती है।" संवैधानिक दृष्टि से देश की मात्र 22 भाषाओं को ही मान्यता प्राप्त है और संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल 22 भाषाओं में से सिर्फ दो ही आदिवासी भाषाएँ हैं - सन्ताली और बोड़ो। आदिवासी क्षेत्रों में उनके भाषा-साहित्य पर हमले किये गये हैं। सत्ता और ताकत के बल पर ऐसी परिस्थियाँ निर्मित की गई कि आदिवासी समाज अपनी भाषाओं से विमुख हो जाए। "26 जनवरी 2010 को अंडमान द्वीप समूह की 85 वर्षीय बोआ के निधन के साथ ग्रेट अंडमानी भाषा 'बो' हमेशा के लिए विलुप्त हो गई है। इसी तरह नवम्बर 2009 में भी एक और महिला बोरो की मौत के साथ 'खोरा' भाषा का अस्तित्व

भी समाप्त हो गया था।" जेरू भाषा को बोलने वाले भी केवल तीन लोग ही बचे हैं। इनमें दो पुरुष और एक महिला है। इन सभी लोगों की उम्र 50 साल से अधिक और ये विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त हैं। जनगणना के आंकड़ों के आधार पर देखा जाए तो यह पता चलता है कि, इन भाषाओं को बोलने वाले लोगों की संख्या जनसंख्या की तुलना में निरन्तर कम होती जा रही हैं। अल्प आबादी वाली जनजातियों द्वारा बहुसंख्यक समुदाय की बोलियों को सम्पर्क भाषा के रूप में व्यवहार में लाया जा रहा है। जिसके कारण उनकी अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं। इसके अलावा शिक्षा का माध्यम हिंदी और अंग्रेजी होने के कारण भी विद्यार्थी अपनी मातृभाषा का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। इस तरह के कई कारणों से जनजातीय भाषा दिन-ब-दिन लुप्त होती जा रही है। यूनेस्को के आंकड़ों के अनुसार विश्वभर में आज लगभग छह हजार भाषाएँ बोली जाती है। इनके अतिरिक्त भी न जाने कितनी बोलियाँ, कितनी भाषाएँ बोली जाती होंगी। इसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। यह सभी भाषाएँ अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम से अपनी विशिष्टता और संस्कृति को सदियों से प्रचार और प्रसार कर रही हैं।

आधुनिक काल में औद्योगिकरण, नागरीकरण, संस्कृतिकरण, वैश्वीकरण, तकनीकी शिक्षा के बढ़ते प्रभावों के कारण भारत के जनजातियों की अनेक भाषाएँ लुप्त होती जा रही है। "भारतवर्ष में 1652 मातृभाषाओं का प्रचलन है। जिन्हें 826 भाषाओं के अन्तर्गत लाया जा सकता है। इन भाषाओं में 103 अभारतीय भाषाएँ भी सम्मिलित है" (लवानिया 2011)। आदिवासियों की विशेषताएँ यह है कि, प्रत्येक आदिवासी समुदाय की बोली भाषा अलग होती है। उनकी भाषा के आधार पर ही उन्हें पहचाना जाता है। अन्य उन्नत भाषाओं और सभ्यताओं, संस्कृतियों के सघन सम्पर्क के कारण ही आदिवासी समुदाय के भाषा के स्वरूप में बदलाव आ रहा है। बाबा साहब अम्बेडकर ने भी आदिवासी समस्याओं पर सबका ध्यान आकर्षित किया था और संविधान में इनके संरक्षण के लिए आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है। इसके बाद धीरे-धीरे स्वतन्त्र आदिवासी संगठनों की शुरुआत हुई। यह आन्दोलन जयपाल सिंह मुंडा, राम दयाल मुंडा, सुशीला सामद, एलिस एक्का, रोज केरकेट्टा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, अनुज लुगुन, गंगा सहाय मीणा, ज्योति लकड़ा, जमुना बीनी, नजुबाई गावित, मोती रावण कंगाली, विनायक तुमराम, वाहरू सोनवणे, उषाकिरण अत्राम, भुजंग मेश्राम व लक्ष्मण गायकवाड़ के नेतृत्व में चला जिसने कई आदिवासी साहित्यकार पैदा हुये और उन्होने आदिवासी भाषा का संवर्धन करने के लिए आदिवासी भाषा में साहित्य निर्मिति करने का महान कार्य किया है। इस तरह से आदिवासी भाषाओं का संवर्धन करने का कार्य इन साहित्यकारो द्वारा कुछ अंश में हो रहा है। जिससे आदिवासी भाषाओं का कुछ अंश तो साहित्य के माध्यम से आनेवाली पीढ़ी को रास्ता दिखाने का कार्य करेगा।

जनजातीय भाषाओं की दिशा

विकास के प्रवाह में चलते हुए भाषा की परिवर्तनशीलता एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसे चाह कर भी रोका नहीं जा सकता। भारत का भाषायी सर्वेक्षण प्रकाशित करने वाले

गणेश देवी मानते हैं कि, जैसी भाषा बोलने वाली दुनिया में युवाओं के ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। न्यूरोलॉजिस्ट और संज्ञात्मक विज्ञान द्वारा यह वैज्ञानिक रूप से स्थापित हो चुका है। अगर दुनिया में चुनिंदा भाषाएँ ही बचेंगी तो उस दुनिया की आबादी बदरंग हो जाएगी। अस्तित्व की चुनौती से जूझने की क्षमता का भी पतन होगा। शायद यही वजह है कि, अब दुनिया को भाषाओं में छुपे ज्ञान का महत्व पता चल रहा है और भाषाओं को पुनर्जीवित करने की कोशिशें तेजी से हो रही हैं। अभी देखा जाये तो देश के 30 से 40 प्रतिशत बच्चे अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़ने जा रहे हैं। वहाँ भले ही अधूरी या मिश्रित अंग्रेजी में पढ़ाई की जाती हो और खुद शिक्षकों को भी ठीक से आती हो या नहीं, यह भी एक अनुसन्धान का विषय है। जो बच्चा बचपन से एक बार अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा लेता है वह कभी अपने परिवार और परिवेश की, विरासत की भाषा को नहीं अपनाएगा। उसमें अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम, लगाव, अपने भाषा के प्रति गर्व की जगह एक हेय भाव और नापसंदगी पैदा होती जाती है। जो आयु के साथ बढ़ती ही जाती है। धिरे-धिरे अपनी मातृभाषा को भूल जाते है। इन बच्चों की जो पीढ़ियाँ अधिकाधिक अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर बड़ी होंगी तो वे क्या अपनी भाषाई अखबारों, साहित्य, पुस्तकों, टीवी समाचारों की पाठक- दर्शक होंगे? कदापि नहीं क्योंकि उन्हें अपनी मातृभाषा का क और च का पता नहीं होगा और उन्हें अपनी भाषा के प्रति अपनापन भी नहीं होगा। इस तरह से आने वाले दिनों में आदिवासी भाषा का पुनर्जीवन कदापि सम्भव नहीं होगा।

अभी से अगर जनजातियों की लुप्तप्राय भाषा की ओर सही तरह से ध्यान नहीं दिया जाए तो बाद में अफसोस करके कोई मतलब नहीं होगा। आज आदिवासी लोगो में से कितने शिक्षक, पटवारी, डॉक्टर, इंजीनीयर, तहसीलदार, आईएएस, आईपीएस, अधिकारियों के बच्चे अपने घर में अपनी भाषा बोलते है? या पढ़ते हैं? इसलिए आज यह जो आदिवासी भाषाएँ लुप्त होती दिख रही है इसमे कही न कही इन लोगों की भी गलती है। जिसके चलते आज हर जगह ऊपर से नीचे तक अंग्रेजी का ही वर्चस्व हर क्षेत्र में दिखाई दे रहा है। इस तरह से आने वाले दिनों में अपनी भाषा, संस्कृति केवल गीत-संगीत, किवदन्तियों, फिल्में में ही बची रहेंगी। हालांकि इनमें भी आधी से ज्यादा अंग्रेजी और हिन्दी भाषा प्रवेश कर चुकी होगी। आज के समय में बनने वाली हिंदी फिल्मों में आधी से ज्यादा के शीर्षक अब अंग्रेजी भाषा के होते जा रहे हैं। संसार में लगभग 6000 भाषाओं के होने का अनुमान है। भाषा शास्त्रियों की भविष्यवाणी है कि 21वीं सदी के अन्त तक इनमें केवल 200 भाषाएँ जीवित बचेंगी। लुप्त होने वाली भाषाओं में भारत की सैकड़ों भाषाएँ होंगी। पर भारत के बुद्धिजीवी वर्ग तथा सामान्य जन को इन आदिवासी भाषाओं की तो क्या अपनी मातृभाषाओं की भी चिन्ता नहीं है और उनके संकट को देखने, समझने, बचाने में कोई रुचि नहीं ले रहे है। अपने देश के पास आज़ादी के 75 साल के बाद भी अपनी कोई भाषा नीति नहीं है, न ही उसको बनाने का कोई गम्भीर प्रयास किया जा रहा है। अब भी समय नहीं गया है अगर सरकार द्वारा भाषा संवर्धन की कोई योजना नहीं बनाई गई तो अपनी इस अमूल्य और आधारभूत सांस्कृतिक संप्रभुता से दो-तीन पीढ़ियों में ही वंचित

होकर हम पश्चिम, मुख्यत: अमेरिका, ब्रिटेन, इटली, स्पेन चाइना जैसे पाश्चात्य देशों के सांस्कृतिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक उपनिवेश बन जाएँगे।

निष्कर्ष

भाषा मनुष्य की श्रेष्ठतम सम्पदा है। सारी मानवीय सभ्यताएँ भाषा के माध्यम से ही विकसित हुई हैं। आदिम समाज तो हो सकते हैं लेकिन आदिम भाषाएँ नहीं होतीं। बाहरी शक्तियों द्वारा जनजातियों की छोटी और निरन्तर सिमटती जा रही दुनिया पर सतत प्रहार किया जा रहा है। और उनके प्रतिरोध को पूर्णत: समाप्त कर देने की साजिश रची जा रही है। यह शक्तियाँ अभी भी अन्य रूप से अपने इस काम में लगी हुई है। कहा जाता है कि, जिस समाज का इतिहास नहीं होता उस समाज की पहचान मिट जाती है। आदिवासियों के इतिहास साहित्य, संस्कृति, परम्पराओं, बोली भाषाओं की दुर्गति किसी से छिपी हुई नहीं है। परन्तु आज इस वैश्विक परिप्रेक्ष्य में जनजातीय इतिहास के पुनर्लेखन की सख्त आवश्यकता महसूस होती है। क्योंकि इन वास्तविक घटनाओं, तथ्यों, विचारों को इतिहास में जगह नहीं दी गई है। उन्हें फिर से समुचित स्थान प्रदान करके गरिमा प्रदान करें तब जाकर आदिवासियों का सही इतिहास सामने आएगा। आदिवासी समुदाय की पीछे की ओर देखने की आदत होने के कारण पुरातन मुल्यों की पुनर्स्थापना के उनके प्रयत्न और उनको अलग-अलग तथा यथास्थिति में रखने की ब्रिटिश सरकार की पुरानी नीति को बदलना होगा और आज की तेजी के साथ बदलती गतिशील दुनिया में प्रवेश करना होगा और उन्हे मुख्य राष्ट्रीय जीवन धारा में स्वेछा से आना होगा। साथ ही इस बात का भी ख्याल रखना है कि, उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता और बहुविधता, उनका सौंदर्य और उनकी कला, संस्कृति, भाषा को बचाया जाए तथा उन्हें अपनी प्रकृति के अनुसार फलने, फूलने दिया जाए। तभी जाकर यह सम्भव हो पाएगा। जनजातियों ने अपनी अज्ञानता या उपयुक्त शिक्षा के अभाव में उन परिवर्तनों को ठीक से ना समझ पाए है। जिनके कारण उनका परम्परागत जीवन अस्तव्यस्त हो गया है। भाषाओं के संरक्षण के महत्व को हाल ही में बनी नई शिक्षा नीति 2020 में स्वीकार किया गया है। प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा मातृभाषा में देने की वकालत भी की गई है। भाषाविद् मानते हैं कि, अगर इस नीति का ठीक से अमल किया जाए, तो स्थितियों में सुधार आने में देर नहीं लगेगी। मातृभाषा में मिला ज्ञान उन्नति के द्वार खोल सकता है।

सन्दर्भ

गुप्ता, रमणिका (2015) *आदिवासी अस्मिता का संकट*, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 121

लवानिया, एम.एम. जैन, शशि (2011), *भारतीय सामाजिक संस्थाएँ*, विद्याभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 20

सिंह, दिलीप (2022) *बैगा जीवन चित्र*, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक, पृ. 1

ताराम, सुन्हेरसिंह (2010) *अभिनन्दन ग्रन्थ गोंडवाना रजत महोत्सव*, गोंडवाना गोंडी साहित्य परिषद् एवं अखिल भारतीय गोंड महासभा छत्तीसगढ़, रायपुर, पृ. 48।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 124-134)
UGC-CARE (Group-I)

दुर्ग-भिलाई शहरी क्षेत्र में बाँस से निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करने वाली महिलाओं की आय का अध्ययन

वन्दना धुर्वे* एवं चन्द्रिका नाथवानी†

प्रस्तुत शोधपत्र दुर्ग जिले के दुर्ग विकासखण्ड अन्तर्गत दुर्ग-भिलाई ट्विनसिटी में बाँस से निर्मित वस्तुओं के उत्पादन में संलग्न महिलाओं के व्यवसाय एवं आय स्तर के अध्ययन पर आधारित है। प्रस्तुत शोध में भारतीय बाँस शिल्पकला के माध्यम से प्राप्त आय के आधार पर उनकी आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के विश्लेषण में यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि अध्ययन क्षेत्र में बाँस आधारित वस्तुओं के निर्माण करने वाले उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तथा पूर्व की अपेक्षा इनके व्यवसाय पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। सर्वप्रथम वस्तुओं के निर्माण हेतु कच्चे माल की कमी होने से परिवार के अधिकांश सदस्य अन्य कार्यों में संलग्न होते जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर बाजार में बाँस की वस्तुओं की अपेक्षा कृत्रिम तन्तुओं के प्रयोग से निर्मित वस्तुओं का सस्ते दर पर उपलब्ध होने से वस्तुओं की बाजार माँग में भी कमी आयी है। माँग में कमी होने से इनका व्यवसाय एवं आय का

---

*शोधार्थी (अर्थशास्त्र), शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगाँव (छ.ग.)
E-mail: vandanadhurve112@gmail.com
†शोध-निर्देशक (सेवानिवृत्त प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग), शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगाँव (छ.ग.)

स्तर प्रभावित हो रहा है। इनकी आर्थिक स्थिति भी कमजोर होती जा रही है, जिसके कारण जीवन-यापन हेतु अन्य कार्यों पर आश्रित रहना पड़ रहा है।

बीज शब्द : बाँस शिल्पकला, महिलाओं के आय की स्थिति, आर्थिक स्तर, बाँस आधारित कुटीर उद्योग।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही बाँस मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा है। इससे दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली विभिन्न वस्तुओं के निर्माण से लाखों लोगों के लिए रोजगार एवं आजीविका का साधन बना हुआ है। भारत सरकार ने अप्रैल 2018 में पुनर्गठित राष्ट्रीय बाँस विभाग को स्वीकृति दी है। बाँस क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के लिए पौधा लगाने की सामग्री से लेकर बागवानी, संग्रह सुविधा कायम करने, समेकन, प्रसंस्करण, विपणन, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों इत्यादि में ध्यान केन्द्रित किया गया है। बाँस एक ऐसी वनस्पति है जिससे लगभग 1500 खाद्य पदार्थों का निर्माण एवं बाँस की लकड़ी के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाता है, साथ ही भवन निर्माण सामग्री, हस्तशिल्प की वस्तुएँ, कच्चा माल, लुगदी एवं कागज निर्माण इत्यादि में बाँस की उपयोगिता एवं भूमिका महत्वपूर्ण है। "राष्ट्रीय स्तर में बाँस का वार्षिक उत्पादन करीब 32.3 करोड़ टन है। भारत का बाँस उगाने में दूसरा स्थान है। देश के 1.4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में बाँस की 136 प्रजातियों की पैदावार होती है। भारत का बाँस से बने उत्पादों का निर्यात वर्ष 2015-16 में 0.11 करोड़ रुपये और 2016-17 में 0.32 करोड़ रुपये था। बाँस उत्पादन के क्षेत्र के विस्तार की व्यापक सम्भावनाएँ हैं।" "बाँस की 50 प्रतिशत से अधिक प्रजातियाँ पूर्वी भारत में पायी जाती है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल और मिजोरम शामिल है। इस क्षेत्र में बाँस से निर्मित वस्तुओं से मछली पकड़ने का जाल, मर्तबान, गुलदस्ते और टोकरियाँ बनाने की उत्कृष्ट सांस्कृतिक परम्परा रही है। भौगोलिक क्षेत्रफल की तुलना में मिजोरम में बाँस के सबसे बड़े जंगल हैं" (कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2018-19)। राष्ट्रीय स्तर में तेजी से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन से कच्चे माल के रूप में बाँस का महत्व न केवल कुटीर उद्योगों में वृद्धि हुई है अपितु बाँस आधारित लगभग 25000 उद्योग से 2 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान कर रहा है, जिसमें 20 लाख लोग सीधे तौर पर बाँस पर आधारित दस्तकारी में संलग्न है। "देश के विभिन्न क्षेत्रों में बाँस की खपत से संकेत मिलते हैं कि 24 प्रतिशत बाँस का उपयोग ढाँचा खड़ा करने वाली सामग्री के रूप में होता है जबकि 20 प्रतिशत बाँस का उपयोग लुगदी और कागज उद्योग में, 19 प्रतिशत हस्तशिल्प एवं 15 प्रतिशत अन्य विविध रूपों में प्रयोग किया जा रहा है" (लहरी 2019)। "बाँस आधारित अर्थव्यवस्था के उन्नयन की आवश्यकता को रेखांकित किया जा सकता है। इसके लिए बाँस के विकास को ग्रामीण आर्थिक विकास, गरीबी कम करने, बाँस आधारित हस्तशिल्पों और औद्योगिक विकास के कार्यों में नीतिगत भूमिका सौंपी गयी है" (राष्ट्रीय बाँस प्रौद्योगिकी और

व्यापार विकास मिशन रिपोर्ट, 2003)। बाँस एक वाणिज्यिक खेती के साथ-साथ कुटीर उद्योग के माध्यम से आजीविका का साधन बना हुआ है।

छत्तीसगढ़ में बाँस शिल्प

छत्तीसगढ़ में भी बाँस शिल्प का विशेष महत्व है। राज्य में दैनिक जीवन एवं सांस्कृतिक कार्यों में बाँस से निर्मित वस्तुओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। राज्य में बाँस से बनी प्रमुख वस्तुएँ निम्न हैं, यथा - विभिन्न आकारों की टोकरियाँ, झावां (झऊँवा/झऊँहा), गप्पा, खुमरी/मूड़ा/खोमरी, छोटे-बड़े आकार के सूप या सूपा, चाप (महुआ के फल सूखाने में प्रयोग होने वाला), बिजबोनी, झाली, ठालांगी, ठूठी, पर्रा, बिजना, हांथ-खाड़ा, पाय मांडा, चूरकी, छतौड़ी, झाल/झरनी, झांपी, थापा, बिसड़ एवं धीर, चोरिया (शंक्वाकार उपकरण-मछली पकड़ने के लिए), इत्यादि वस्तुओं का निर्माण किया जाता है।

प्राचीन समय से बाँस से निर्मित वस्तुएँ घरों में शोभायमान होती रही हैं। दैनिक जीवन में लोग घर बनाने एवं सजाने में बाँस का उपयोग करते रहे हैं। आजकल बाजारों में बाँस से बनी हुई वस्तुएँ कम मिलती हैं। वस्तुओं के निर्माण में लागत एवं मेहनत इतना अधिक लगता है जिससे इसकी कीमत अधिक हो जाती है, बाजार में उपलब्ध कृत्रिम तन्तुओं अथवा प्लास्टिक से निर्मित सस्ती वैकल्पिक सामग्रियों की उपलब्धता से इसकी माँग में कमी देखने को मिलती है। बाँस से निर्मित वस्तुओं की कीमत अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण आमजन इसे खरीद नहीं पाते हैं। बाँस ग्रामीण कला एवं संस्कृति का परिचायक है, बाँस से कलात्मक वस्तुएँ बनाने में ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिलाएँ विशेषज्ञ होती हैं या दूसरे शब्दों में महिलाओं को इस कार्य में महारत हासिल है। वर्तमान में प्लास्टिक ने बाँस का स्थान ले लिया है और बड़े उद्योगों में निर्मित होने के कारण बाँस की वस्तुओं से कम कीमत पर उपलब्ध हो रहा है, जिससे बाँस से निर्मित वस्तुओं का निर्माण करने वाले कुटीर उद्योग में कार्यरत महिलाओं के व्यवसाय एवं आर्थिक स्थिति कमजोर होती जा रही है। हालांकि छत्तीसगढ़ सरकार ने गरियाबन्द जिले में छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड ने "बाँस कुटीर उद्योग में कार्यरत लोगों को प्रशिक्षित किया, जिससे ये लोग बाँस के सोफासेट, फाइल रेक, चेयर, डायनिंग सेट, कॉर्नर रेक, स्टूल, फ्लॉवर पॉट, चूड़ी हैंगर, लेटर-बॉक्स, गुलदस्ता, इत्यादि वस्तुएँ बनाकर बाजार में अच्छे दामों में बेचकर मुनाफा कमा रहे हैं" (छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड रिपोर्ट, अक्टूबर, 2022)।

दुर्ग जिले में बाँस शिल्प

दुर्ग जिले में बाँस शिल्प अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध हैं। जिले में बहुतायत लोग इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। कई परिवारों में तो पूर्वजों के समय से बाँस शिल्प कला हस्तान्तरित होते आ रही है। जून 2022 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार "जिले में कुल 3250 कार्डधारी है जिन्हें बाँस आधारित कार्यों से जीवन-यापन एवं वस्तु निर्माण के लिए कच्चे माल

के रूप में 1500 बाँस प्रति परिवार देने के प्रावधान हैं" (सिंह, 2022)। लेकिन वर्तमान में नये कार्ड बनना बन्द हो गया है और बाँस संकट के चलते ये परिवार जीवकोपार्जन की समस्या से जूझ रहे है और बाँस कार्य नहीं होने की स्थिति में अन्यत्र कार्य करने को मजबूर हैं।

शोध उद्देश्य

बाँस से निर्मित वस्तुओं के निर्माण में कच्चे माल की उपलब्धता एवं विक्रय हेतु बाजार की उपलब्धता को ज्ञात करना। बाँस से निर्मित वस्तुओं के निर्माण करने वाली महिलाओं के आय का स्तर का अध्ययन करना। बाँस कुटीर उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में बाँस से निर्मित वस्तुओं के निर्माण में संलग्न महिलाओं से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों के आधार पर शोधार्थी द्वारा दुर्ग जिले के दुर्ग-भिलाई ट्विन सिटी में बाँस कुटीर उद्योग में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र वर्णानात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रचना के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। प्राथमिक समंकों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन प्रविधि तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ एवं इंटरनेट की सहायता से द्वितीयक समंकों का संकलन किया गया है।

औद्योगिक विकास, सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक विविधता के लिए 'लघु भारत' के रूप में जाना जाने वाला भिलाई, दुर्ग का जुड़वाँ शहर है, जो दुर्ग-भिलाई ट्विन सिटी के रूप में जाना जाता है। जहाँ लगभग 100 से अधिक प्रकार के वस्तुओं के निर्माण में संलग्न कुटीर उद्योग हजारों की संख्या में हैं लेकिन पंजीकृत नहीं होने के कारण इनकी संख्या केवल अनुमानित है। दोनों ही शहरों में बाँस आधारित कार्य अर्थात् बाँस से वस्तुओं के निर्माण में संलग्न कुटीर उद्योग एवं उनमें कार्यरत महिलाओं की संख्या का सही-सही अनुमान लगाना बहुत ही कठिन कार्य है, लेकिन इस कार्य को करने वाले परिवार दुर्ग शहर के नयापारा एवं भिलाई शहर के सुपेला-पावर हॉउस शहरी क्षेत्र में समूह में निवास करते हैं, जहाँ इनके परिवारों की संख्या 100 से भी अधिक है। इसके अतिरिक्त छिटपुट संख्या में अन्यत्र बिखरे हुए भी निवासरत हैं। बाँस से निर्मित विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करने वाले परिवारों में महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श के चयन हेतु दुर्ग जिले एवं विकासखण्ड में अवस्थित दुर्ग-भिलाई ट्विन सिटी में बाँस से आधारित वस्तुओं का निर्माण एवं विक्रय कर जीवन यापन करने वाले बाँस कुटीर उद्योग में कार्यरत महिलाओं में आय की स्थिति ज्ञात करने के लिए दैव निदर्शन के उद्देश्यपूर्ण प्रविधि के तहत दोनों (नयापारा एवं सुपेला-पॉवर हॉउस) समूहों से कुल 60 परिवारों से 60 महिलाओं का चयन किया गया है।

साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त प्राथमिक आंकड़ों का विश्लेषण अग्र तालिकाओं के माध्यम से किया गया है -

कच्चे माल की उपलब्ध कराने वाले स्रोत

अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाता प्रमुख रूप से वर्ष भर बाँस आधारित वस्तुओं का निर्माण करते हैं, जिसके लिए कच्चे माल की आपूर्ति भिन्न-भिन्न स्रोतों से करते है, जिसमें शासकीय बाँस डिपो, ठेकेदार अथवा व्यापारियों, निजी बाँस टाल से प्राप्त करता है जिसमें (भारतीय वन सर्वेक्षण रिपोर्ट, भारत सरकार, 2017) बाँस की कीमत में बहुत अन्तर है। शासकीय डिपो से जो बाँस 100-120 रुपये में मिल जाता है वहीं निजी बाँस टाल अथवा व्यापारियों के पास उसकी कीमत दोगुना हो जाता है जिससे लागत अधिक आती है और उत्तरदाताओं को लाभ कम मिलता है। वहीं ठेकेदारों से बाँस खरीदने अथवा कच्चा माल उपलब्ध कराए जाने पर वस्तुओं की कीमत कम प्राप्त होती है। 100-120 रुपये में बिकने वाला सुपा का महज 60-70 रुपये ही प्राप्त होता है और 50 से अधिक रुपये में बिकने योग्य टोकनी के लिए केवल 20 रुपये ही प्राप्त हो रहा है।

तालिका 1

कच्चे माल की उपलब्धता

उपलब्धता	संख्या	प्रतिशत
शासकीय डिपो	32	53.3
ठेकेदारों/व्यापारियों	18	30.0
निजी बाँस टाल	10	16.7
योग	60	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा।

तालिका 1 बाँस से निर्मित वस्तुएँ बनाने के लिए कच्चे माल की उपलब्धता की स्थिति को दर्शाती है, जिसमें सर्वाधिक 32 उत्तरदाताओं को कच्चे माल के रूप में बाँस शासकीय बाँस डिपो से प्राप्त होता है जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 53.3 प्रतिशत है तथा निजी बाँस टाल से कच्चे माल खरीदने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 10 है जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 16.7 प्रतिशत है, जबकि ठेकेदारों/व्यापारियों/ बिचौलियों इत्यादि से बाँस खरीदने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 18 है जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 30.0 प्रतिशत है।

बाँस से निर्मित विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन

बाँस से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती है, जिसके उत्पादन की गणना हेतु प्रस्तुत सूची में उसे एक विशेष कोड प्रदान कर अध्ययन किया गया है, यथा - सुपा, टोकरी/

टोकना/पर्रा (परात के आकार अथवा उससे बड़ा छिछला पात्र), झाड़ू तथा अन्य सहायक वस्तुएँ (छोटे-छोटे टोकरी, सुपा, पंखा, कैण्डी/कुल्फी इत्यादि में प्रयुक्त होने वाले लकड़ी इत्यादि)।

तालिका 2
उत्तरदाताओं द्वारा बाँस से निर्मित वस्तुओं की स्थिति

वस्तु कोड	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	10	16.7
1+2	6	10.0
1+3	4	6.7
1+4	3	5.0
2	8	13.3
2+3	7	11.7
2+4	5	8.3
3	6	10.0
3+4	3	5.0
4	-	-
1+2+3+4	8	13.3
योग	60	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा।
वस्तु कोड : 1. सुपा, 2. टोकरी/टोकना/पर्रा, 3. झाड़ू, 4. अन्य सहायक वस्तुएँ

तालिका 2 न्यादर्श उत्तरदाताओं द्वारा उत्पादित की जाने वस्तु एवं वस्तुओं के निर्माण में संलग्न उत्तरदाताओं की संख्या को दर्शाता है। न्यादर्श उत्तरदाताओं में सर्वाधिक रूप से एकल सामग्री बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 24 है जबकि एक से अधिक वस्तुओं के निर्माण करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 36 है, जिसमें से केवल सुपा बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 10 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 16.7 प्रतिशत है। विभिन्न आकार के टोकरी/टोकना/पर्रा बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 8 है जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या 13.3 प्रतिशत है। केवल झाड़ू बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 6 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 10.0 प्रतिशत है।

एक से अधिक वस्तुओं का निर्माण करने वाले उत्तरदाताओं में से सुपा एवं टोकरी बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 6 है जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 10.0 प्रतिशत है। सुपा एवं झाड़ू बनाने वाले उत्तरदाताओं की कुल संख्या 4 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 6.7 प्रतिशत है। टोकरी एवं झाड़ू बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 7 है जो कि कुल न्यादर्श उत्तरदाताओं की संख्या का 11.7 प्रतिशत है। टोकरी एवं अन्य सहायक सामग्री बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 5 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं के कुल संख्या का 8.3 प्रतिशत है। झाड़ू एवं अन्य सहायक सामग्री निर्माण करने वाले

उत्तरदाताओं की संख्या 3 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 5.3 प्रतिशत है। उक्त सभी प्रकार के वस्तुओं के निर्माण में संलग्न उत्तरदाताओं की संख्या 8 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं के कुल संख्या का 13.3 प्रतिशत है। केवल अन्य सहायक सामग्री बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या निरंक है।

बाँस से मुख्य उत्पादों के साथ-साथ अन्य सहायक उत्पादों का निर्माण के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं ने स्पष्ट किया है कि सुपा, झाड़ू एवं टोकरी बनाने वाले बारीक टुकड़ों से विभिन्न रीति-रिवाजों में प्रयुक्त होने वाले छोटी टोकरी एवं सुपा, हाथ से चलाने वाला पंखा इत्यादि, आईसक्रीम एवं कुल्फी/कैण्डी में प्रयुक्त होने वाले लकड़ी का निर्माण किया जाता है।

वस्तुओं का प्रतिमाह औसत उत्पादन

वस्तुओं के औसत उत्पादन से आशय किसी वस्तु विशेष के निर्माण में संलग्न व्यक्तियों की निश्चित संख्या द्वारा कुल उत्पादित वस्तुओं की संख्या से है। जिसे सामान्यत: कुल उत्पादित वस्तुओं को उसी वस्तु के निर्माण में संलग्न व्यक्तियों की संख्या से भाग देकर निकाला जाता है। अध्ययन क्षेत्र के उत्तरदाताओं द्वारा निर्मित वस्तुओं की संख्या ज्ञात करने के लिए औसत उत्पादन ज्ञात किया गया है, जो अग्र तालिका में वर्णित है।

तालिका 3

उत्तरदाताओं द्वारा वस्तुओं का प्रतिमाह औसत उत्पादन

वस्तु कोड	उत्तरदाताओं की संख्या	वस्तुओं की संख्या
1	10	286
1+2	6	250
1+3	4	300
1+4	3	135
2	8	360
2+3	7	180
2+4	5	270
3	6	800
3+4	3	210
4	-	-
1+2+3+4	8	375
योग	60	

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा।

वस्तु कोड : 1. सुपा, 2. टोकरी/टोकना/पर्रा, 3. झाड़ू, 4. अन्य सहायक वस्तुएँ

तालिका 3 न्यादर्श उत्तरदाताओं द्वारा उत्पादित की जाने वस्तुओं के प्रतिमाह औसत उत्पादन की स्थिति को दर्शाता है। न्यादर्श उत्तरदाताओं में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्रतिमाह

औसत उत्पादन करने वाले उत्तरदाताओं संख्या भिन्न-भिन्न है। 10 उत्तरदाता प्रतिमाह औसतन 286 नग सुपा बनाते हैं। 360 नग टोकरी/टोकना/पर्रा इत्यादि 8 उत्तरदाता बनाते हैं। केवल झाड़ू बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 6 है जो कि प्रतिमाह औसतन 800 नग बाँस की झाड़ू बनाते हैं।

छह उत्तरदाताओं द्वारा प्रतिमाह औसतन 250 नग सुपा एवं टोकरी/टोकना/पर्रा बना रहे, 300 नग सुपा एवं झाड़ू बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 4 है। 135 नग सुपा सहित अन्य सहायक सामग्री बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या केवल 3 है। प्रति माह औसतन 180 नग टोकरी एवं झाड़ू बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 7 है। 270 नग टोकरी सहित अन्य सहायक सामग्री बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 5 है। 210 नग झाड़ू सहित अन्य सहायक सामग्री प्रतिमाह औसत उत्पादन करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 3 है। उक्त सभी प्रकार की वस्तुएँ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में 375 नग सुपा, टोकरी/टोकना/पर्रा सहित अन्य सहायक सामग्री बनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 8 है।

इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के न्यादर्श उत्तरदाताओं द्वारा मुख्य वस्तुओं के निर्माण के साथ-साथ गौण वस्तुएँ भी प्रतिमाह औसतन उत्पादित किया जाता है जो कि मौसम, तीज-त्यौहार, वस्तुओं के माँग पर निर्भर करता है। जिसमें कुल्फी अथवा कैण्डी में प्रयुक्त लकड़ी, छोटे आकार के सुपा एवं टोकरी, पंखा इत्यादि।

उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से प्राप्त आय

किसी भी वस्तु के विक्रय से प्राप्त राशि आय की श्रेणी में रखा जाता है। विक्रय से पूर्व प्राचीन काल में विनिमय का प्रचलन था जिसमें आय का स्वरूप अन्य वस्तु के रूप में प्राप्त होता था, लेकिन वर्तमान में मुद्रा से यह प्रथा लगभग समाप्त हो गया है। अध्ययन क्षेत्र के न्यादर्श उत्तरदाताओं से उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की औसत प्रति इकाई विक्रय मूल्य को ज्ञात कर अग्र तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 4

उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से प्राप्त आय

वस्तु	विक्रय मूल्य (प्रति इकाई/रुपये में)
सुपा	80
टोकरी/टोकना/पर्रा	65
झाड़ू	20
अन्य सहायक सामग्री	35

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा।

तालिका 4 उत्तरदाताओं द्वारा उत्पादित विभिन्न वस्तुओं के प्रति इकाई विक्रय मूल्य की स्थिति को प्रदर्शित करता है। जिसमें सुपा प्रति इकाई 80 रुपये है। सामान्य

टोकरी/टोकना/पर्रा इत्यादि का औसत मूल्य 65 रुपये प्रति इकाई है। प्रति नग झाड़ू से औसतन विक्रय मूल्य 20 रूपए प्राप्त होता है। अन्य सहायक सामग्रियों का विक्रय मूल्य स्थायी नहीं है। यह प्रति इकाई के बदले प्रति 100 अथवा 1000 नग के हिसाब से विक्रय होता है जो लगभग 35 रुपये है।

उत्पादित वस्तुओं के विक्रय का माध्यम

बाँस आधारित विभिन्न प्रकार के वस्तुओं के उत्पादन के पश्चात् उसके विक्रय हेतु उपयुक्त बाजार के नहीं होने से उत्तरदाताओं को उनके उत्पादों का उचित दाम नहीं मिल पाता है और जिससे वे इन वस्तुओं को कम दामों पर बेचने को मजबूर हैं। वस्तुओं को विभिन्न माध्यमों से विक्रय के स्रोतों के सन्दर्भ में तथ्यों को संकलित कर विश्लेषण अग्र तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 5

उत्पादित वस्तुओं के विक्रय का माध्यम

विक्रय का माध्यम (बाजार की उपलब्धता)	संख्या	प्रतिशत
व्यक्तिगत रूप से (घर से)	11	18.3
मध्यस्थों द्वारा	18	30.0
घर-घर जाकर (फेरी)	7	11.7
स्थानीय बाजार में	24	40.0
योग	60	100

स्रोत : साक्षात्कार अनुसूची द्वारा।

तालिका 5 से स्पष्ट है कि बाँस से निर्मित वस्तुओं के विक्रय हेतु उपलब्ध बाजार अथवा विक्रय के माध्यम की स्थिति को दर्शाता है। न्यादर्श उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 24 उत्तरदाता स्थानीय बाजार में जाकर उत्पादित वस्तुओं का विक्रय करते हैं जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 40.0 प्रतिशत है। मध्यस्थों की सहायता से वस्तुओं की बिक्री की जानकारी देने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 18 है जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 30.0 प्रतिशत है। 11 उत्तरदाता व्यक्तिगत तौर पर घर से बस्ती एवं मोहल्ले के लोगों में बिक्री करते हैं जो न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 18.3 प्रतिशत है। घर-घर जाकर अथवा फेरी लगाकर वस्तुओं की बिक्री करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 7 है जो कि न्यादर्श उत्तरदाताओं की कुल संख्या का 11.7 है।

समस्याएँ

कच्चे माल आसानी से उपलब्ध नहीं हो रहा है। उत्पादित वस्तुओं के विक्रय हेतु उपयुक्त बाजार का अभाव है तथा इन्हें स्वयं जा कर विक्रय करना पड़ता है। बाजार में कृत्रिम

तन्तुओं से निर्मित सस्ते उत्पादों के कारण इन्हें अपने वस्तुओं का उचित दाम नहीं मिल पा रहा है जिससे पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो रहा है। बाँस आधारित कुटीर उद्योग में संलग्न उद्यमियों के लिए उपयुक्त शासकीय योजनाओं की कमी है तथा जो भी योजनाएँ संचालित है उसका लाभ इन उद्यमियों को नही मिल रहा है।

सुझाव

बाँस कुटीर उद्योग के सफल संचालन हेतु कच्चे माल का उद्यमियों तक पहुंच सरल बनाने की आवश्यकता है जिससे उन्हें लागत कम एवं लाभ अधिक प्राप्त हो। उत्पादित वस्तुओं के विक्रय हेतु उपयुक्त बाजार की व्यवस्था करने की आवश्यकता है। वर्तमान में छत्तीसगढ़ शासन द्वारा 'सी मार्ट' के द्वारा स्थानीय कुटीर उद्योगों से निर्मित वस्तुओं के विक्रय हेतु किया गया प्रयास सराहनीय है, किन्तु इसकी संख्या बहतु कम है। जिससे हर उपभोक्ता तक इसका लाभ पहुंच नहीं हो पायी है। सी-मार्ट या बाजार की सुविधा उपलब्ध करवायी जाए, साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में निर्मित वस्तुओं के विक्रय हेतु इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए। कृत्रिम तन्तुओं एवं प्लास्टिक से निर्मित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा अधिक होने एवं लागत अधिक होने के कारण जनसामान्य द्वारा बाँस से निर्मित वस्तुओं के प्रति रूझान कम है, जिसे लोगों में जागरूकता एवं वस्तुओं को कम कीमत पर उपलब्ध कराने हेतु इन वस्तुओं पर सब्सिडी देकर बाँस उद्यमियों को वास्तविक मूल्य दिये जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है बाँस से निर्मित वस्तुओं को बनाने वाली महिलाओं की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। माह भर कार्य करने के बाद औसतन मात्र 2000 से 2200 रुपये ही प्राप्त हो पाता है, जिससे उनके परिवार का पालन पोषण बहुत ही मुश्किल से हो पाता है। अधिकांश उत्तरदाता अपने परिवार के मुखिया है और स्थायी रूप से कार्य करने वाले एक मात्र मजदूर है। अन्य सदस्य विभिन्न कारणों से नियमित रूप से कार्य नहीं कर पाते हैं, मजदूर वर्ग का दुर्व्यसनों में लिप्त होना भी इसका मुख्य कारण है। वे परिवार की जिम्मेदारी नहीं उठा पाते हैं, ऐसे में महिलाओं को ही आगे आना पड़ता है। अपने जिम्मेदारियों का प्रत्यक्ष प्रमाण दुर्ग-भिलाई ट्विनसिटी के बाँस कुटीर उद्योग में संलग्न महिलाएँ दे रही हैं। बाँस उद्योग का बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाना एवं उद्यमियों को वस्तुओं के निर्माण में लागत अधिक होने से लाभ कम हो रहा है। उत्पादित वस्तुओं के विक्रय करने स्वयं बाजार में जाना पड़ता है और वहाँ भी अन्य प्रतिस्पर्धी उत्पादों के मुकाबले उचित कीमत नहीं मिल पाती है। महिलाओं में जागरूकता नहीं होने से उन्हें शासकीय योजनाओं का उचित लाभ नहीं मिल पाता है। इनके व्यवसाय एवं आर्थिक स्थिति दिनों-दिन निम्न होती चली जा रही है। अत: इन्हें मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने की अति आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. भारतीय वन सर्वेक्षण रिपोर्ट, भारत सरकार, 2017.
2. छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड रिपोर्ट, अक्टूबर, 2022.
3. कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2018-19.
4. लहरी, एस.सी, (2019) 'बाँस उद्योग-ग्रामीण आजीविका का स्रोत' इंडिया वाटर पोर्टल, दिसम्बर 2019. https://hindi.indiawaterportal.org/articles/baansa-udayaoga-geramania-ajaivaika-ka-saraota.
5. राष्ट्रीय बाँस प्रौद्योगिकी और व्यापार विकास मिशन रिपोर्ट, 2003.
6. सिंह, शिव (2022) 'छत्तीसगढ़ में बाँस का संकट : कभी बाँस ने सँवारी जिंदगी लेकिन अब 18000 लोगों के लिए परिवार चलाना मुश्किल', *दैनिक पत्रिका,* 16 जून 2022, https://www.patrika.com/bhilai-news/bamboo-crisis-in-chhattisgarh-bamboo-once-saved-life-but-now-it-is-d-7596258/

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 135-147)
UGC-CARE (Group-I)

अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन

शिव नन्दन सिंह*, नीतू पटेल† एवं गौरव राव‡

आधुनिक डिजिटल युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित चेट-जीपीटी का उपयोग विद्यार्थी अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी एवं सक्रिय बनाने हेतु कर रहे हैं। चेट जीपीटी का उपयोग करके विद्यार्थी विषय वस्तु से संबंधित अधिगम सामग्री, शोध पत्र, लेख, दत्त कार्य से सम्बन्धित सामग्री, कवितायें, कहानियां तथा पाठ्य वस्तु से सम्बन्धित अन्य प्रश्नों के उत्तर त्वरित रूप से वास्तविक समय में प्राप्त करके सीखने की दर को बढ़ा रहे हैं। चेट जीपीटी का उपयोग प्रभावी रूप से तभी किया जा सकता है जब विद्यार्थियों में इसके प्रति सही जानकारी हो क्योंकि यह मंच निर्देशन की प्रक्रिया पर कार्य करता है। विद्यार्थियों को इसके उपयोग की जानकारी उनके अध्यापकों द्वारा प्रदान की जा सकती है और यह तभी संभव है जब अध्यापकों में चेट जीपीटी के प्रति सही जानकारी और सकारात्मक दृष्टिकोण हो। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना था। अध्ययन हेतु जनसँख्या के रूप में लखीमपुर जनपद के तहसील गोला मे शहरी क्षेत्र में स्थित उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सत्र 2023-24 में कार्यरत अध्यापकों को चुना गया तथा अध्ययन

*शोधार्थी, शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली (उ.प्र.)
E-mail: shivnandan.singh1991@gmail.com
†सहायक अध्यापिका (कॉन्ट्रैक्चुअल), केंद्रीय विद्यालय 2 जे.एल.ए., बरेली (उ.प्र.)
‡सह आचार्य, शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली (उ.प्र.)

हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्रित किये गये आंकड़ों का विश्लेषण प्रतिशतता के माध्यम से किया गया जिसके आधार पर निष्कर्ष निकला कि अध्यापकों में चेट जीपीटी के प्रति दृष्टिकोण सामान्य रूप से सकारात्मक था। अधिकतर अध्यापकों में चेट जीपीटी के उपयोग से अधिगम को प्रभावी, रुचिकर तथा सीखने के लिए अभिप्रेरित करने हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण जबकी विद्यार्थियों मे इसके उपयोग से नकल की प्रवृत्ति, आलस, नैतिक मूल्यों का पतन, विषय वस्तु की वैधता, तथा गुणवत्ता की कमी आदि के कारण अधिकतर अध्यापकों का दृष्टिकोण नकारात्मक था।

बीज शब्द : बॉँ चेट जीपीटी, दृष्टिकोण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा अधिगम।

प्रस्तावना

तकनीकी विकास ने शिक्षा के स्वरूप को बदल दिया है। प्राचीन समय में जहाँ शिक्षा गुरुजनों द्वारा आश्रमों में प्रदान की जाती थी। शिक्षा का एकमात्र रूप औपचारिक ही था जहाँ शिष्यों को शिक्षा गुरुजनों के पास आश्रम में रहकर ही ग्रहण करनी होती थी। जबकि आधुनिक युग में आइसीटी जैसे डिजिटल संसाधनों के विकास के कारण औपचारिक शिक्षा के साथ अनौचारिक एवं निरौपचारिक रूप भी ज्ञान प्राप्ति के साधन बन गये जिसके फलस्वरूप शिक्षा विद्यार्थियों को बिना विद्यालय परिसर जाए ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से डिजिटल रूप में प्रदान की जाने लगी। शिक्षा को प्रदान करने के डिजिटल रूप मे कई माध्यम थे लेकिन इन पर उपस्थित लिखित, श्रव्य, दृश्य, तथा चित्र के रूप में उपलब्ध शिक्षण अधिगम समग्री को विषय विशेषज्ञों द्वारा ही बनाया जाता था। आज के डिजिटल युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी युक्ति आधारित खोजों ने शिक्षण एवं अधिगम को और अधिक प्रभावी बना दिया है। इस पर आधारित चेट जीपीटी ने विद्यार्थियों के लिए शिक्षण अधिगम में नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

शिक्षा मे कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कार्यान्वयन का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, इसके द्वारा शैक्षिक प्रक्रियाओं में सुधार, अधिगम हेतु वैश्विक स्तर की पाठ्यवस्तु तथा अधिक उपयोगी अधिगम सामग्री का निर्माण संभव हो पाया है। नयी प्रौद्योगिकियों का विकास शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। शिक्षा केवल उत्पाद तक ही सीमित नहीं रही है बल्कि यह एक प्रक्रिया बन गयी है जिसमें अधिगम ज्ञान के सामान्य सीखने मात्र से आगे है। वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की नयी खोज चेट-जीपीटी शिक्षा के क्षेत्र में नई तकनीकी के रूप में उभरा है जो विद्यार्थियों की रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप ढलकर शिक्षा को बढ़ावा दे रहा है। चेट जीपीटी कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा विकसित किया गया चेट वॉट आधारित एक बड़ा भाषा मॉडल है जिसे मुक्त कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा 30 नवम्बर 2022 को लॉन्च किया गया (यू 2023)। इसे मुक्त कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा प्रशिक्षित किया गया है जो संरक्षित डाटा बेस के आधार पर उपयोगकर्ताओं से मानव भाषा में ही संवाद करने की क्षमता रखता है और व्यवस्थित तरीके से जवाब प्रदान करने और उपयोगकर्ताओं की समस्याओं के समाधान करने में सक्षम है (रुडोल्फ 2023)। आधुनिक समय में इसका उपयोग संचार हेतु

किया जा रहा है जिसके माध्यम से यह त्वरित एवं सुविधाजनक उत्तर प्रदान करता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित चेट जीपीटी अपने खुलेपन, सहयोग के सिद्धांतों, व्यापक समुदाय को लाभ उठाने की इजाजत देने हेतु प्रतिबद्ध है।

चेट-जीपीटी के माध्यम से विद्यार्थी एवं अध्यापक ओपन एआई मंच का उपयोग करके अधिगम सामग्री को मानव भाषा में ही प्राप्त कर सकते हैं। यह विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को शोध कार्यों, दत्त-कार्यों, निबंधों, कविताओं तथा किसी समस्या से सम्बन्धित प्रश्न के उत्तर आदि को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है (बारभुइया 2023)। यह सभी जवाब संरक्षित डाटा बेस के आधार पर बिना किसी भुगतान के देता है। यद्यपि यह कुछ कार्य मानव मस्तिष्क से उच्च क्षमता में कर सकता है किन्तु मनुष्यों के समान रचनात्मकता स्तर और समझ इस टूल के पास नहीं है। यह विद्यार्थियों के लिए एक आभासी शिक्षक के रूप में काम करता है जिसकी सहायता से विद्यार्थी सरलता से शब्दों के प्रारूप में बात कर सकते हैं और अपने सवालों के उत्तर लिखित भाषा में प्राप्त कर सकते हैं। उत्तर प्राप्त करने के साथ-साथ यह विद्यार्थियों को प्रतिपुष्टि देने के लिए भी एक विकल्प देता है जिसके माध्यम से वह ये भी बता सकते हैं कि वह उत्तर से संतुष्ट हैं अथवा नहीं। यदि असंतुष्ट हैं तो पुन: अपने प्रश्न के उत्तर को खोजने हेतु दूसरे शब्दों में समस्या को लिखकर खोजते हैं। हालांकि कुछ व्यक्ति इसे गूगल पर खोजने की प्रक्रिया के समान मानते हैं लेकिन वास्तव में यह गूगल पर खोजे जाने की प्रक्रिया से अलग है क्योंकि गूगल सिर्फ सम्बन्धित विषय वस्तु की वेबसाइट की सूची मात्र उपलब्ध करवाता है जबकी चेट जीपीटी सीधे रूप में समस्या के समाधान हेतु सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु ही उपलब्ध करवाता है। चेट जीपीटी पर समग्री विस्तृत रूप में उपलब्ध है लेकिन विद्यार्थी तभी सीख सकते हैं जब उनमें इसके प्रति सही से जानकारी होगी और यह जानकारी उन्हें अध्यापकों द्वारा ही प्रदान की जा सकती है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

शिक्षा जगत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित चेट जीपीटी के उपयोग ने विद्यार्थियों में सीखने की क्रिया को सरल एवं रुचिकर बनाने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहल की है। मुक्त कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित इस प्रणाली में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत संज्ञानात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने, किसी भी समस्या से सम्बन्धित प्रश्न की तुरंत प्रतिपुष्टि करने तथा जटिल अवधारणाओं को अच्छे से समझाने आदि में सहायता कर रही है। यह विद्यार्थियों में अधिगम की गति को बढ़ाने के साथ-साथ उनकी सक्रिय भागीदारी एवं संज्ञानात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है (रुएडा तथा अन्य 2023)। इस प्रणाली का उपयोग करके विद्यार्थी लेखन कौशल में व्याकरण सम्बन्धी सुधार तथा भाषागत अशुद्धियों आदि में सुधार करके लेखन शैली को प्रभावी बना सकते हैं। इसके माध्यम से विद्यार्थी अपने पाठ्य वस्तु से संबंधित किसी भी समस्या का लिखित रूप में समाधान पाने के साथ विषय वस्तु पर आधारित दत्त कार्य बना सकते हैं। यह विद्यार्थियों मे विषय वस्तु पर विस्तृत एवं गुणवत्तापूर्ण सामग्री प्रदान

करने के लिए वैध शोध आलेख एवं अन्य संसाधन आदि उपलब्ध करवाता है। इसकी सहायता से विद्यार्थी निबंध लेखन, प्रूफ रीडिंग, एडिटिंग करना सीखने के साथ व्याकरण, वाक्य संरचना तथा शब्द भण्डार से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

यद्यपि वर्तनान समय में विद्यार्थी चेट जीपीटी का उपयोग अधिगम प्रक्रियाओं से लेकर अनुसन्धान क्रियाओं हेतु कर रहे हैं, किन्तु इनका उचित रूप से उपयोग करने हेतु उनमें इसके उपयोग के प्रति सही जानकारी होनी चाहिए। यदि उनमें सही जानकारी नहीं होगी तो इसका उपयोग वास्तविक अधिगम हेतु ना करके अन्य प्रयोजनों जैसे नकल आदि हेतु करेंगे। चेट जीपीटी विद्यार्थियों के इनपुट के आधार पर ही कार्य करता है यदि इनपुट सही नहीं होगा तो प्रभावी विषय वस्तु अथवा उत्तर नहीं प्राप्त कर सकते। चेट जीपीटी के प्रति यह जानकारी उनके अध्यापकों द्वारा ही प्रदान की जा सकती है। अत: ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि अध्यापकों में भी इसके प्रति सही जानकारी होने के साथ सकारात्मक दृष्टिकोण हो। अत: शोधार्थियों द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह जानने की कोशिश की गयी है कि अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण कैसा है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन

कम्प्यूटर आधारित डिजिटल युक्तियों का उपयोग शिक्षा जगत में क्रांति ला रहा है। इन युक्तियों के द्वारा शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावी एवं रुचिकर बनाया जा रहा है। अभी पिछले वर्ष में ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित चेट जीपीटी के मंच को जारी किया गया जिसका उपयोग विद्यार्थी अपने अधिगम को सुगम बनाने हेतु कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में इनके विभिन्न पहलुओं से सम्बंधित कई शोध कार्य हुये हैं जिनमें से कुछ, इस शोध कार्य की समस्या से सम्बंधित शोध कार्यों का विवरण निम्न प्रकार है -

रकोवास्की तथा अन्य (2023) द्वारा कनाडा में एक मात्रात्मक अध्ययन किया गया जिसका उद्देश्य अध्यापकों में जनेरेटिव कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रति दृष्टिकोण तथा शिक्षा के क्षेत्र में इसके निहितार्थ का पता लगाना था। शोध अध्ययन में जनसंख्या के रूप में 147 अध्यापकों को चुना गया जिनसे सर्वेक्षण के माध्यम से एक प्रश्नावली भरवायी गयी। इस प्रश्नावली के माध्यम से इन अध्यापकों ने जनेरेटिव कृत्रिम बुद्धिमत्ता के दृष्टिकोण के बारे में अपने विचार व्यक्त किये। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण करने से पता चला कि अधिकतर अध्यापकों का इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। अध्ययन में यह भी सुझाव दिया गया कि अध्यापक जितना अधिक इसका उपयोग करेंगे उतना ही अधिक इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होगा। अध्यापकों ने यह भी विचार व्यक्त किये कि जनेरेटिव कृत्रिम बुद्धिमत्ता भविष्य में उनके व्यवसायिक प्रगति को बढ़ावा देने के साथ यह विद्यार्थियों के लिए भी अच्छा उपकरण होगा।

फिरत (2023) द्वारा किये गये शोध में चेट जीपीटी के निहितार्थ का अध्ययन विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों में इनके प्रति दृष्टिकोण का पता लगाकर करना था। अध्ययन में जनसंख्या के रूप में चार देशों तुर्की, स्वीडन, कनाडा तथा ऑस्ट्रेलिया से सात स्कॉलर और 14

पीएचडी विद्यार्थियों को चुना गया। जनसंख्या से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण थीमेटिक कंटेंट एनालिसिस एप्रोच द्वारा किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों से पता चला कि चेट जीपीटी परम्परागत अधिगम को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करेगी जो कौशलों तथा योग्यताओं पर केंद्रित होकर शैक्षिक संस्थानों के दायित्त्वों को बताएगी। प्रतिभागियों ने इसमें आने वाली बाधाओं के बारे में भी बताया किन्तु वह इसके भविष्य में उपयोग को लेकर आशावादी थे।

थांगावेल (2023) द्वारा अध्यापकों में चेट जीपीटी के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य छात्राध्यापकों में चेट जीपीटी के प्रति जागरूकता एवं उनमें इसके प्रति संज्ञानात्मक विकास करना था। शोधकर्ताओं द्वारा आंकड़ों के संकलन हेतु एक प्रश्नावली का उपयोग किया गया जिसमे 100 विद्यार्थियों को यादृच्छिक चयन विधि द्वारा चयनित किया गया। अध्ययन से पता चला की विद्यार्थियों मे जागरूकता का स्तर सामान्य तथा विभिन्न चरों जैसे कि लिंग, क्षेत्र, पाठ्यक्रम वर्ग के बीच जागरूकता के स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं था। अध्ययन के निष्कर्षों से यह भी पता चला की विद्यार्थियों में चेट जीपीटी के प्रति ज्ञान बहुत ही कम था और इसी आधार पर सुझाव दिया गया कि विद्यार्थियों में चेट जीपीटी के प्रति ज्ञान को बढ़ाया जाये।

इकबाल, अहमद तथा अजहर (2022) ने एक्सप्लोरिंग टीचर्स एट्टीट्यूड टॉवर्ड्स यूजिंग चेट जीपीटी नामक शीर्षक से एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में अध्यापकों का चेट जीपीटी के प्रति दृष्टिकोण का पता लगाने के लिए टेक्नोलॉजी असेप्टेंस मॉडल का उपयोग किया गया। अध्ययन हेतु जनसंख्या के रूप में पाकिस्तान के एक विश्वविद्यालय में कार्यरत 20 अध्यापकों को चुना गया जिनसे अर्ध-संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से आंकड़ों का एकत्रीकरण किया गया। अध्यापकों द्वारा दिये गये जवाबों का विश्लेषण करने से पता चला कि अध्यापकों में चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण नकारात्मक है। इस दृष्टिकोण का कारण अध्ययन सामग्री की नकल तथा प्लेगरिज्म था। अध्ययन में सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालय के अध्यापकों में चेट जीपीटी से सम्बंधित और अधिक जानकारी दी जाए जिससे इसके उपयोग के प्रति साकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके।

सेनगुप्ता तथा चक्रवर्ती (2020) ने उच्च शिक्षा में चेट जीपीटी के उपयोग के सन्दर्भ में अध्ययन किया और पता लगाया कि वह विद्यार्थियों के लिए एक प्रभावी टूल हो सकता है जो इनके सक्रिय प्रतिभाग को बढ़ायेगा। अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकला कि इसके द्वारा विश्वविद्यालय में कार्यरत कार्यकर्ताओं में कार्यभार को कम करेगा क्योंकि यह विद्यार्थियों को किसी भी समस्या से सम्बन्धित प्रश्न पूछने पर त्वरित रूप से उत्तर प्रदान करता है।

उपरोक्त शोध अध्ययनों की समीक्षाओं से पता चलता है कि विश्वपटल पर चेट जीपीटी के विभिन्न पहलुओं पर शोध कार्य हुये हैं लेकिन भारत में इस क्षेत्र में हुए शोधकार्य बहुत ही सीमित हैं अत: शोधार्थियों द्वारा अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण शीर्षक को अध्ययन हेतु चुना गया।

संचालनगत परिभाषाएँ

चेट-जीपीटी - प्रस्तुत शोध अध्ययन में चेट-जीपीटी से तात्पर्य, मुक्त कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा चेट चाट के रूप में जारी किये गये बड़े भाषा प्रतिमान से है जिसका उपयोग विद्यार्थी अधिगम हेतु कर रहे हैं।

दृष्टिकोण - शोध अध्ययन में दृष्टिकोण से तात्पर्य माध्यमिक स्तर पर अध्यापन हेतु कार्यरत अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा सीखने हेतु उपयोग किये जाने वाले चेट-जीपीटी के प्रति नजरिये से है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कार्यरत अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना था।

शोध विधि एवं प्रक्रिया

इस शोध अध्ययन में शोध विधि के रूप में सर्वेक्षण विधि की वर्णनात्मक अनुसन्धान विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श

यह शोध अध्ययन लखीमपुर खीरी जनपद के गोला तहसील के शहरी क्षेत्र में स्थित माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में सत्र 2023-24 में अध्यापन कार्य हेतु कार्यरत अध्यापकों पर किया गया। सोद्देश्य प्रतिदर्शन चयन विधि के माध्यम से गोला शहर के 12 विद्यालयों से जनसंख्या के रूप में कुल 60 अध्यापकों को चुना गया, जिसमें से 45 अध्यापकों को यादृच्छिक चयन के द्वारा न्यादर्श के रूप में चुना गया।

उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्यापन कार्य में कार्यरत अध्यापकों का चेट जीपीटी के प्रति दृष्टिकोण का पता लगाने हेतु शोधकर्ताओं द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया। इस प्रश्नावली में दो भाग थे, जिसके प्रथम भाग में अध्यापकों को अपना विवरण भरना था। प्रश्नावली के दूसरे भाग में चेट जीपीटी के दृष्टिकोण पर आधारित 10 कथन थे जिनके सम्मुख 3 विकल्प सहमत, असहमत तथा तटस्थ, दिये गये थे। कथनों के सम्मुख दिये गये विकल्पों में से प्रत्येक कथन के लिए किसी एक विकल्प का चयन करना था। अध्यापकों द्वारा कथनों के लिए चुने गये कुल विकल्पों की संख्या के आधार पर प्रतिशतता द्वारा आंकड़ों का विवेचन किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राप्त प्रदत्तों का उदेश्यवार विश्लेषण एवं व्याख्या निम्नवत है -

तालिका 1
अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से अधिगम हेतु अभिप्रेरणा के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	40	88.9
असहमत	3	6.7
तटस्थ	2	4.4

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 1 का अध्ययन करने से पता चलता है कि 88.9 प्रतिशत अध्यापकों का मानना था कि चेट जीपीटी के उपयोग से विद्यार्थियों में अधिगम हेतु अभिप्रेरणा उत्पन्न होती है जबकि 6.7 प्रतिशत अध्यापक इस बात से असहमत और 4.4 प्रतिशत अध्यापक इस दृष्टिकोण के प्रति तटस्थ थे। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अधिकतर अध्यापकों में चेट जीपीटी के उपयोग से अधिगम हेतु अभिप्रेरित होने के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है और इसका कारण चेट जीपीटी द्वारा विद्यार्थियों को त्वरित रूप से किसी समस्या का समाधान देना है। जब किसी व्यक्ति को किसी क्रिया के प्रति तुरंत प्रतिक्रिया मिल जाती है तो वह कार्य करने हेतु स्वत: अभिप्रेरित होता है।

तालिका 2
अध्यापकों मे विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से अधिगम हेतु रुचि उत्पन्न करने के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	29	64.4
असहमत	11	24.4
तटस्थ	5	11.1

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 2 के अध्ययन से पता चलता है कि 64.4 प्रतिशत अध्यापक, चेट जीपीटी के विद्यार्थियों द्वारा उपयोग से उनमें सीखने हेतु रुचि उत्पन्न करने के प्रति दृष्टिकोण सहमत, 24.4 प्रतिशत असहमत जबकि 11.1 प्रतिशत तटस्थ थे। 64.4 प्रतिशत अध्यापकों में रुचि उत्पन्न करने के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने का कारण विद्यार्थियों को प्रभावी रूप में उन्ही की भाषा में लिखित रूप में अधिगम सामग्री उपलब्ध करवाना है। जबकि 24.4

प्रतिशत तथा 11.1 प्रतिशत अध्यापक जो इस दृष्टिकोण के प्रति क्रमशः असहमत तथा तटस्थ अभिमत रखते हैं, जिनमें यह कारण चेट जीपीटी के उपयोग से सबंधित सही जानकारी का ना होना हो सकता है।

तालिका 3
अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से
नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	32	71.1
असहमत	11	24.4
तटस्थ	2	4.4

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 3 का अध्ययन करने से पता चलता है कि 71.1 प्रतिशत अध्यापक चेट जीपीटी के उपयोग से विद्यार्थियों मे नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन से सहमत थे। उनका मानना था कि जब विद्यार्थी कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ऐसी युक्तियों का प्रयोग अधिगम हेतु करेंगे तो वह अध्यापकों के सम्पर्क में नहीं आ पाएँगे। विद्यार्थी इसकी सहायता से अधिगम को तो प्रभावी बना सकेंगे लेकिन नैतिक मूल्यों का विकास नहीं कर सकते। जबकि विश्लेषण से यह भी निष्कर्ष निकला कि 24.4 प्रतिशत अध्यापकों का यह भी मानना था कि चेट जीपीटी के उपयोग से उनके नैतिक मूल्यों पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा वहीं 4.4 प्रतिशत अध्यापक इस कथन के प्रतिदृष्टिकोण हेतु तटस्थ थे।

तालिका 4
अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से
लेखन कौशलों के विकास के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	24	53.3
असहमत	18	40
तटस्थ	3	6.7

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 4 का अध्ययन करने से पता चलता है कि 53.3 प्रतिशत अध्यापक इस बात से सहमत हैं कि चेट जीपीटी का उपयोग करने से विद्यार्थियों में लेखन कौशल का विकास होगा। उनका मानना था कि विद्यार्थी जब इसका उपयोग करके निबंध, लेख, या विषय वस्तु से सम्बन्धित कोई अन्य लेखन करते हैं तो लिखित सामग्री के साथ व्याकरण, भाषा शैली, वाक्य संरचना तथा शब्द भण्डार आदि का भी अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान होता है।

जबकी 40 प्रतिशत अध्यापक इस कथन से असहमत थे उनका मानना था कि, चेट जीपीटी के माध्यम से किसी विषय वस्तु की सामग्री पर लेख प्राप्त करते हैं तो व्याकरण के नियमों के बारे में नहीं सोचते जिससे उनमें भाषा के व्याकरण संबंधी ज्ञान का विकास नहीं हो पाता है। तालिका का अध्ययन करने से यह भी पता चला कि 6.7 प्रतिशत अध्यापक इस कथन के प्रति किसी प्रकार का दृष्टिकोण नहीं रख रहे थे अर्थात वह तटस्थ थे।

तालिका 5
अध्यापकों में विद्यार्थियों हेतु चेट जीपीटी पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की वैधता के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	19	42.2
असहमत	19	42.2
तटस्थ	7	15.6

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका संख्या 5 का अध्ययन करने से पता चलता है कि विद्यार्थियों के लिए चेट जीपीटी पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की वैधता के लिए 42.2 प्रतिशत अध्यापकों का दृष्टिकोण नकारात्मक, तथा इतने ही 42.2 प्रतिशत अध्यापकों का दृष्टिकोण सकारात्मक जबकि 15 प्रतिशत अध्यापक वैधता के प्रति तटस्थ थे। अध्यापकों मे वैधता से सम्बन्धित इस नकारात्मक दृष्टिकोण का कारण चेट जीपीटी का इसके डाटा बेस पर उपलब्ध जानकारी के आधार पर कार्य करना है और यह जानकारी व्यक्तियों द्वारा खोजी गई सूचनाओं के आधार पर या व्यक्ति विशेष द्वारा अपलोड की जाती हैं। विद्यार्थी जब किसी भी प्रकरण से सम्बन्धित जानकारी खोजते हैं तो चेट जीपीटी द्वारा प्रदान की गयी जानकारी सत्य है इसकी शत प्रतिशत जिम्मेदारी नहीं है।

तालिका 6
अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से नकल करने की प्रवृत्ति के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	29	64.4
असहमत	7	15.6
तटस्थ	9	20

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

उपरोक्त तालिका 6 के अध्ययन करने से पता चलता है कि 64.4 प्रतिशत अध्यापक चेट जीपीटी के उपयोग से विद्यार्थियों में नकल की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए सहमत, 15.6 प्रतिशत असहमत तथा 20 प्रतिशत इस कथन के प्रति तटस्थ थे। आंकड़ों के

विश्लेषण से पता चलता है कि अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से नकल को बढ़ावा देने के प्रति सहमत होने कारण यह है कि, विद्यार्थियों को जब पाठ्यक्रम की विषय वस्तु से सम्बन्धित कोई कार्य दिया जाता है तो वह इसे सीखने कि बजाय सिर्फ कार्य करने पर जोर देते हैं। अध्यापकों का यह मानना है कि यह विद्यार्थियों के लिए उपयोग हेतु उचित जानकारी ना होने से सीखने हेतु साधन ना होकर एक साध्य मात्र बनकर रह गया है।

तालिका 7
अध्यापकों में विद्यार्थियों हेतु चेट जीपीटी पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की गोपनीयता के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	31	68.9
असहमत	9	20
तटस्थ	5	11.1

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 7 का अध्ययन करने से पता चलता है कि विद्यार्थियों हेतु चेट जीपीटी पर उपलब्ध जानकारी की गोपनीयता के प्रति 68.9 प्रतिशत अध्यापकों का दृष्टिकोण नकारात्मक, 20 प्रतिशत अध्यापकों का सकारात्मक तथा 11.1 प्रतिशत अध्यापक तटस्थ थे। अत: निष्कर्षों के आधार पर हम कह सकते हैं कि अधिकतर अध्यापको में चेट जीपीटी पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की गोपनीयता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का कारण सामग्री के खुलेपन तथा खोजी गयी जानकारी के संग्रहण के कारण है। कोई भी व्यक्ति इस मंच का उपयोग करके किसी विषय वस्तु को खोजता है तो वह इसके द्वारा संरक्षित कर ली जाती है। यदि बाद में कोई व्यक्ति इससे सम्बन्धित जानकारी को ओपेन ए आई के मंच पर खोजता है तो उसे प्रदर्शित कर देता है।

तालिका 8
अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग से आलसी बनाने के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	23	51.1
असहमत	11	24.4
तटस्थ	11	24.4

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 8 का अध्ययन करने से पता चलता है कि 51.1 प्रतिशत अध्यापकों का यह मानना है कि चेट जीपीटी के उपयोग से विद्यार्थियों में आलस का गुण बढ़ रहा है तथा 24.4 प्रतिशत अध्यापकों का मत था कि इसके उपयोग से विद्यार्थियों मे आलस का गुण विकसित नहीं हो रहा है जबकि इतने ही 24.4 प्रतिशत अध्यापकों का दृष्टिकोण इस कथन के प्रति तटस्थ था। लगभग आधे अध्यापकों में चेट जीपीटी के प्रति आलस के सन्दर्भ में नकारात्मक दृष्टिकोण होने का कारण चेट जीपीटी द्वारा त्वरित रूप से उनकी आवश्यकता के अनुसार समस्या समाधान को प्रदान कर देना है। इस मंच की सहायता से विद्यार्थियों को अधिगम सामग्री खोजने में मेहनत नहीं करनी पड़ती है जैसे ही वह किसी पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित प्रश्नों, दत्तकार्य तथा लेख आदि को खोजते हैं तो उन्हे बिना किसी प्रतीक्षा के सिर्फ एक निर्देश पर पूरी जानकारी मिल जाती है।

तालिका 9
अध्यापकों में विद्यार्थियों हेतु चेट जीपीटी पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की गुणवत्ता के प्रति दृष्टिकोण

जवाब	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
सहमत	18	40.1
असहमत	21	46.7
तटस्थ	6	13.3

स्रोत : प्राथमिक समंकों के आधार पर

तालिका 9 का अध्ययन करने से पता चलता है कि अध्यापकों में चेट जीपीटी पर विद्यार्थियों हेतु उपलब्ध अधिगम सामग्री की गुणवत्ता के सन्दर्भ में दृष्टिकोण ज्यादा अच्छा नहीं है। 46.7 प्रतिशत अध्यापक चेट जीपीटी पर उपलब्ध विषय वस्तु की सामग्री के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण तथा 40.1 प्रतिशत अध्यापकों में इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण जबकि 13.3 प्रतिशत अध्यापक इस कथन के प्रति तटस्थ थे। अध्यापकों में इस मंच पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की गुणवत्ता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का कारण शिक्षण अधिगम सामग्री का विषय विशेषज्ञों द्वारा न प्रदान कर किसी भी व्यक्ति द्वारा उपलब्ध करा दी जाती है या कभी-कभी अन्य व्यक्तियों द्वारा खोजी गयी सामग्री को भंडारित कर अन्य उपयोगकर्ताओं को भी उपलब्ध करा दी जाती है।

निष्कर्ष

शोध अध्ययन में प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि अध्यापकों में विद्यार्थियों हेतु अधिगम के लिए उपयोग किये जाने वाले चेट जीपीटी के प्रति दृष्टिकोण सामान्य रूप से सकारात्मक है। उनका मानना है कि इस मंच पर आधारित अधिगम सामग्री के माध्यम से विद्यार्थियों में सीखने की प्रक्रिया को प्रभावी एवं रुचिकार बनाया जा सकता है।

विद्यार्थी जब इस मंच का उपयोग करते हैं तो वह अधिगम के लिए अभिप्रेरित भी होते हैं। वहीं इस पर उपलब्ध सामग्री की गोपनीयता एवं गुणवत्ता के प्रति दृष्टिकोण नकारात्मक है तथा उनका यह भी मानना है कि यह नकल की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। अध्यापकों का मत है कि, विद्यार्थी जब चेट जीपीटी पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग करके सीखते हैं तो उनमें नैतिक मूल्यों का भी पतन हो रहा है। विद्यार्थी जब विद्यालय में जाकर सीखते हैं तो वह अन्य विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के साथ अन्योन्य क्रिया करते हैं, एक दूसरे की संवेदनाओं, संस्कृति तथा सामाजिक मूल्यों आदि को समझते हैं, फलस्वरूप अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक मूल्यों का विकास होता है। अध्यापकों का मानना है कि चेट जीपीटी पर अधिगम सामग्री की सुलभ रूप से उपलब्धता विद्यार्थियों को आलसी बना रही है जबकि परम्परागत शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में अधिगम सामग्री को प्राप्त करने के लिए या तो विद्यालय जाना पड़ता था अथवा किताबों में खोजनी पड़ती थी। आज की इस मुक्त कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित युक्ति के माध्यम से त्वरित समय में किसी भी समस्या का समाधान प्राप्त कर सकते हैं, जिसके फलस्वरूप कम श्रम लगने के कारण आलसी होते जा रहे हैं। चेट जीपीटी संरक्षित डाटा बेस के आधार पर कार्य करता है इसलिए अध्यापकों का इस पर उपलब्ध अधिगम सामग्री की वैधता के प्रति भी नकारात्मक दृष्टिकोण है। इस मंच का उपयोग करके विद्यार्थी जब कोई पाठ्यवस्तु खोजते हैं तो समग्री के साथ अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान भी प्राप्त करते हैं अत: अध्यापकों का भाषा कौशल के विकास के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। आज के इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित युग में यदि अध्यापकों में चेट जीपीटी के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं होगा तो वह अपने विद्यार्थियों को इसके प्रभावी उपयोग के बारे में जानकारी नहीं प्रदान कर सकते हैं फलत: विद्यार्थी चेट जीपीटी का उपयोग अधिगम हेतु प्रभावपूर्ण तरीके से नहीं कर सकते।

सुझाव

शोध अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उपयोग के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण एवं जागरूकता के विकास हेतु निम्नवत सुझाव हो सकते हैं -

- सेवाकालीन अध्यापकों में विद्यार्थियों द्वारा चेट जीपीटी के उचित उपयोग के प्रति सही जानकारी प्रदान करने हेतु, प्रतिष्ठित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा कार्यशालाएँ, संगोष्ठी एवं सम्मेलनों का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे उनमें इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके और विद्यार्थियों को इसके उचित उपयोग हेतु जानकारी प्रदान कर सकें।
- शिक्षा के क्षेत्र में चेट जीपीटी जैसी डिजिटल युक्तियों के प्रभावी उपयोग के लिए नीतियाँ, दिशा निर्देश तथा श्रेष्ठ अभ्यास आदि विकसित करने चाहिए जिससे अध्यापकों में इसके प्रति सही जानकारी एवं सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके।

- अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों में स्वनिर्देशित शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु व्यक्तिगत अनुकूली चेट जीपीटी समर्थित शिक्षण वातावरण को अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा पूर्व सेवाकालीन शिक्षकों को प्रशिक्षण के दौरान चेट जीपीटी आधारित शिक्षण विधियों, तथा प्रभावी शिक्षण हेतु इसके उचित उपयोग के बारे में जानकारी प्रदान करना चाहिए जिससे उनमें भविष्य में सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ विद्यार्थियों को इसके उचित उपयोग हेतु प्रेरित कर सकें।

सन्दर्भ

बारभुइया, आर.के., (2023) 'इंट्रोडक्शन टू आर्टिफीशियल इंटेलीजेंस, कंसर्न्स एंड पॉसिबिलिटीज फॉर एजुकेशन', *इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशन टेक्नोलॉजी.* 5(2).

इकबाल, एन., अहमद, एच., अजहर, के.ए. (2022) 'एक्सप्लोरिंग टीचर्स ऐटिट्यूड टुवर्ड्स यूजिंग चेट जीपीटी', *ग्लोबल जर्नल फॉर मैनेजमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेटिव साइंसेस,* 3(4).

फिरत, एम. (2023) 'व्हाट चेट जीपीटी मीन्स फॉर यूनिवर्सिटीज : परसेप्शंस ऑफ स्कॉलर्स एंड स्टूडेंट्स', *जर्नल ऑफ एप्लाइड लर्निंग एंड टीचिंग,* 6(1).

रुएडा, एम.एम., सीरियो, जे.एफ. तथा अन्य (2023) *इम्पैक्ट ऑफ द इम्प्लीमेन्टेशन ऑफ चेट जीपीटी इन एजुकेशन : ए सिस्टेमेटिक रिव्यू.* कम्प्यूटर्स एमडीपीआई. 12(153).

रुडोल्फ, जे., टेन, एस. (2023) 'चेट जीपीटी बुलशिट स्पेवर ऑर द एंड ऑफ ट्रेडिशनल असेसमेंट इन हायर एजुकेशन', *जर्नल ऑफ एप्लाइड लर्निंग एंड ट्रेनिंग,* 6(1).

रकोवास्की, आर.के., ग्रोतेवोल्ड, के. तथा अन्य (2023) 'जनरेटिव एआई एंड टीचर्स पर्सपेक्टिव्स ऑन इट्स इम्प्लीमेन्टेशन इन एजुकेशन', *जर्नल ऑफ इंटरैक्टिव लर्निंग रिसर्च.* 34(2).

सेनगुप्ता, चक्रवर्ती टी. (2020) 'यूज ऑफ चेट बोट इन हायर एजुकेशन : ए स्टडी ऑफ स्टूडेंट्स इंगेजमेन्टेड सेटिस्फेक्शन', *एजुकेशन एंड इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी,* 25(6).

थंगावेल, के. (2023) 'अवेयरनेस ऑफ चैट जीपीटी अमंग स्टूडेंट टीचर्स', इन बुक *प्रोसीडिंग्स ऑफ नेशनल लेवल कॉन्फ्रेंस ऑन एजुकेशन, रिवॉल्यूशनाइजिंग लर्निंग फॉर द फ्यूचर,* शैलास प्रेस.(220-226)

यू.,एच. (2023) *रिफ्लेक्शन ऑन व्हेदर चेट जीपीटी शुड बी बैन्ड बाय अकेडमिया फ्रॉम द पर्सपेक्टिव ऑफ एजुकेशन एंड टीचिंग,* फ्रन्टीयर्स इन साइकोलॉजी.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 148-159)
UGC-CARE (Group-I)

भारत में सड़क दुर्घटनाएँ : एक सामाजिक समस्या

हसमुख पांचाल*

भारत का सड़क नेटवर्क करीब 63.72 लाख कि.मी. है, जो विश्व का दूसरा सबसे बडा सड़क नेटवर्क है। यह विशाल नेटवर्क भारत के 90 प्रतिशत से अधिक यात्री यातायात के लिए पसन्दीदा विकल्प होने के अलावा देश के भीतर सभी सामानों के 64.5 प्रतिशत से अधिक परिवहन के लिए देश में सम्पूर्ण रूप से जटिल नेटवर्क के रूप मे कार्य करता है जबकि सड़कें देश में विकास और वृद्धि का पर्याय बनी हुई हैं, वे भारत के साथ उपयोगकर्ताओं के लिए एक अभिशाप भी रही है, जो सड़क दुर्घटनाओं का सन्दिग्ध गौरव रखती है। आधिकारिक रिपोर्ट बताती है कि वर्ष 2021 के दौरान, देश में कुल 4,12,432 सड़क दुर्घटनाएँ दर्ज की गई हैं, जिनमें 1,53,972 लोगों की मौत हुई है और 3,84,448 लोग घायल हुए हैं। दुर्भाग्य से सड़क दुर्घटनाओं में सबसे अधिक प्रभावित आयु वर्ग 18-45 वर्ष है, जो कुल दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों का लगभग 67 प्रतिशत है। न केवल दुर्घटनाओं और मौतों की संख्या में वृद्धि हुई है, बल्कि दुर्घटना की गम्भीरता में भी 2005 के बाद से 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इन्हें रोकने के लिए सभी स्तरों पर ठोस प्रयासों के बावजूद देश में सड़क दुर्घटनाएँ मृत्यु, विकलांगता और अस्पताल में भर्ती होने का प्रमुख कारण बनी हुई है, जो एक समस्या है। प्रस्तुत शोधपत्र इसी सामाजिक समस्या का अध्ययन है।

*सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद (गुजरात)
E-mail: hasmukh.panchal@gujaratvidyapith.org

प्रस्तावना

सड़क दुर्घटनाएँ सबसे बड़ी और चिन्ताजनक सामाजिक समस्या है, जो कीमती जीवन और सरकारी खजाने को भी प्रभावित कर रही है। वर्तमान वर्षों में बढ़ते मोटरकरण और बुनियादी ढाँचे के विकास के बीच भारत सड़क यातायात की बढ़ती चोटों का सामना कर रहा है। प्रतिदिन भारतीय सड़कों पर लगभग 400 सड़क मौतें होती हैं और हजारों सड़क दुर्घटनाओं के कारण अस्पताल में भर्ती होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि भारत में प्रति 1,00,000 जनसंख्या पर सड़क मौतों की संख्या 16.6 है। सभी मौतों में से लगभग 3 प्रतिशत मौतें सड़क दुर्घटनाओं के कारण होती हैं, जिसमें विशेष रूप से युवा और पुरुष शामिल हैं। यह मुद्दा सरकार और अन्य सभी हितधारकों से गम्भीर एवं समन्वित कार्यवाई की माँग करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सामाजिक, आर्थिक स्थिति की मुख्य भूमिका पर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है, इसे मान्यता नहीं दी जाती है और सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा अच्छी तरह से अनुसन्धान की आवश्यकता है। लेकिन यह किसी भी देश में सड़क यातायात दुर्घटनाओं के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य है। सामाजिक समस्या घटनाओं का समूह या दशा है, जिसे समाज में कुछ लोग अवांछित मानते हैं। समाज के एक वर्ग या समूह के समक्ष उत्पन्न स्थिति, जिसके हानिकारक परिणाम होते हैं और जिससे केवल सामूहिक प्रयासों से ही निपटा जा सकता है, इसीलिये सड़क दुर्घटनाओं को वर्तमान में सामाजिक समस्या के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

भारतमाला, भारत सरकार द्वारा सड़क परिवहन और राजमार्ग मन्त्रालय के नियत कार्यों और जिम्मेदारियों में अन्य बातों के साथ-साथ, पड़ोसी देशों के साथ वाहन यातायात के आवागमन की व्यवस्था के अलावा राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, नियमावली, सड़क परिवहन और ओटोमोटिव मानकों इत्यादि से सम्बन्धित व्यापक नीतियाँ तैयार करने का कार्य शामिल है। भारत में सड़क दुर्घटनाएँ 2021, प्रतिवेदन में वर्तमान सड़क दुर्घटनाओं के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी प्रदान की है। इसमें दस खंड हैं और इसके सन्दर्भ में सड़क दुर्घटनाओं, सड़क की लम्बाई और वाहनों की आबादी से सम्बन्धित जानकारी शामिल है। इस प्रतिवेदन में प्रदान किये गये तथ्य एवं आँकड़े पुलिस विभाग से प्राप्त किये जाते हैं। एडवान्स रोड सेफ्टी इन इन्डिया, प्रतिवेदन, 2021 में कई महत्वपूर्ण बातों एवं अनुसन्धान की चर्चा की है।

उद्देश्य

सड़क दुर्घटनाएँ : एक सामाजिक समस्या एवं भारत में सड़क दुर्घटनाओं की स्थिति का अध्ययन।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोधपत्र में द्वितीयक तथ्यों का उपयोग करके अध्ययन किया है। अध्ययन में भारत सरकार के भारतमाला एवं सड़क दुर्घटनाओं के प्रतिवेदन में दिये गये आँकड़ों का

उपयोग किया है। जनसंख्या, अखबार, पुस्तकें, प्रतिवेदन, अन्य अध्ययन, आदि द्वितीयक स्रोत के आधार लिये गये हैं। अध्ययन के प्रथम भाग में विषयवस्तु, साहित्य समीक्षा, दूसरे भाग भाग में शोध प्रविधि, तीसरे भाग में वर्गीकरण एवं विश्लेषण और चतुर्थ भाग में निष्कर्ष निरूपण किया हैं।

सड़क दुर्घटनाएँ : एक सामाजिक समस्या

वर्तमान भारत में कोई भी ऐसा अखबार नहीं है जिसमें प्रतिदिन सड़क दुर्घटनाओं की खबर छपी न हो। अखबार, टीवी, सोशल मीडिया में सड़क दुर्घटनाओं की चर्चा होती रहती है। सरकार और समुदाय को सड़क दुर्घटना के बारे में हो रही चर्चा के बारे में गम्भीर रूप से सोचने का समय है। हर दिन 400 मौतों के साथ, भारतीय सड़कें दुनिया में सबसे कुख्यात बन गई हैं और सड़क सुरक्षा सार्वजनिक सुरक्षा की एकमात्र सबसे बड़ी चुनौती है, जिसका हम आज सामना कर रहे हैं। एनसीआरबी की रिपोर्ट 2021 से पता चलता है कि अधिकांश पीड़ितों की उम्र 40 वर्ष से कम है और स्वतन्त्र अध्ययन और समीक्षा से संकेत मिलता है कि पैदल चलने वालों एवं दोपहिया वाहनों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है, और फिर हर साल कुल संख्या बढ़ रही है (भारत में सड़क दुर्घटनाएँ, 2021)। कानून, बुनियादी ढाँचा, प्रौद्योगिकी, प्रवर्तन, आपातकालीन प्रतिक्रिया और शिक्षा जैसे क्षेत्रों के व्यापक स्पेक्ट्रम को कवर करते हुए सड़क सुरक्षा को बढ़ाने के लिए कई कदमों पर चर्चा की जा रही है। हाल ही में पेश किया गया मोटर वाहन संशोधन विधेयक 2016 एक स्वागत योग्य कदम है। चुनौती की भयावहता और इसकी बहुआयामी प्रकृति को देखते हुए, हमें एक समन्वित कार्यवाही की आवश्यकता है जो विश्वसनीय तथ्यों और सिद्ध सुरक्षा विज्ञान पर आधारित हो (वेंकटाचलम्, 2017)।

जन विषय वह है, जिसका पूरे समाज पर या समाज की बड़ी संख्या पर प्रभाव पड़ता है। कोई एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति सामाजिक रूप से समस्याग्रस्त स्थिति के लिए जिम्मेदार नहीं है और इन स्थितियों पर नियन्त्रण पाना, किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के बस की बात नहीं है। इसकी जिम्मेदारी पूरे समाज की है। सामाजिक समस्या को सामाजिक आदर्श का विचलन माना गया है, जो सामूहिक प्रयत्न से ही ठीक हो सकता है (आहुजा, 2016)। इस परिभाषा में दो तत्व महत्वपूर्ण हैं - (1) एक स्थिति जो आदर्श से कम है, अर्थात् जो अवांछनीय या असाधारण है, और (2) जो सामूहिक प्रयत्न से ठीक हो सकती है। यद्यपि इसका निर्धारण करना सरल नहीं है कि कौन सी स्थिति आदर्श है और कौन सी नहीं, और ऐसा कोई मापदंड भी नहीं जिसे इसको जाँचने के लिए प्रयोग में लाया जा सके, फिर भी यह स्पष्ट है कि सामाजिक आदर्श कोई मनमाना विचार या मत नहीं है, और 'सामाजिक समस्या' शब्द उसी 'विषय' के लिए उपयोग किया जाता है, जिसे सामाजिक आचार-शास्त्र (जो सामूहिक सम्बन्धों में आचार-व्यवहार को सही और गलत बतलाता है) और समाज (जो सार्वजनिक कल्याण को प्रोत्साहित करता है और सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखता है) प्रतिकूल समझते हैं। विषय ऐसा भी होना चाहिए जिसका एक व्यक्ति स्वयं समाधान न कर सके। यदि किसी व्यक्ति को

नौकरी चाहिए और उसको पाने के लिए उसे दूसरों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेना पड़ता है, तो वह केवल एक व्यक्तिगत समस्या है। दूसरी ओर यदि किसी देश में तीन-चार करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं और कोई व्यक्ति अकेला उसके लिए प्रभावी कदम नहीं उठा सकता, तो उसके समाधान के लिए एक संगठित प्रयास की आवश्यकता है। इस प्रकार एक तरह की परिस्थिति में एक समस्या व्यक्तिगत समस्या होती है, तो दूसरी में वही एक सामाजिक समस्या (आहुजा, 2016)।

परन्तु समय के साथ-साथ सामाजिक समस्याएँ बदलती रहती हैं। जो कुछ दशकों पहले सामाजिक समस्या नहीं मानी जाती थी, वह दो दशकों पश्चात् एक नाजुक सामाजिक समस्या बन सकती है। हमारे देश में बीसवीं शताब्दी के चालीस से पहले के दशकों में जनसंख्या विस्फोट को एक सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखा जाता था, किन्तु पचास के दशक में वह नाजुक सामाजिक समस्या बन गयी। सामाजिक बदलाव नयी स्थितियों को जन्म देता है, जिनमें एक घटना एक सामाजिक समस्या बन जाती है। चालीस के दशक में भारत में युवा-असन्तोष जैसी कोई समस्या नहीं थी, किन्तु 50 और 60 के दशकों में यह एक समस्या हो गई और 70, 80 और 90 के दशकों में तो वह और गम्भीर हो गई और अब नयी शताब्दी में भी वही स्थिति है। इसी तरह आज नये भारत में सड़क दुर्घटनाएँ एक सामाजिक समस्या बन गई है।

सामाजिक समस्या में एक नैतिक मूल्यांकन होता है, एक ऐसी भावना होती है कि स्थिति हानिकारक है और इसमें परिवर्तन आवश्यक है, जैसे - पत्नी को पीटना और बाल मजदूरी और बालकों के साथ दुर्व्यवहार जैसे विवाद-विषय अब भी गम्भीर सामाजिक समस्याओं की परिधि में नहीं आते, जबकि वे सामाजिक समस्याओं का रूप लेते जा रहे हैं (आहुजा, 2016)।

उन स्थितियों को सामाजिक समस्याएँ नहीं माना जाता जो बदली नहीं जा सकती या जिन्हें टाला नहीं जा सकता। इस प्रकार कुछ वर्ष पूर्व तक अकाल को सामाजिक समस्या नहीं माना जाता था, क्योंकि लोगों में यह विश्वास व्याप्त था कि बरसात का कम होना इन्द्रदेव के प्रकोप का परिणाम है। आजकल राजस्थान और गुजरात जैसे राज्यों में अकाल को सामाजिक समस्या के रूप में लिया जाता है और इसका कारण नहरों का आर्थिक साधनों की कमी से पूरा नहीं होना माना जाता है। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में पीने के पानी की कमी सामाजिक समस्या तब बनी जब लोगों को ज्ञात हुआ कि यह संकट ऐसा नहीं है, जिसको भोगने के अलावा कोई विकल्प नहीं है और इसको हटाने के लिए कुछ उपाय किये जा सकते हैं। इस प्रकार जब लोगों में यह विश्वास हो जाता है कि उसके रोकने और निवारण की सम्भावना है, तभी वे उस स्थिति को सामाजिक समस्या मानते हैं। इसलिये सड़क दुर्घटनाएँ एक सामाजिक समस्या बनी हैं।

भारत में सड़क दुर्घटनाओं कि स्थिति का अध्ययन

भारत में परिवहन की एक सुगठित और समन्वित प्रणाली है जो उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के उचित वितरण और लोगों की आवाजाही को बढ़ावा देकर आर्थिक गतिविधियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में परिवहन क्षेत्र की हिस्सेदारी लगातार बढ़ रही है। यह देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के आकलन में प्रमुख संकेतकों में से एक है। फिर भी यातायात दुर्घटनाएँ यातायात के सुचारू प्रवाह में बाधाओं और अन्य बाधाओं का संकेतक है, इसिलिये भारत में सड़क दुर्घटनाओं कि स्थिति को जानना जरूरी है।

वैश्विक रुझान और भारत का स्थान

अन्तर्राष्ट्रीय सड़क संगठन (आईआरएफ) की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में 12.5 लाख लोगों की हर साल सड़क हादसों में जान जाती है। दुनिया भर में वाहनों की कुल संख्या का महज तीन प्रतिशत हिस्सा भारत में है, लेकिन देश में होने वाले सड़क हादसों और इनमें जान गँवाने वालों के मामले में भारत की हिस्सेदारी 12.06 प्रतिशत है। सड़क यातायात दुर्घटना के परिणामस्वरूप हर साल लगभग 1.3 मिलियन लोगों का जीवन विश्व स्तर पर समाप्त हो जाता है। दुर्भाग्य से, 90 प्रतिशत से अधिक सड़क यातायात मौतें निम्न और मध्यम आय वाले देशों में होती हैं, यहाँ तक कि उच्च आय वाले देशों में भी, निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के लोग सड़क यातायात दुर्घटनाओं में शामिल होने की अधिक सम्भावना रखते हैं। पिछले तीन दशकों से दुनिया भर में सड़क दुर्घटनाएँ मौतों का प्रमुख कारण रही हैं और इस सम्बन्ध में काफी वृद्धि देखी गई है। सड़क यातायात सुरक्षा पर डब्ल्यूएचओ की विश्व रिपोर्ट (सड़क यातायात चोट निवारण पर विश्व रिपोर्ट, 2004) में सड़क दुर्घटनाओं को बीमारी के वैश्विक बोझ में तीसरे प्रमुख योगदानकर्ता के रूप में सूचीबद्ध किया गया है, जो 1990-91 में नौवे स्थान से ऊपर है। इस सम्बन्ध में भारत का योगदान दुनिया में सबसे अधिक है, जिसमें दुनिया भर में सड़क दुर्घटनाओं की दूसरी सबसे बड़ी संख्या और सबसे अधिक मौतें होती हैं।

भारत में सड़क दुर्घटनाओं की स्थिति

1970 के बाद से उपलब्ध सांख्यिकीय आँकड़े सड़क दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में विभिन्न मापदंडो, जैसे - वर्षों में सड़क की लम्बाई में वृद्धि, पंजीकृत वाहनों की संख्या और जनसंख्या वृद्धि के आधार पर स्थिति को सामने लाते हैं। स्थिति 2010 तक सड़क दुर्घटनाओं, दुर्घटना से सम्बन्धित मौतों और चोटों की संख्या में लगातार वृद्धि का संकेत देती है जिसके बाद मामूली उतार-चढाव के साथ आँकड़े अपेक्षाकृत स्थिर रहे हैं जबकि जनसंख्या में वृद्धि ने सड़क दुर्घटनाओं और मौतों के लिए जोखिम दर में परिणामी वृद्धि दिखाई है, इसी अवधि के दौरान वाहनों की संख्या में वृद्धि ने आश्चर्यजनक रूप से गिरावट का रुख दिखाया है (भारत में सड़क दुर्घटनाएँ, 2021)।

तालिका 1

भारत में सड़क दुर्घटनाएँ, रोड एवं दशक के रुझान (1970-2020)

वर्ष	दुर्घटनाएँ (प्रति हजार)	दुर्घटनाओं से मौत (प्रति हजार)	दुर्घटनाओं से घायल (प्रति हजार)	पंजीकृत वाहन (प्रति हजार कि.मी.)	सड़कों की लम्बाई (प्रति हजार कि.मी.)	मृत्यु दर (प्रति 10000 वाहन पर दुर्घटनाओं की संख्या)	वाहन घनत्व (वाहनों की संख्या प्रति कि.मी.)
1970	114	15	70	1401	1,189	103.5	1.2
1980	153	24	109	4,521	1,492	53.1	3.0
1990	283	54	244	19,152	1,984	28.2	9.7
2000	391	79	399	48,857	3,316	16.2	14.7
2010	500	135	528	1,27,746	4,582	10.5	27.9
2020	366	131	348	3,26,299	-	4.0	-

स्रोत - सड़क दुर्घटना रिपोर्ट 2021, पृ. 13

तालिका 2 में वाहनों की संख्या, सड़क दुर्घटनाओं की संख्या के साथ परिणामी मौतें और चोटें, पिछले वर्ष की तुलना में उनकी प्रतिशत विविधताएँ और प्रति हजार वाहनों पर दुर्घटना से होने वाली मौतों की दर प्रस्तुत की गई है।

तालिका 2

भारत में वाहनों की संख्या में वृद्धि और सड़क दुर्घटनाएँ (2016-17)

वर्ष	सड़क दुर्घटना (प्रति हजार)	पिछले वर्ष की तुलना में भिन्नता (प्रतिशत)	घायल व्यक्ति (प्रति हजार)	पिछले वर्ष की तुलना में भिन्नता (प्रतिशत)	व्यक्ति की मृत्यु	पिछले वर्ष की तुलना में भिन्नता (प्रतिशत)	वाहनों की संख्या (हजार में)	पिछले वर्ष की तुलना में भिन्नता (प्रतिशत)	प्रति हजार वाहनों पर होने वाली मौतों की दर
2017	445.7	-5.80	456.2	-6.00	1,50,093	-1.10	2,53,311	10.1	0.59
2018	445.5	0.00	446.5	-2.10	1,52,780	1.80	2,72,587	7.6	0.56
2019	437.4	-1.8	439.2	-1.60	1,54,732	1.30	2,95,772	8.5	0.52
2020	354.8	-18.9	335.0	-23.70	1,33,201	-13.90	2,95,772	-	0.45
2021	403.1	13.6	371.9	11.00	1,55,622	16.80	2,95,772	-	0.53

स्रोत - भारत में दुर्घटना से होने वाली मौतें और आत्महत्याएँ -2021, पृ. 122

यह देखा गया है कि 2021 में प्रति हजार वाहनों पर मौतों की दर 2020 में 0.45 से बढ़कर 2021 में 0.53 हो गई है। 2021 के दौरान 4,03,116 सड़क दुर्घटनाओं में 1,55,622 लोगों की मौत हुई और 3,71,884 लोग घायल हुए। आम तौर पर सड़क दुर्घटनाओं में मौतों की तुलना में अधिक चोटें आई हैं, लेकिन मिजोरम, पंजाब, झारखंड और उत्तर प्रदेश में सड़क दुर्घटनाओं में घायल व्यक्तियों की तुलना में अधिक मौतें हुई हैं। मिजोरम में 64 सड़क दुर्घटनाओं में 64 लोगों की मौत हुई और 28 लोग घायल हुए, पंजाब में 6,097 सड़क

दुर्घटनाओं में 4,516 लोगों की मौत हुई और 3,034 लोग घायल हुए, झारखंड में 4,728 सड़क दुर्घटनाओं में 3,513 लोगों की मौत हुई और 3,227 लोग घायल हुए, और उत्तर प्रदेश में 33,711 सड़क दुर्घटनाओं में 21,792 लोगों की मौत हुई और 19,813 लोग घायल हुए। 2021 के दौरान दो पहिया वाहनों ने अधिकतम घातक सड़क दुर्घटनाओं (69,240 मौतों) का हिसाब लगाया है, जो कुल सड़क दुर्घटनाओं में 44.5 प्रतिशत मौतों का योगदान है, इसके बाद कारों (23,531 मौतों) (15.1 प्रतिशत) और ट्रकों-लॉरी (14,622 मौतों) (9.4 प्रतिशत) का स्थान है (भारत में दुर्घटना से मौतें और आत्महत्याएँ, 2021,122)।

भारत में सड़क श्रेणी के अनुसार दुर्घटनाएँ

पिछले कुछ वर्षों में, घातक और गम्भीर चोटों की हिस्सेदारी में वृद्धि हुई है, जबकि मामूली चोटों और किसी भी चोट की संख्या में गिरावट दर्ज नहीं हुई है। 2021 के दौरान, दुर्घटनाओं और मौतों के श्रेणीवार वितरण से पता चलता है कि देश में कुल सड़क नेटवर्क के लगभग 5 प्रतिशत के साथ राजमार्ग कुल दुर्घटनाओं के 54.6 प्रतिशत से अधिक के लिए जिम्मेदार हैं और 61.1 प्रतिशत से अधिक मौतों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। कुल दुर्घटनाओं का 31.2 प्रतिशत और कुल मौतों का 36.4 प्रतिशत राष्ट्रीय राजमार्गों पर हुआ। देश में कुल 4,12,432 दुर्घटनाएँ दर्ज की गईं, जिनमें से 1,28,825 (31.2 प्रतिशत) एक्सप्रेस-वे सहित राष्ट्रीय राजमार्गों पर हुईं, 96,382 (23.4 प्रतिशत) राज्य राजमार्गों पर हुईं और अन्य सड़कों पर शेष 1,87,225 (45.4 प्रतिशत) हुईं। कुल 1,42,163 घातक दुर्घटनाओं में से, 50,953 (35.8 प्रतिशत) राष्ट्रीय राजमार्गों पर, 34,946 (24.6 प्रतिशत) राज्य राजमार्गों पर और 56,264 (39.6 प्रतिशत) अन्य सड़कों पर थे। राष्ट्रीय राजमार्गों में भारत में सड़कों की कुल लम्बाई का केवल 2 प्रतिशत शामिल है, लेकिन 36 प्रतिशत मौतें होती हैं। सड़क की प्रति किलोमीटर मृत्यु दर राष्ट्रीय राजमार्ग पर सबसे अधिक है, प्रति वर्ष 0.67 मौतें होती हैं और यह तथ्य भविष्य के डिजाइन सम्बन्धी विचारों में मार्गदर्शक कारक होना चाहिए। भारत में राजमार्गों पर मारे जाने वालों में अधिकांश (68 प्रतिशत) पैदल यात्री, साइकिल सवार और मोटर साइकिल सवार होते हैं। छह लेन वाले राजमार्गो को छोडकर जहाँ ट्रक पीड़ितों का अनुपात बहुत अधिक है, पैदल चलने वालों और एमटीडब्ल्यू का अनुपात बहुत अधिक है। कई उच्च आय वाले देशों में राजमार्गो पर असुरक्षित सड़क उपयोगकर्ताओं की उच्च स्तर की भागीदारी अत्यधिक अप्रत्याशित है (तिवारी और अन्य, 2022)।

प्रभाव डालने वाले वाहनों के प्रकार और टक्कर के प्रकार के अनुसार सड़क दुर्घटनाएँ

2019 में सड़क दुर्घटनाओं में मारे गये (1,51,113) लोगो की कुल संख्या में से 3 प्रतिशत (56,136) दोपहिया यात्रियों में शामिल थे, जो कानूनी और दंडात्मक प्रावधानों के माध्यम से वाहनों की इस श्रेणी में अधिक नियन्त्रण उपायों की आवश्यकता को दर्शाता है। इनमें से 19,190 की मौत दूसरे दोपहिया वाहन की चपेट में आने से हुई, जबकि स्टड की

चपेट में आने से 12,480 लोगों की मौत हुई। हिट एन्ड रन, हेड ओन टक्कर, ब्रेक फ्रॉम हिट, आदि के शामिल करने के लिए टक्कर के प्रकार विश्लेषण निवारक उपायों की प्रकृति को इंगित करता है, जिन्हें दुर्घटनाओं की संख्या में कमी सुनिश्चित करने के लिए अपनाने की आवश्यकता है। 2019 में 19.5 प्रतिशत मौतों को हिट एन्ड रन दुर्घटनाओं के लिए जिम्मेदार ठहराया गया, जबकि पीछे और सिर से टकराने के कारण क्रमश: 18.4 प्रतिशत और 17.7 प्रतिशत मौतें हुई (भारत में सड़क दुर्घटनाएँ, 2021)।

आयु और लिंग के अनुसार सड़क दुर्घटनाएँ

पिछले तीन वर्षों के दौरान घातक सड़क दुर्घटना पीड़ितों की आयु प्रोफाइल से पता चलता है कि सड़क दुर्घटना के शिकार लोगों में 18-45 आयु वर्ग के युवा शामिल हैं। 18-45 आयु वर्ग में दर्ज की गई मौतों की सबसे बड़ी संख्या को दर्शाता है, जिसमें पुरुषों की संख्या 91,583 और महिलाओं की संख्या 12,554 थी। संरचना, युवा आयु वर्ग के बीच अधिक गतिशीलता के साथ मिलकर, युवा आयु समूहों के उच्च अनुपात और यातायात घातकताओं के बीच वरिष्ठ नागरिकों के कम अनुपात का परिणाम है। पिछले तीन वर्षों में दुर्घटना से होने वाली मौतों का लगभग 67.6 प्रतिशत हिस्सा इस आयु प्रोफाइल का है। सड़क दुर्घटना के शिकार ज्यादातर युवा होते हैं जो उत्पादक उम्र में होते हैं, जो उनके भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव के अलावा सड़क दुर्घटनाओं की आर्थिक लागत पर प्रमुख प्रभाव को रेखांकित करता है। देश में कुल सड़क दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों का 84.5 प्रतिशत 18-60 वर्ष के कामकाजी आयु समूह का है। 18 से कम आयु वर्ग में सड़क मौतों में प्रतिशत परिवर्तन 10.9 प्रतिशत है जो आयु प्रोफाइल में सबसे कम है। लिंगवार तुलना से पता चलता है कि मारे गये पुरुषों और महिलाओं की कुल संख्या क्रमश: 1,33,025 (86.4 प्रतिशत) और 20,947 (13.6 प्रतिशत) थी (भारत में सड़क दुर्घटनाएँ, 2021)।

सड़क दुर्घटनाओं का शहरी और ग्रामीण विस्तार

2021 के दौरान, 1,52,586 (37 प्रतिशत) सड़क दुर्घटनाओं की सूचना शहरी क्षेत्रों में और 2,59,846 (63 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में दर्ज की गई। घातक दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में, कुल 43,851 (30.8 प्रतिशत) दुर्घटनाएँ शहरी क्षेत्रों में और 98,312 (69.2 प्रतिशत) दुर्घटनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में दर्ज की गईं। शहरी क्षेत्र में दुर्घटनाओं में 47,235 (30.7 प्रतिशत) लोगों की मौत हुई, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह संख्या 1,06,737 (69.3 प्रतिशत) बताई गई। 2021 में दुर्घटनाओं और मौतों के क्षेत्रों में कमी आई है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह वृद्धि हुई है। लगभग 35 प्रतिशत घायल शहरी क्षेत्र में थे जबकि 65 प्रतिशत चोटें ग्रामीण क्षेत्र में हुई थीं। कुल मृत्यु दर में ग्रामीण क्षेत्रों का उच्च हिस्सा शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में तुलनात्मक रूप से अपर्याप्त आघात देखभाल सुविधाओं का खुलासा करता है। शहरी क्षेत्रों में दुर्घटनाओं का 37 प्रतिशत हिस्सा है, जबकि 2021 में ग्रामीण क्षेत्र का हिस्सा 63 प्रतिशत था।

इसी तरह, कुल मृत्यु का 31 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में और 69 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में हुआ। 2018 और 2019 की दो साल की अवधि के दौरान, 1 मिलियन या उससे अधिक की आबादी वाले सभी 53 शहरों की औसत मृत्यु दर प्रति 1,00,000 जनसंख्या पर 11.2 थी जो राष्ट्रीय औसत 11.6 प्रति 1,00,000 से थोड़ी कम है। उच्चतम मृत्यु दर वाले पाँच शहर इलाहाबाद, विजयवाड़ा, आसनसोल, कोल्लम और जयपुर हैं, जिनकी औसत मृत्यु दर 22 प्रति 1,00,000 है, जो राष्ट्रीय औसत से दोगुनी है। राष्ट्रीय औसत के आधे से कम मृत्यु दर वाले शहर कोलकाता, ग्रेटर मुम्बई, श्रीनगर, हैदराबाद, कुन्नूर, पूणे और अहमदाबाद हैं (तिवारी और अन्य, 2022)।

सड़क दुर्घटनाओं का समय-अन्तराल विश्लेषण

2021 में, 18:00 बजे से 21:00 बजे (रात) के बीच के समय अन्तराल में सड़क दुर्घटनाओं की अधिकतम संख्या दर्ज की गई, जो देश में कुल दुर्घटनाओं का 20.7 प्रतिशत है और यह पिछले पाँच वर्षों में देखे गये पैटर्न के अनुरूप है। एक दिन का दूसरा उच्चतम समय अन्तराल 15:00 बजे से 18:00 बजे (दिन) के बीच था, जो सड़क दुर्घटनाओं का 17.8 प्रतिशत था। आँकड़ों के अनुसार, दोपहर और शाम का समय सड़क पर रहने के लिए सबसे खतरनाक समय होता है। 0:00 बजे से सुबह 6:00 बजे के समय अन्तराल में दुर्घटनाओं की संख्या सबसे कम है। रात 8 बजे से रात 11 बजे तक एमटीडब्ल्यू और पैदल चलने वालों की मौत अपेक्षाकृत अधिक होती है, जबकि हम उम्मीद करते हैं कि यातायात की मात्रा कम होगी। आगरा और लुधियाना में किये गये सर्वेक्षणों से पता चलता है कि कम मात्रा के कारण रात में वाहनों की गति अधिक हो सकती है, पर्याप्त स्ट्रीट लाइटिंग मौजूद नहीं है और शराब के नशे में चालकों की बहुत सीमित जाँच होती है (तिवारी और अन्य, 2022)।

भारत में सड़क दुर्घटनाओं के कारक

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, दुनिया भर में सड़कों पर मारे जाने वाले 10 लोगों में से कम से कम एक व्यक्ति भारत का है। सड़क यातायात की चोंटे विश्वस्तर पर मौत का आठवाँ प्रमुख कारण है। विश्व बैंक ने अपने अध्ययन में सड़क दुर्घटना से होने वाली मौतों में निम्न और मध्यम आय वाले देशों के बड़े हिस्से पर प्रकाश डाला, भारत जैसे निम्न और मध्यम आय वाले देशों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति और सड़क उपयोग के पैटर्न के बीच एक अलग सह-सम्बन्ध को रेखांकित किया। आम तौर पर सड़क उपयोगकर्ता में चालक, पैदल यात्री, साइकिल चालक, आदि होते हैं। सड़क दुर्घटना अधिक निराशाजनक होती है क्योंकि दुर्घटना से ठीक पहले पीड़ित बहुत स्वस्थ होते हैं। एक सड़क दुर्घटना कई अवांछित स्थितियों को जन्म दे सकती है, परिणाम मृत्यु सहित, स्थायी चोटें, कमाई का नुकसान आदि।

भारत में सड़क दुर्घटना के कारक (भट्ट, 2016)

(अ) सरकार और सुरक्षा बल - सड़क निर्माण मे कमी और स्पीड ब्रेकर, सड़क में गड्ढे, सड़क की खुदाई, उचित रोशनी की भारी कमी, आवश्यक सड़क चिह्नों का अभाव, सड़क में कई बाधाएँ, चौराहे, फुटपाथ, पहाड़ी इलाकों में खतरनाक मोड़, आदि।

(ब) सड़क उपयोगकर्ता-नागरिकों के कारक - बिना हेलमेट के सवारी, ट्रिपल सवारी, तेज गति, विचलित ड्राइविंग, लापरवाह पार्किंग, नशे में गाड़ी चलाना, वाहनों का खराब रखरखाव, लापरवाह ड्राइविंग, नींद में गाड़ी चलाना, विपरीत लेन में ड्राइविंग, अनुचित मोड़, असुरक्षित लेन परिवर्तन, टेलगेटिंग और ओवरटेकिंग की अनावश्यकता, लाल बत्ती पर चलना और रुकने के संकेत, वाहनों में भारी मात्रा में सामान ले जाना, बारिश और कोहरे में ड्राइविंग, चौंकाने वाली हेडलाइट्स, घातक सड़क दुर्घटनाओं का कारण बनते हैं।

दुर्घटना के समाधान या नियन्त्रण एवं उपाय (सन्ताजीत, 2018)

सड़क दुर्घटना में प्रथम एक घंटे का समय गोल्डन समय होता है, उसी समय में व्यक्ति को अस्पताल पहुँचाया जाए ऐसा होना चाहिए एवं ऐसा करने वाला व्यक्ति को राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।

(क) सरकार एवं यातायात सुरक्षा बल द्वारा - उचित सड़क डिझाइन, सुरक्षा और चेतावनी के संकेत, यातायात संकेत, जुर्माना और दंड, ड्राइविंग लाइसेंस देने से पहले कड़ी जाँच, नशे में गाड़ी चलाने पर कड़ी सजा, जन-जागरूकता कार्यक्रम, आदि।

(ख) सड़क उपयोगकर्ता-नागरिकों द्वारा - हेलमेट का उपयोग, नागरिकों में दयालुता, वाहनों का रखरखाव, सुरक्षित वाहनों की खरीद, विकर्षणों से बचें, पर्याप्त नींद, सड़क-क्रॉसिंग पर सावधानी, वाहन के टायरों में हवा का योग्य दबाव, आदि।

नितिन गडकरीजी ने आरए रिपोर्ट 2021 में कहा है कि सड़क परिवहन और राजमार्ग मन्त्रालय सड़क सुरक्षा के क्षेत्र में जागरूकता बढ़ाने के लिए वाहन और सड़क इंजीनियरिंग के साथ-साथ शैक्षिक उपायों से सम्बन्धित कई पहल कर रहा है। मन्त्रालय मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम 2019 को लागू कर रहा है, बदलते परिवहन व्यवस्था और पर्यावरण परिदृश्य की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लम्बे समय से लम्बित संशोधन लगभग 30 वर्षों के बाद किया गया था। मन्त्रालय एनएचएआई और एनएचआईडीसीएल जैसे अपने संगठन के माध्यम से राष्ट्रीय राजमार्गों पर ब्लैक स्पॉट्स की पहचान करने और इन ब्लैक स्पॉट्स के अल्पकालिक और दीर्घकालिक सुधार पर भी काम कर रहा है। इसके अलावा, मन्त्रालय एकीकृत सड़क दुर्घटनाओं के माध्यम से दुर्घटनाओं के आँकड़े एकत्र करने के लिए भी काम कर रहा है। (आईआरएडी) ई-विस्तृत दुर्घटना रिपोर्ट (ई-डीएआर) परियोजनाएँ अन्तरराष्ट्रीय प्रथाओं के अनुरूप सड़क दुर्घटनाओं का वास्तविक समय में प्रेरक विश्लेषण प्रदान करती हैं।

सड़क सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र (2011-2020) वैश्विक स्तर पर सड़क दुर्घटनाओं और मौतों को कम करने के लिए ढाँचे के रूप में 'पांच स्तम्भों' (सड़क सुरक्षा प्रबन्धन, सुरक्षित सड़क अवसंरचना, सुरक्षित वाहन, सुरक्षित सड़क उपयोग व्यवहार और दुर्घटना के बाद की देखभाल) के अनुप्रयोग की सड़क सुरक्षा सुनिश्चित करना अब सतत विकास की आवश्यकता के रूप में पहचाना जाता है। उसी के लिए निर्धारित लक्ष्य 2020 तक सड़क यातायात दुर्घटनाओं से होने वाली मौतों और चोटों की वैश्विक संख्या को आधा करना है। इस परिदृश्य में आगे की प्रगति को निर्देशित करने के लिए सूचना प्रणालियों को बेहतर बनाने की आवश्यकता है (सिंह, 2017)।

निष्कर्ष

सड़क सुरक्षा का मुद्दा भारत के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि भारत दुनिया के सबसे बड़े सड़क नेटवर्क में से एक है। सड़क परिवहन, भारत में यातायात हिस्सा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान, दोनों ही दृष्टि से परिवहन का प्रमुख साधन है। आर्थिक विकास की उच्च दर से प्रेरित मोटरकरण की अभूतपूर्व दर और बढ़ते शहरीकरण ने समस्या को जटिल बना दिया है। हर साल, लगभग 1.5 लाख लोग भारत की सड़कों पर मरते हैं, जो औसतन 1,130 दुर्घटनाओं और 422 मौतें होती हैं, जो प्रतिदिन 47 दुर्घटनाएँ और प्रति घंटे में 18 मौतें होती हैं। यह एक गम्भीर सामाजिक समस्या है। यह आम तौर पर यातायात सुरक्षा बल एवं नागरिकों की लापरवाही के कारण होती है। इस प्रकार दोनो पक्षों को सड़क दुर्घटनाओं की संख्या को नियन्त्रित करने के लिए गम्भीर कदम उठाने होंगे। सड़क दुर्घटनाओं और सड़क सुरक्षा आवश्यकताओं के पहलुओं पर जागरूकता फैलाना एक प्रमुख एजेंडा होना चाहिए जिससे राष्ट्र निर्माण में संगठन के योगदान का दायरा बढ़े। प्रत्येक वाहन चालक को अपनी एवं अन्यों की सुरक्षा का ध्यान रखने की फर्ज है।

सन्दर्भ

अन्तरराष्ट्रीय सड़क फेडरेशन, 2021, *वार्षिक प्रतिवेदन*

आहुजा, राम (2016) *सामाजिक समस्याएँ,* रावत पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली, पृ. 1,3

भारत में सड़क दुर्घटनाएँ (2021) सड़क परिवहन और राजमार्ग मन्त्रालय, परिवहन अनुसन्धान, नयी दिल्ली, पृ. 13, 62

भारत में दुर्घटना से मौतें और आत्महत्याएँ (2021) राष्ट्रीय अपराध रेकॉर्ड ब्यूरो, गृह मन्त्रालय, नयी दिल्ली, पृ. 122

भट्ट, यशस्विनी राजेंद्र (2016) 'भारत में सड़क यातायात दुर्घटनाओं के कारण और समाधान', *आईजेआईटीआर,* 4(6), अक्टूबर-नवम्बर, पृ. 4985-4988

सन्ताजीत (2018) 'भारत में सड़क यातायात दुर्घटनाएँ : एक सिंहावलोकन', *आईजेसीबीआर,* 4(4), पृ. 36-38

सड़क यातायात चोट निवारण पर विश्व रिपोर्ट (2004) डब्ल्यूएचओ, जिनेवा

सड़क सुरक्षा 2018, पर वैश्विक स्थिति प्रतिवेदन, विश्व स्वास्थ्य संगठन 2021

सिंह, पूनम (2017) *भारत में सड़क सुरक्षा को आगे बढ़ाना - कार्यान्वियन प्रमुख है,* राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और तन्त्रिका विज्ञान संस्थान, बेंगलुरू, पृ. 5

तिवारी, गीतम और अन्य (जनवरी 2022) *भारत में सड़क सुरक्षा, स्थिति प्रतिवेदन 2021,* टीआरआईपी सेंटर, आईआईटी, दिल्ली, पृ. 2, 3, 62

वेंकटाचलम्, आर.ए. (2017) *भारत में सड़क सुरक्षा को आगे बढ़ाना : कार्यान्वियन ही कुंजी है,* राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और तन्त्रिका विज्ञान संस्थान, बेंगलुरू, पृ. 6

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 160-171)
UGC-CARE (Group-I)

कृषि पर्यटन :
ग्रामीण विकास एवं पर्यटन का एक उभरता क्षेत्र

आसीन खाँ* एवं अनिल कुमार यादव†

भारत की बहु-संख्यक आबादी कृषि क्षेत्र में संलग्न है एवं यहाँ पर कृषि कार्य परम्परागत तरीकों से लेकर आधुनिक पेशेवर तरीकों तक से किया जाता है। भारत एक बहु-सांस्कृतिक देश है और यहाँ मौसम, खान-पान, रंग-रूप, पहनावे, संस्कृति और धर्मों की इतनी विविधता है जो इस संसार में कहीं ओर देखने को नहीं मिलती है। शायद इसी वजह से भारत को पर्यटकों का स्वर्ग कहा जाता है। हमारे देश की अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र के एक प्रमुख भाग के साथ-साथ राजस्व तथा विदेशी मुद्रा के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में पर्यटन की महत्ता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इस क्षेत्र में मौजूद सम्भावनाओं के कारण बारहवीं पंचवर्षीय योजना में इसे प्राथमिकता क्षेत्र में शामिल किया गया। हाल के वर्षों में देश में ग्रामीण एवं कृषि पर्यटन की ओर भी काफी ध्यान दिया जाने लगा है। वस्तुतः कृषि पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन का एक उभरता हुआ प्रकार है जिसका आकर्षण प्रत्येक आयु-वर्ग के लोगों में तेजी से बढ़ रहा है। अब नीति-निर्माताओं के द्वारा कृषि पर्यटन को समन्वित आर्थिक विकास की एक रणनीति के रूप में अपनाया जाने लगा है। भारत सरकार द्वारा पिछले कुछ वर्षों में उठाए गए कदमों को ग्रामीण पर्यटन को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने के गम्भीर प्रयासों के रूप में माना जा सकता है। राज्य स्तर पर ग्रामीण पर्यटन के विशिष्ट स्वरूप - कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने में राजस्थान

---

*प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,अलवर (राजस्थान)
E-mail: aseenalwar@gmail-com
†प्रोफेसर, अर्थशास्त्र एवं संयुक्त निदेशक, आयुक्तालय, कॉलेज शिक्षा, जयपुर (राजस्थान)

सरकार और प्रदेश के कई युवाओं ने मिसाल पेश की है। प्रस्तुत आलेख में ऐसे ही कुछ उल्लेखनीय प्रयासों को अध्ययन की विषय-वस्तु बनाते हुए उन साहसी युवाओं के योगदान को रेखांकित किया गया है।

बीज शब्द : कृषि पर्यटन, ग्रामीण विकास, ग्रामीण संस्कृति, परम्पराएँ, खेती-किसानी, जैविक खेती, सरकारी प्रयास, आर्थिक विकास।

प्रस्तावना

कृषि पर्यटन के अन्तर्गत पर्यटकों एवं उपभोक्ताओं का रुझान खेती-किसानी को देखने, ग्रामीण जीवनशैली का अनुभव करके उसे जानने की चाह और खाने की वस्तुओं से जुड़ा होता है जिनका उपभोग वे दैनिक रूप से करते हैं; उससे भी अधिक आजकल लोगों में ग्रामीण विरासत को नजदीक से देखने और उनके साथ रहने की प्रवृत्ति बढ़ी है। खाद्य शृंखला के आरम्भिक स्रोत (खेत) से लेकर उन वस्तुओं के पैदा होने तक की खेती की समस्त प्रक्रिया को निकट से देखने और जानने की इच्छा से ही एग्रो-टूरिज्म का विचार और अवधारणा अस्तित्व में आई है जो अब फूलने-फलने लगी है। शहरों में रहने वाले लोगों का रुझान अब छुट्टियों में फार्मिंग (खेती) को देखने की ओर बढ़ा है। बड़े शहरों के बहुत से बच्चे यह तक नहीं जानते हैं कि दूध कहाँ से आता है और न ही उनको मूँग, अरहर, चने आदि के पौधों के बारे में पता होता है। फलों के बाग में फलों को विभिन्न रूपों में देखना और हाथ से तोड़ने का रोमांच भी बच्चों के साथ शहरी मां-बाप को होता है। पशुओं से दूध निकालने, दही बनाने, दही से मक्खन निकालने, उससे पनीर एवं अन्य उत्पाद बनाने आदि की प्रक्रिया की समझ से भी पर्यटक लाभान्वित होते हैं। एक पर्यटक के रूप में देशी-विदेशी और शहरी लोगों का किसान के साथ खेतों में रहकर खेती-किसानी का आनन्द लेने का अनुभव उनको परस्पर जुड़ाव की अनुभूति करवाता है (भास्कर, 2017)।

गाँव में अस्थायी तौर से रहकर भी किसानों की जिन्दगी को अनुभव करके बहुत कुछ सीखा-समझा जा सकता है। कृषि उत्पादों में जैविक खेती और उसके उत्पाद खरीदकर उपयोग किए जा सकते हैं। गाँवों में खेतों से ताजा सब्जियाँ एवं फल निकालना, घोड़े की सवारी, ऊट की सवारी, बैलगाड़ी पर बैठना, इक्का-तांगे पर बैठकर घूमना और ताजा शहद को सीधे छत्ते से निकालकर चखना, हस्तशिल्प की वस्तुओं को वहाँ से खरीदने, आदि की सुविधा मिलती है। पर्यटक खुद किसान बनकर खेतों में रहता है तो उसे खेती-किसानी का वास्तविक अनुभव मिलता है। खेती के कामों में सहयोग करना और नजदीक से खेती के हुनर सीखना भी कृषि पर्यटन को प्रोत्साहित कर रहा है। अब एग्रो टूरिज्म छोटे किसानों और गाँव के लोगों की अतिरिक्त आय के महत्वपूर्ण साधन के रूप में विकसित हो रहा है। इससे मुश्किलों के दौर में चल रहे किसानों की खेती के साथ अन्य मदों से भी आय होने लगी है। खेत पर ही उनके उत्पादों की बिक्री और उपभोक्ताओं को ताजा कृषि उत्पाद मिल जाता है। एक ओर जहाँ लोग कृषि पर्यटन की ओर खिंचने लगे हैं, वहीं किसानों को दोहरा लाभ मिलने लगा है। सरकार का

भी पूरा जोर किसानों की आमदनी बढ़ाने की कोशिशों पर है। कृषि पर्यटन के विकास से इसे और बल मिलेगा।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कृषि पर्यटन के बढ़ते आकर्षण और ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को समझना है। मुख्य उद्देश्य के साथ-साथ अन्य उद्देश्य भी हैं - देश में एग्रो टूरिज्म के विकास और जैविक कृषि के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को जानना। राजस्थान में कृषि पर्यटन के विकास की दिशा में सरकारी प्रयासों को उजागर करना। कृषि पर्यटन और जैविक खेती के क्षेत्र में राज्य के युवाओं के बढ़ते रुझान और उनके योगदान की कहानियों को सामने लाना।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की अध्ययन विधि विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है जो मुख्य रूप से द्वितीयक समंकों पर आधारित है। हमने इस हेतु विभिन्न पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं एवं प्रकाशित रिपोर्ट्स का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त राजस्थान में जैविक कृषि तथा एग्रो- टूरिज्म के क्षेत्र में सफलतापूर्वक काम कर रहे युवाओं और उनके फार्म्स को देखने-समझने के अपने अनुभवों को भी अध्ययन में स्थान दिया है।

साहित्यावलोकन

सुकान्ता सरकार (2010) ने 'एग्री-टूरिज्म इन इंडिया : ए वे ऑफ रूरल डेवलपमेंट' में ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों के आर्थिक जीवन पर कृषि-पर्यटन के प्रभाव का आकलन करने का प्रयास किया है। उनके अध्ययन के परिणाम बताते हैं कि आजकल किसानों को खेती-किसानी के काम में अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, इस दृष्टिकोण से कृषि पर्यटन किसानों के लिए अतिरिक्त आय का एक अच्छा स्रोत हो सकता है। पत्र में इस बात पर जोर दिया है कि कृषि-पर्यटन में किसानों के लिए आय के अवसर पैदा करने की क्षमता है और साथ ही यह ग्रामीण विकास के लिए नया पथ का प्रदर्शक बन सकता है।

आई. कृष्णा मूर्ति (2014) ने अपने शोध पत्र 'इकोनॉमिक बेनीफिट्स ऑफ एग्रीकल्चरल टूरिज्म : अप्रेजल एंड प्रोस्पेक्टस' में इस बात को स्पष्ट किया है कि ग्रामीण पर्यटन की एक नयी अवधारणा कृषि पर्यटन के रूप में उभर कर आई है जो पर्यटन को खेती के साथ एकीकृत करती है। इस पत्र में, अनुभवजन्य रूप से यह आकलन करने का प्रयास किया गया है कि कृषि और पर्यटन में बढ़ोतरी अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में कैसे योगदान दे सकती है? सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि पर कृषि और पर्यटन के प्रभाव का आकलन करने के लिए बहु-रेखीय प्रतीपगमन पद्धति का उपयोग किया है।

सौमी चटर्जी एवं एम. दुर्गा प्रसाद (2019) ने 'द इवोल्यूशन ऑफ एग्री-टूरिज्म प्रेक्टिस इन इंडिया : सम सक्सेस स्टोरीज' में बताया है कि भारत में दर्शनीय स्थलों की यात्रा के पैकेज से कुछ अलग अनुभव करने के लिए पर्यटकों के बीच फार्म का दौरा एवं फार्म स्टे अब धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रहा है। शोध पत्र भारत के विभिन्न सफल फार्मों पर ध्यान केन्द्रित करता है और फार्मों में सुस्थिरता के कारकों का विश्लेषण करने के लिए उन्हें एकीकृत करता है। उन्होंने अपने अध्ययन में सफलता की कई कहानियों को बताया है। अध्ययन के नतीजों के रूप में दर्शाया है कि कृषि पर्यटन अपने छोटे प्रयासों तथा अनुसन्धान के बल पर निश्चित रूप से किसानों के जीवन में बदलाव ला सकता है और उपभोक्ताओं को भी इसका लाभ मिलेगा।

प्रमोद कुमार सिंह एवं के.एस. नेताम (2019) ने अपने शोध आलेख 'भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि पर्यटन की भूमिका' में बताया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि और पर्यटन सम्मिलित रूप से दोनों ऐसे क्षेत्र हैं जिनसे सबसे अधिक रोजगार प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ में जैविक खेती और उससे जुड़े उत्पाद कहीं अधिक कारगर हैं। शोध आलेख में भारतीय अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में कृषि क्षेत्र में कृषि-पर्यटन की सम्भावनाओं की सामयिक समीक्षा की है।

एम. सुनीता (2021) ने 'रोल ऑफ एग्रोटूरिज्म इन रूरल डवलपमेंट' में ग्रामीण क्षेत्रों की सक्रियता में कृषि पर्यटन की बड़ी भूमिका को उजागर किया है। कृषि पर्यटन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि स्थानीय समुदायों में जागरूकता को मजबूत करके आय के इस गैर-कृषि स्रोत के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

मुख्य अध्ययन एवं विमर्श

महात्मा गांधी का कथन है कि "भारत गाँवों में बसता है।" वस्तुत: भारत का ग्राम्य जीवन ही असल भारत की सही तस्वीर प्रस्तुत करता है। हमारे गाँव, देश की संस्कृति और परम्पराओं का खजाना हैं। महानगरों की गहमा-गहमी से दूर गाँवों में जीवन को अपेक्षाकृत सहज गति से जीने का अनुभव मन में नयी स्फूर्ति का संचार करता है। पश्चिमी देशों में गाँव तो हैं लेकिन आधुनिकता के कारण वहाँ प्राचीन परम्पराओं एवं संस्कृति का ह्रास हुआ है, यहाँ तक कि कुटुम्ब व्यवस्था का भी लोप हो चुका है। इसके उलट हमारे देश में गाँव की सौंधी मिट्टी, कच्चे घर, खेत-खलिहान उन पर्यटकों को भी आकर्षित करते हैं जो शहरों की चकाचौंध और आपा-धापी से दूर; सुकून से कुछ समय बिताना चाहते हैं (सेतिया, 2015)।

भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार के अवसर सृजित करने और विदेशी मुद्रा अर्जित करने में पर्यटन क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। विदेशी और घरेलू पर्यटकों की संख्या में साल-दर-साल वृद्धि इस बात का पुख्ता प्रमाण है। वर्ष 2016 में 88 लाख विदेशी पर्यटक भारत आए थे जिनसे देश को 22.92 अरब डॉलर विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। यह सही है कि दुनियाभर में पर्यटन से जितनी विदेशी मुद्रा अर्जित होती है उसका 2 प्रतिशत से भी कम भाग भारत को प्राप्त हो रहा है इसलिए ही सरकार देश में पर्यटन को बढ़ाने के प्रयासों को महत्त्व देने में लगी

है। विश्व के कई विकसित और विकासशील देश ऐसे हैं जो भौगोलिक क्षेत्रफल या जनसंख्या के दृष्टिकोण से भारत से छोटे हैं लेकिन वहाँ बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक जाते हैं। यही वजह है कि सरकार ने अधिकाधिक विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए 'इनक्रेडिबल इंडिया' जैसे अभियानों का सहारा लिया और साथ ही पर्यटन के नये-नये रूप, जैसे - इको टूरिज्म, हेल्थ टूरिज्म, हेरिटेज टूरिज्म और ग्रामीण पर्यटन को विकसित करने पर बल दिया है। सरकार की पहल और निजी उद्यमियों की दिलचस्पी के परिणामस्वरूप ग्रामीण पर्यटन के अन्तर्गत अब धीरे-धीरे कृषि पर्यटन भी लोकप्रिय होने लगा है (शर्मा, 2017)।

कृषि-क्षेत्र में आमदनी के घटते स्तर से गाँवों में भी शहरीकरण की बीमारी के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। कोविड-19 महामारी के दौरान देशव्यापी लॉक डाउन के कारण असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों को बड़े पैमाने पर रोजगार से वंचित होना पड़ा, जिनमें अधिकांश का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि से है। भारत में बढ़ती महंगाई, रोजगार को बचाए रखने की चुनौती और शहरी जीवनशैली के दबावों से उत्पन्न प्रति-शहरीकरण (रिवर्स माइग्रेशन) के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं। कृषि एवं ग्रामीण पर्यटन उन गिनी-चुनी गतिविधियों में शामिल है जिनसे इस समस्या का समाधान हो सकता है। कृषि पर्यटन एक वैकल्पिक अवसर प्रदान करता है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में खेती और पशुपालन कार्य को करते हुए उसमें ही कुछ हटकर करने के मौके मिलते हैं और किसानों एवं युवाओं में पेशेवर सोच का विकास होता है।

ग्रामीण एवं कृषि पर्यटन की अवधारणा

कृषि पर्यटन की कोई एक निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा तो नहीं है परन्तु विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार फार्महाउस में आवास की पेशकश, भोजन उपलब्ध कराना और विभिन्न कृषि कार्यों में पर्यटकों की भागीदारी का सुचिन्तित आयोजन एवं सहायता करना कृषि पर्यटन में शामिल है। विश्व में कृषि पर्यटन (एग्रो टूरिज्म) की पहल 1990 के दशक के आरम्भिक वर्षों में सबसे पहले यूरोप और पूर्वी अमेरिका में हुई और इसके बाद यह अवधारणा दूसरे देशों तक पहुँची। अब एग्रो टूरिज्म की अवधारणा ऑस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिका एवं एशिया के कई देशों में तेजी से लोकप्रिय होती जा रही है। 1985 में इटली में पारित एक कानूनी प्रावधान के द्वारा किसानों की आय में वृद्धि के लिए अन्य साधनों से अतिरिक्त आमदनी की कुछ नीतियाँ और व्यवस्थाएँ बनाई गई थीं। सर्वप्रथम इटली में कृषि पर्यटन के लिए 'एग्रो टूरिज्मो' शब्द का प्रयोग किया गया, यही शब्द आगे चलकर 'एग्रो टूरिज्म' नाम से लोकप्रिय हुआ (सिंह, 2017)।

भारत में ग्रामीण पर्यटन की अवधारणा सर्वप्रथम 2002 की राष्ट्रीय पर्यटन नीति में पेश की गई थी। उल्लेखनीय है कि इस नीति में ही एग्रो-रूरल टूरिज्म को प्रोत्साहित करने का विचार दिया गया था। नीति में ग्रामीण पर्यटन को इन शब्दों में परिभाषित किया गया है - "पर्यटन का वह रूप जो ग्रामीण जीवन, कला, संस्कृति और ग्रामीण स्थलों पर धरोहर को

प्रदर्शित करता है, जिससे स्थानीय समुदाय को आर्थिक और सामाजिक लाभ प्राप्त होता है और जो सुखद पर्यटन अनुभव के लिए पर्यटकों और स्थानीय लोगों के बीच विचार विनिमय में मदद करता है; उसे ग्रामीण पर्यटन कहा जा सकता है।" तत्कालीन योजना आयोग ने भी नौवीं पंचवर्षीय योजना में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए जिन छह क्षेत्रों की पहचान की उनमें ग्रामीण पर्यटन को प्रमुख स्थान दिया गया। इस अवधारणा को अमलीजामा पहनाते हुए वर्ष 2002 में सरकार ने ग्रामीण पर्यटन योजना बनाई जिसके अन्तर्गत ग्रामीण अंचल में बुनियादी सुविधाएँ विकसित करने पर जोर दिया। आगे चलकर इसे एंडोजीनस टूरिज्म प्रोजेक्ट के तौर पर एक पायलट परियोजना के रूप में, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के सहयोग से लागू किया गया। दसवीं पंचवर्षीय योजना में भी ग्रामीण पर्यटन पर विशेष बल देते हुए कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, असम, नागालैंड, त्रिपुरा और उत्तरांचल में ग्रामीण पर्यटन परियोजनाएँ विकसित करने की शुरूआत हुई। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान पाँच-छह गाँवों के ग्रामीण पर्यटन क्लस्टर विकसित करने की रणनीति तैयार की गई (शर्मा, 2017)।

भारत में कृषि पर्यटन की शुरूआत सबसे पहले महाराष्ट्र के बारामती से हुई। इसका श्रेय महाराष्ट्र के एक कृषि उद्यमी पांडुरंग तवारे द्वारा 2004 में की गई पहल को जाता है। महाराष्ट्र के बारामती में वर्ष 2005 में, कृषि पर्यटन विकास निगम का गठन किया गया। कृषि पर्यटन के अन्तर्गत शहरी लोग ग्रामीण परिवेश में रहते हैं, स्वयं को खेत से खाने की मेज तक की प्रक्रिया के अनुभव से गुजारते हैं और स्थानीय संस्कृति को जानने एवं समझने के अवसरों से रूबरू होते हैं। इसके लिए किसान घर और खेत को उसी हिसाब से तैयार करता है और आमदनी एवं आजीविका के एक अतिरिक्त जरिये से लाभान्वित होता है। यह पूरी तरह से एक नये पेशेवर बिजनेस मॉडल पर आधारित है जिसे परिवार, स्थानीय समुदाय तथा प्रशासन के सहयोग से चलाया जाता है।

विभिन्न हितधारकों के दृष्टिकोण से कृषि पर्यटन के लाभ

किसानों के दृष्टिकोण से : कृषि एवं सहायक कार्यों के विस्तार करने के अवसरों की उपलब्धता से किसानों की आमदनी बढ़ेगी। खेती के साथ-साथ पर्यटन व्यवसाय के विकास से कृषि क्षेत्र संकट से उबरकर आत्मनिर्भर हो सकेगा। एग्रो टूरिज्म का मॉडल व्यावसायिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है, इसलिए खेती-बाड़ी का काम किसानों की नयी पीढ़ी के लिए आकर्षक बना रह सकता है। स्थानीय स्तर पर प्रबन्धन, कौशल विकास और उद्यमिता की भावना का प्रसार किसानों की भावी पीढ़ियों के उत्थान के लिए नयी रोशनी दिखाने का काम कर सकेगा।

पर्यटकों के दृष्टिकोण से : आज के दौर में शहरी प्रदूषण से मुक्त शान्त एवं साफ प्राकृतिक वातावरण का अनुभव करना बड़ा मुश्किल-सा होता जा रहा है। कृषि पर्यटन लोगों की इस इच्छा को पूरा करने का काम कर रहा है। शहरी माहौल में पले-बढ़े बच्चों में गाँव-देहात की समझ, बच्चों में सीखने-सिखाने की प्रवृत्ति का विकास, रहने-खाने में काफी कम खर्च

करके खुलकर आनन्द लेने तथा भारत की ग्रामीण संस्कृति और परिवेश को करीब से समझने का अवसर मिलना अपने आप में बड़े फायदे की बात है।

स्थानीय समुदाय के दृष्टिकोण से : एग्रो-टूरिज्म से स्थानीय कृषि उत्पादों के लिए एक नये प्रकार के बाजार का विकास होता है और साथ ही लोगों में जागरूकता बढ़ती है। नयी वैकल्पिक या पूरक आय से ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन-स्तर में सुधार होता है। पर्यटकों के सम्पर्क के कारण दूसरे देशों की संस्कृति को समझने और देश-दुनिया से जुड़ने का अवसर मिलता है जिसकी वजह से स्थानीय संस्कृति के संरक्षण और उसे पुनर्जीवित करने की भावना उत्पन्न होती है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से : पर्यटकों के लिए ग्रामीण पर्यटन का सबसे बड़ा आकर्षण 'गाँवपना' होता है। गाँव में एक कुम्हार का काम देखने का इच्छुक पर्यटक मोटर चालित चाक पर बन रहे बर्तनों को देखने के लिए नहीं आता है। उसके आकर्षण का विषय तो एक परम्परागत कुम्हार की कला का सजीव दर्शन, किसान के साथ खेतों में काम करने और उसके झोपड़े में रहने के आनन्द के लक्ष्य से प्रेरित होता है। इसी तरह अलग-अलग क्षेत्रों की सांस्कृतिक विशेषता को जाहिर करने वाली वेशभूषा, केश-सज्जा, आभूषण इत्यादि जो धीरे-धीरे आधुनिकता की चमक में 'गँवारपन' की निशानी करार दिये जाने के कारण धीरे-धीरे लुप्त हो रहे थे; अब एकाएक सजीव होने लगे हैं। पूरा राजस्थान ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ सांस्कृतिक विरासत की धरोहरों की उघड़ती परतों को पर्यटन के गोंद ने फिर से चिपकाने का काम किया है और पर्यटकों की रुचियों ने जिन पर रंग-रोगन किया है। इस सांस्कृतिक संरक्षण का एक अभिन्न हिस्सा ग्रामवासियों में उनकी ऐतिहासक विरासत को लेकर पैदा होने वाला गौरव-भाव है जो पर्यटकों के लिए उनके गाँवपन को और ज्यादा नैसर्गिक और आकर्षक बनाता है।

कृषि पर्यटन के विकास में सहायक कारक

पर्यटकों के देखने के लिए कुछ खास होना चाहिए; जैसे - पशु, पक्षी, खेत और प्राकृतिक सुन्दरता। नयी उन्नत कृषि तकनीक, फल एवं सब्जियों की विविध किस्में, विशिष्ट स्थानीय संस्कृति, खास पोशाक, तीज-त्यौहार और ग्रामीण खेल कृषि पर्यटकों में पर्याप्त रुचि पैदा कर सकते हैं।

पर्यटकों की सेवा के लिए उचित व्यवस्था कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए जरूरी है। जैसे - पतंग उड़ाना, ऊट-घोड़े या ट्रैक्टर की सवारी, मिलकर खाना बनाना, मछली पकड़ना, कृषि कार्यों और तैराकी में भाग लेना, ऊट गाड़ी या बैलगाड़ी की सवारी, लोक गीतों-नृत्यों का आनन्द और ऐसी दूसरी गतिविधियाँ जिनमें पर्यटक भी भाग ले सकें और आनन्द महसूस करें।

पर्यटकों के खरीदने के लिए कुछ खास हो तो निश्चित रूप से वे आकर्षित होते हैं; जैसे - ग्रामीण शिल्प, ताजा कृषि उत्पाद और स्थानीय विशेषताओं से भरी सामग्रियाँ जो वे एक यादगार के तौर पर खरीदना और ले जाना पसन्द करें।

बाहर के पर्यटकों के अनुकूल स्वस्थ एवं उदार सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण उनकी निरन्तरता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। पर्यटकों की भावनाओं को आदर देते हुए उनके साथ अच्छा व्यवहार कृषि पर्यटन को लोकप्रिय बनाने का काम करता है।

कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने की दिशा में राजस्थान सरकार के कुछ उल्लेखनीय प्रयास

राजस्थान में जैसलमेर से 45 किलोमीटर दूर सगरा-भोजका क्षेत्र में सरकार के कृषि विभाग ने गुजरात की अतुल कम्पनी के सहयोग से भोजका में खजूर का फार्म तैयार किया। भारत-इजराइल परियोजना के अन्तर्गत वर्ष 2008 में जैसलमेर के भोजका गाँव में सऊदी अरब की किस्म का इजरायली तकनीक से रेगिस्तान में खजूर की पैदावार करने हेतु लगभग 100 हेक्टेयर में 15 हजार से अधिक पौधे लगाए गए। अब यहाँ पर खजूर की 9 किस्में लगाई जाती हैं। सगरा-भोजका के सेंटर ऑफ एक्सीलेंस के इस खजूर फार्म में टेंट लगाकर देशी-विदेशी पर्यटकों को ठहराया जाता है। एग्रो टूरिज्म की दिशा में इसे पहले सरकारी प्रयास के रूप में माना जा सकता है। राजस्थान सरकार टोंक जिले के देवड़ावास और थडोली में दो अलग-अलग एग्रो टूरिज्म सेंटर विकसित करने की योजना पर काम कर रही है। सेंटर ऑफ एक्सीलेंस के तहत बीसलपुर बाँध के किनारे बसे थडोली में सुपारी एवं नारियल के एग्रो टूरिज्म सेंटर को गोवा की तर्ज पर विकसित करने की योजना है। इसी प्रकार माउंट आबू में फ्लोरीकल्चर सेंटर को एग्रो टूरिज्म का केन्द्र बनाने की भी योजना है इसके अलावा राजस्थान सरकार बूंदी, झालावाड़, सवाई माधोपुर, धौलपुर, कोटा एवं बस्सी में स्थित सेंटर ऑफ एक्सीलेंस में एग्रो टूरिज्म सेंटर के रूप में विकसित करने की योजना पर काम कर रही है।

राजस्थान में कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने वाले तीन उल्लेखनीय उदाहरण

राजस्थान में शेखावटी क्षेत्र के झुंझुनूं जिले की पहचान हैरिटेज हवेलियों के कारण है। इन्हीं हवेलियों ने यहाँ करोड़ों रुपए की आमदनी भी दी है। अब इन हवेलियों वाले जिले में फाइव स्टार जैसी सुविधाओं वाला आधुनिक केन्द्र विकसित किया जा रहा है। एग्रो टूरिज्म के हिसाब से इसे खेतों के बीच तैयार किया गया है, जहाँ चारों तरफ फलों का बगीचा है। जब आप यहाँ आएँगे तो ऐसा लगेगा मानो किसी आधुनिक गाँव में आ गए हैं। झुंझुनूं के मंडावा, बुडाना, उदयपुरवाटी और नवलगढ़ टूरिस्ट की पहली पसन्द हैं। यहाँ के किसान और युवा खेतों में एग्रो टूरिज्म की पहल कर रहे हैं। इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर चुके जुनैद पठान और उनके पिता सेवानिवृत्त फौजी जमील पठान ने वर्ष 2021 में इसकी शुरुआत की। झुंझुनूं जिले से 11 किलोमीटर दूर बुड़ाना गाँव में जुनैद पठान ने 60 बीघा खेत में मौसम्बी और कीनू का बगीचा लगाया। 2020 में उसने दो झोपड़े तैयार कर खेत को एग्रो टूरिज्म के लिए विकसित

करना शुरू किया। इस दौरान कुछ टूरिस्ट आकर यहाँ रुकने लगे। धीरे-धीरे लोग बढ़ने लगे तो दो और झोपड़े बना दिए। 2021 में किसी परिचित के सहयोग से दिल्ली का एक ग्रुप यहाँ ठहरा तो उन्होंने इस कॉन्सेप्ट को बहुत सराहा और सुझाया कि इसे बढ़ाना चाहिए।

जुनैद और जमील पठान, दोनों पिता-पुत्र ने मिलकर 60 बीघा जमीन में फलों का बगीचा तैयार किया। उन्होंने फार्म में लगभग 8 हजार पौधे लगाए हैं जिनमें चार हजार पौधे कीनू के, 3100 पौधे मौसम्बी और एक हजार से अधिक पौधे नींबू के हैं। जुनैद ने अपने पिता के साथ मिलकर फलों के बगीचों में ही एक छोटा-सा गाँव तैयार कर लिया है। पर्यटक यहाँ रहकर गाँव जैसा अनुभव करें इसके लिए 10 झोपड़े बना रखे हैं; उन्हें परम्परागत भोजन परोसा जाता है और खाना भी चूल्हे पर पकता है। इसके अलावा हॉर्स राइडिंग के लिए घोड़े भी पाल रखे हैं। भीड़-भाड़ से दूर आकर यहाँ लोग काफी शान्ति महसूस करते हैं। खेतों में फलों के बगीचे और उनके बीच झोपड़ी में रहना, बगीचे की शुद्ध हवा और वातावरण यहाँ आने वाले पर्यटकों को खूब भा रहा है। यहाँ की खास बात यह है कि खेत में ही पर्यटकों के लिए बाजरा, मक्का और गेहूँ की खेती भी करते हैं। इन्हीं फसलों से बने आटे की रोटी खिलाई जाती है। हरी सब्जी और जूस भी बगीचे में लगे फलों से निकालकर ताजा-ताजा पिलाया जाता है। वर्ष 2022 में यहाँ पर पर्यटकों के 10 से ज्यादा ग्रुप आए।

भीलवाड़ा की पूर्वा जिन्दल ने मुम्बई से फैशन डिजाइनिंग के बाद अपने पिता का टेक्सटाइल का व्यवसाय सँभाला, लेकिन खुद के दम पर कुछ करने की चाह के कारण अपनी एक अलग राह बना ली। 29 वर्षीय पूर्वा ने पिता के व्यवसाय को छोड़कर ऑर्गेनिक खेती करने और कृषि पर्यटन को लोकप्रिय बनाने के विचार पर काम किया। अब वह कुछ सालों से भीलवाड़ा के ओजियारा गाँव में ऑर्गेनिक खेती और एग्रो टूरिज्म को बढ़ावा दे रही है। लोगों को अपने खेतों पर आमन्त्रित करके एग्रो टूरिज्म को बढ़ाया जा रहा है। पूर्वा और उसके परिवार का खेती-बाड़ी से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं रहा। उसने किसानों और एग्रीकल्चर से जुड़े लोगों से बात करके जैविक खेती के बारे में जानकारी ली। धीरे-धीरे काम करते हुए रास्ता बनता गया। उसने शुरूआत में 14 बीघा जमीन को 5 साल की लीज पर लेकर अपने काम की शुरूआत की। जमीन को परम्परागत तरीकों से तैयार करने के साथ ही गोबर की खाद और अन्य ऑर्गेनिक पदार्थों के छिड़काव का उपयोग किया गया। उन्होंने अपनी टीम में सात लोगों को मासिक वेतन पर रखा तथा अन्य मजदूरों को दिहाड़ी पर काम पर लगाया।

पूर्वा जिन्दल ने ऑर्गेनिक खेती के साथ ही लोगों को जागरूक करने के लिए एग्रो टूरिज्म भी शुरू किया है। महीने में दो दिन शहर के लोगों को खेतों पर बुलाया जाता है तथा अपने फार्म पर परम्परागत रूप से उन्हें खाना बनाने, खेती और सब्जियों के बारे में जानकारी दी जाती है। लोग खेतों में काम में सहयोग कर सकते हैं और फार्म से स्वयं सब्जियाँ तोड़कर ला सकते हैं। शहर के लोगों के लिए मिट्टी के चूल्हे पर भोजन बनाकर परम्परागत तरीके से परोसा जाता है। अब यहाँ के लोगों का रुझान धीरे-धीरे ऑर्गेनिक उत्पादों की ओर होने लगा है। उसने

लोगों तक शुद्ध ऑर्गेनिक सब्जी पहुँचाने के लिए वॉट्सएप पर 'साखी' नाम से ग्रुप बनाया। अपने फार्म से पूर्वा की प्रतिदिन लगभग छह से सात हजार रुपये की आमदनी होने लगी है।

राजस्थान की परम्परागत खेती और ग्रामीण जीवनशैली अब बाहर के सैलानियों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बन रही है। इसी आकर्षण को ध्यान में रखते हुए जयपुर से लगभग 35 किलोमीटर दूर 'खोरा श्यामदास' में सीमा सैनी और इन्द्रराज जाट ने मिलकर एक मिनी विलेज फार्म विकसित किया है। एग्रीकल्चर में स्नातकोत्तर तक पढ़ाई करने के बाद इन दोनों युवाओं ने ऑर्गेनिक और मॉडर्न फार्मिंग को कैरियर बनाया। एग्रीकल्चर में एमएससी सीमा सैनी और हॉर्टिकल्चर में बीएससी इन्द्रराज इस मिनी विलेज को चला रहे हैं। उनके फार्म पर ऑर्गेनिक सब्जियों, ऑर्गेनिक चारे और फलों का उत्पादन किया जा रहा है। दोनों ने 2017 में, अपनी पढ़ाई पूरी होने के बाद इसे शुरू किया।

सीमा सैनी और इन्द्रराज का कहना है कि शहरों के लोगों में प्रकृति से जुड़ने और ग्रामीण जीवनशैली को नजदीक से जानने का चलन बढ़ रहा है। उनके अनुसार एग्रो टूरिज्म यूनिट शुरू करने के लिए खुद के फार्म पर थोड़े बहुत बदलाव करके आसानी से शुरू किया जा सकता है। शहरों के लोग लगातार उनके फार्म की विजिट करने आ रहे हैं। इस फार्म पर सब कुछ आर्गेनिक रूप से पैदा किया जा रहा है। यहाँ कम खर्च में पर्यटक और शहर के लोग ग्रामीण जीवन को जीने का अहसास कर सकते हैं। उन्होंने इस फार्म पर पर्यटकों के लिए इको फ्रेंडली झोपड़ी तैयार की है, जो परम्परागत तरीके से ईंट-गारे से बनाई है और इनकी छतों को सरकंडों से बनाया गया है। एग्रो टूरिज्म के इस मॉडल में एक ही जगह ऑर्गेनिक खेती के साथ डेयरी, पशुपालन, उन्नत किस्म का चारा और रहने की सुविधा विकसित की है। ये युवा एग्रो टूरिज्म केन्द्र के साथ-साथ प्रकृति से जुड़ने और किसानों की सहायता हेतु एक संस्था का संचालन भी कर रहे हैं, जो इनके काम में विविधता और सामाजिक सरोकारों से इनके जुड़ाव को दर्शाता है।

अन्त में, देश की जनसंख्या के आंकड़ों को ध्यान में रखते हुए इस तरह से रखना चाहेंगे कि भारत की कुल आबादी में ग्रामीण जनसंख्या 2001 के 72.19 प्रतिशत से घटकर 2011 में 68.84 प्रतिशत हो गई। वहीं दूसरी ओर शहरीकरण का स्तर 27.81 प्रतिशत से बढ़कर 31.16 फीसदी हो गया। जनसंख्या के इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि गाँवों में अभी भी बड़ी आबादी रहती है परन्तु यह भी सच है कि उनके लिए जीविका के साधन सीमित होते जा रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि केवल खेती-किसानी पर जीविका चलाना आसान नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कुछ ऐसा किया जाए जिससे गाँव, गाँव रह सकें और गाँव वालों के लिए अच्छी आमदनी का इन्तजाम हो सके। इस प्रश्न का समाधान ग्रामीण पर्यटन के विकास से सम्भव हो सकता है। कृषि और पर्यटन के बीच विद्यमान अन्तर्सम्बन्ध नये आर्थिक अवसर, राजस्व सृजन, और अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में योगदान देते हुए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि पर्यटन बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रोजगार के मौके मुहैया कराता है। ग्रामीण पर्यटन के इस नये स्वरूप - कृषि पर्यटन को बढ़ावा देकर देश में कृषि क्षेत्र के समक्ष उत्पन्न संकट से निपटा जा सकता है (सिंह, 2017)।

सुझाव

ग्रामीण क्षेत्रों के सुस्थिर विकास के लिए यह आवश्यक है कि गाँवों का संरक्षण किया जाए और आने वाली पीढ़ियों के लिए गाँवों की सादगीपूर्ण जीवनशैली को सँभाल कर रखा जाए। ग्रामीण और उत्तरदायी कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने से, इनको बचाए रखने में बड़ी मदद मिल सकती है। भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के हालिया प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटन के साथ-साथ विकास प्रक्रिया को भी गति मिलेगी, साथ ही आमदनी के एक नवीन स्रोत के सृजन से किसानों का जीवन-स्तर बेहतर हो सकेगा। इसका एक अन्य लाभ यह होगा कि ग्रामीणों को रोजगार की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन नहीं करना पड़ेगा। कृषि पर्यटन के विकास के फलस्वरूप अपने गाँव में रहकर खेती-किसानी से जीविकोपार्जन करके अलग-थलग पड़ चुका कृषक समुदाय देश की मुख्यधारा से जुड़ सकेगा। इस प्रकार सरकार का यह प्रयास कृषि एवं ग्रामीण विकास की दिशा मे बेहतरीन प्रयास हो सकता है।

थीम आधारित पर्यटन अर्थात् किसी एक विषय के इर्द-गिर्द तैयार किया गया पर्यटन को प्रोत्साहन ग्रामीण एवं कृषि पर्यटन के लिए काफी उपयुक्त दृष्टिकोण है। भारत के केरल तथा दूसरे अन्य दक्षिणी राज्यों में मसालों की खेती होती है। वहाँ कृषि पर्यटन के अन्तर्गत मसाला पर्यटन की अवधारणा गाँवों के जरिए साकार की जा सकती है। पर्यटकों को यदि गावों में होम स्टे के दौरान मसालों की खेती, उनकी विभिन्न किस्में, उन्हें तैयार करना आदि सिखाया जाए और साथ ही खेत से तैयार एकदम ताजा एवं शुद्ध मसाले सही कीमत पर उपलब्ध हों तो यह पर्यटकों के लिए एक अच्छा अनुभव हो सकता है; जिसे वे याद रखना चाहेंगे। इसी तरह पूर्वात्तर भारत और पश्चिम बंगाल में चाय पर्यटन को ग्रामीणों के साथ बढ़ावा दिया जा सकता है। तमिलनाडु में मन्दिर पर्यटन, कृषि पर्यटन के विकास में प्रेरक कारक के रूप में सहयोगी हो सकता है (यादव, 2019)।

इसमें कोई शक नहीं कि गाँवों के लोग जी-तोड़ मेहनत करने से न तो घबराते हैं और न ही जी-चुराते हैं, लेकिन कठिन परिश्रम के साथ कौशल और उद्यमिता जुड़ जाए और साथ ही पूंजी की उचित व्यवस्था भी हो जाए तो पर्यटन से जुड़े कारोबारी अवसरों से लाभान्वित होने में आसानी हो सकती है। इस दिशा में सरकार की कौशल विकास से जुड़ी विभिन्न योजनाएँ सहायक हो सकती हैं। केन्द्र सरकार द्वारा संचालित दीनदयाल ग्रामीण कौशल योजना बेरोजगार युवाओं का कौशल विकास करके उनकी रोजगार पाने की क्षमता बढ़ाती है। किसान युवा वर्ग को कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने के क्षेत्र में प्रेरित करने हेतु नीतिगत प्रयास एवं संस्थागत सहयोग अपेक्षित है।

निष्कर्ष

भारत में कृषि और पर्यटन दोनों ही क्षेत्र ऐसे हैं जो सबसे ज्यादा रोजगार मुहैया कराते हैं। इन दोनों क्षेत्रों में अभी काफी सम्भावनाएँ है, जिनका दोहन करके ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है। अभी भी भारत की बड़ी आबादी गाँवों में रहती है, जो कृषि पर

निर्भर है। कुछ पीढ़ियाँ पहले गाँवों से शहरों में जाकर बस गए लोग अपनी जड़ों की यादों को जिन्दा रखने की चाह के कारण, वे अपने गाँवों से जुड़ाव बनाए रखना चाहते हैं। जो लोग पूरी तरह से शहरी जीवनशैली को अपना चुके हैं, वे अपने बाल-बच्चों, नाती-पोतों को गाँव को नजदीक से दिखाना चाहते हैं। विदेशी सैलानियों की दिलचस्पी भी भारत के गाँवों का जीवन और कृषि पर निर्भर लोगों को जानने एवं समझने में अधिक देखने को मिल रही है। इन सब के चलते भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि क्षेत्र में पर्यटन एक नयी सम्भावना के रूप में उभरा है।

देश के किसानों की आमदनी को बढ़ाने और उनके जीवन में बेहतरी लाने के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पर्यटन की इस उभरती शाखा का समुचित दोहन कृषि विकास के लिए अच्छी पहल साबित हो सकती है। जहाँ एक ओर खेती एवं उससे जुड़े उद्यमों पर काफी ध्यान दिया जा रहा है वहीं दूसरी ओर अब जरूरत कृषि पर्यटन को आगे बढ़ाने की है। पर्यटन क्षेत्र में पर्याप्त रोजगार सृजन की क्षमता है तो कृषि पर्यटन जैसे नये क्षेत्र के विकास से दोहरा फायदा हो रहा है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार, गरीबी उन्मूलन और सतत मानव संसाधन विकास को बल मिलेगा। यहाँ आने वाले ज्यादातर अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक भारत के गाँवों को देखने की इच्छा रखते हैं, लेकिन बुनियादी सुविधाओं के अभाव में ऐसा करना फिलहाल पूरी तरह सम्भव नहीं हो पा रहा है।

सन्दर्भ

भास्कर, भुवन (2017) 'समग्र विकास के साथ समृद्ध सांस्कृतिक विरासत संजोता ग्रामीण पर्यटन', *कुरुक्षेत्र,* वर्ष 64, अंक 2, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली; पृ. 12-14

चटर्जी एस. एवं दुर्गाप्रसाद एम. (2019) 'द एवल्यूशन ऑफ एग्रो टूरिज्म प्रेक्टिसेस इन इंडिया : सम सक्सेस स्टोरीज', *मॅडरिज जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एंड एनवायरनमेंटल साइंसेस,* 1, पृ. 19-25

कृष्णा, मूर्ति (2014) 'इकनॉमिक बेनेफिट्स ऑफ एग्रीकल्चर टूरिज्म : अपेसल एंड प्रोस्पेक्ट्स', *अर्थशास्त्र इंडियन जर्नल ऑफ एकोनोमिक्स एंड रिसर्च,* पृ. 4-11

सरकार, सुकान्त (2010) 'एग्री-टूरिज्म इन इंडिया : ए वे ऑफ रुरल डेव्लपमेंट', *एटना जर्नल ऑफ टूरिज्म स्टडीज,* 5(1), पृ. 52-59

शर्मा, हरिकिशन (2017) 'ग्रामीण पर्यटन में रोजगार के अवसर', *कुरुक्षेत्र,* वर्ष 64, अंक 2, पृ. 29-31

शर्मा, हरिकिशन (2017) 'ग्रामीण पर्यटन में रोजगार के अवसर', *कुरुक्षेत्र,* पूर्वोक्त

सिंह, प्रमोद कुमार एवं के.एस. नेताम (2019) 'भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि पर्यटन की भूमिका', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस रिसर्च,* वॉल्यूम 5, पृ. 79-81

सिंह, सुरेन्द्र प्रसाद (2017) 'कृषि पर्यटन : गाँवों में पर्यटन का नया आकर्षण', *कुरुक्षेत्र,* वर्ष 64, अंक 2, पृ. 36-38

सुनीता एम. (2017) 'रोल ऑफ एग्रो-टूरिज्म इन रुरल डेवलपमेंट', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यू,* अंक 2, पृ. 56-21

सेतिया, सुभाष (2015) 'ग्रामीण पर्यटन : गाँवों और शहरों के बीच नया पुल', *कुरुक्षेत्र,* वर्ष 61, अंक 4, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली; पृ. 21-23

यादव, सुयश (2019) 'ग्रामीण पर्यटन : कृषितर गतिविधियों का महत्वपूर्ण घटक', *कुरुक्षेत्र,* वर्ष 65, अंक 9, पृ. 30-33

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 172-184)
UGC-CARE (Group-I)

कार्ययोजित महिलाओं के कार्य एवं परिवार में असन्तुलन के कारक : विद्यालयीन अध्यापिकाओं पर एक अध्ययन

संजय कुमार* एवं पंकज सिंह†

परम्परागत समाज में पुरुषों की भूमिका घर के बाहर के कार्य में अर्थात् आर्थिक गतिविधियों में,जबकि महिलाओं की भूमिका घर को सँभालने तक ही सीमित थी। स्वतन्त्रता के बाद स्त्री शिक्षा और लैंगिक समानता कानूनों के प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप महिलाओं की कार्य क्षेत्र में भागीदारी बढ़ी है। कार्ययोजित होने से महिलाओं के कार्य क्षेत्र में विस्तार तो हुआ लेकिन उनकी परम्परागत भूमिकाओं में कोई परिवर्तन नहीं आया अर्थात् वह यथावत बना रहा। इस प्रकार एक कार्ययोजित महिला को कार्य और परिवार की दोहरी भूमिका का निर्वहन करना पड़ता है। वर्तमान समय में कार्ययोजित महिलाओं में कार्य और परिवार का दबाव प्रतिकूल रूप से बढ़ गया है जो कार्य परिवार के बीच संघर्ष को बढ़ाता है। इन संघर्षों का सम्बन्ध मातृत्व के सांस्कृतिक मतभेद से भी है, क्योंकि घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्ययोजित महिलाओं की संख्या तेजी से बढ़ रही है। उन पर अपने बच्चों की देखभाल करने और उनके पालन-पोषण की नैतिक जिम्मेदारी होती है। कार्ययोजित महिलाओं

*शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
E-mail: sanjaysocio5@bhu.ac.in
†सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
E-mail: pankajsocio@bhu.ac.in

को बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल के लिए पर्याप्त समयाभाव की समस्या भी सामने आती है। घर और कार्यस्थल पर जिम्मेदारियाँ तनाव को जन्म देती हैं। यह तमाम चुप्पी, धैर्य और सहनशीलता के बावजूद कभी-कभी उसका तनाव काम और परिवार के बीच सन्तुलन बनाने में समस्याएँ पैदा करता है। मनोवैज्ञानिक-सामाजिक समस्या उसके शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक सामाजिक पहलुओं, कार्यस्थल और पारिवारिक क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य कार्ययोजित महिलाओं के कार्यस्थल एवं पारिवारिक जीवन में सन्तुलन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का अध्ययन करना है। इस अध्ययन को पूर्ण करने के लिए अन्वेषणात्मक सह विवरणात्मक शोध विधि और उद्देश्यात्मक प्रतिचयन का प्रयोग किया गया है। आंकड़े एकत्र करने हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

बीज शब्द : कार्ययोजित महिला, कार्य, असन्तुलन, दोहरी भूमिका, तनाव।

प्रस्तावना

परम्परागत समाज में महिलाएँ ज्यादातर अपनी रसोई तक ही सीमित थीं और जो कार्यरत थीं वे कारखानों, खेतों या दुकानों में काम करती थीं। बहुत कम महिलाओं की उच्च शिक्षा तक पहुँच थी। काम के प्रति अपने पिता या पति के नैतिक दबाव में रहने के लिए मजबूर थी। तेजी से विकसित ज्ञान अर्थव्यवस्था ने अधिक संख्या में महिलाओं को उच्च शिक्षा से जुड़ने का अवसर दिया है। शिक्षा ने न केवल उन्हें सशक्त बनाया है बल्कि उन्हें मजबूत कैरियर भी दिया है। ज्ञान के इस युग में शारीरिक शक्ति के बजाय मस्तिष्क की शक्ति आवश्यक कौशल होने के कारण, महिला श्रमिक पुरुषों के बराबर हर उद्योग में आ रही हैं। लेकिन महिलाओं के लिए यह एक चुनौती बन गई है, क्योंकि उन्हें घर और कार्यस्थल दोनों जगह पर जिम्मेदारियाँ निभानी होती हैं। कार्ययोजित महिलाओं की शादी के बाद उन पर अतिरिक्त जिम्मेदारी आ जाती है और जब माँ बन जाती हैं तो उन्हें बच्चों और परिवार की देखभाल करनी पड़ती है। इस तरह वे अपने कैरियर के पथ को जारी रखने के लिए अधिक दबाव में आ जाती हैं (नईम एवं त्रिपाठी, 2012)।

वर्तमान समय में कार्ययोजित महिलाएँ पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपनी विभिन्न भूमिकाओं की प्रतिस्पर्धी माँगों का सामना करते हुए कैरियर में पूरी तरह से शामिल होने का प्रयास करती हैं। कार्ययोजित महिलाओं की देखभाल करने की जिम्मेदारियाँ जब पेशेवर कर्तव्यों के साथ जुड़ जाती हैं तो उन पर भारी तनाव आ जाता है। कार्ययोजित महिलाओं को अपनी बहुल भूमिकाओं में विभिन्न समस्याओं और गतिविधियों को एक साथ एकीकृत करने, व्यवस्थित करने और सन्तुलित करने का प्रयास उन्हें भारी दबाव में डालता है। इस दबाव से वह तनाव और स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करती हैं जिसका प्रभाव उनकी उत्पादकता और प्रभावशीलता पर पड़ता है, जिससे कार्य एवं पारिवारिक जीवन के बीच सन्तुलन बनाने में समस्याएँ आती हैं (चांग, मैकडोनाल्ड एवं बर्टन, 2009)।

कार्य एवं पारिवारिक जीवन सन्तुलन

कार्य एवं परिवार सन्तुलन का अर्थ कार्य और परिवार के बीच जीवन का सन्तुलित होना है। यह कार्य और परिवार दोनों पर दिए गए समय की प्राथमिकता और बिना किसी संघर्ष के कार्य और परिवार के बीच एक स्वस्थ और सन्तोषजनक जीवन जीना है। यह हमारे पारिवारिक समय और जिम्मेदारियों के प्रबन्धन और बिना किसी संघर्ष के काम के प्रति प्रतिबद्धता से है (एरडामर एवं डेमिरेल, 2014)।

साहित्य पूर्वावलोकन

बेहरा एवं पाधी (1993) ने अपने अध्ययन में कार्ययोजित महिलाओं के भूमिका संघर्ष की अवधारणा की विस्तार से जाँच की है। इस उद्देश्य के लिए बेरहामपुर (दक्षिणी उड़ीसा) शहर में स्कूल शिक्षक के रूप में कार्यरत 126 माताओं का अध्ययन किया गया। संघर्ष और अनुरूपता के स्तर को निर्धारित करने के लिए दो बिन्दुओं पर पैमाने को नियोजित किया गया था। यह पाया गया कि जो माताएँ मुख्य रूप से आर्थिक कारणों से इस कार्य में आयी हैं। वे उन माताओं की तुलना में अधिक भूमिका संघर्ष का सामना करती हैं जो इस कार्य में अन्य कारणों से आयी हैं। नौकरीपेशा माताओं की भूमिका संघर्ष की घटना कुछ सामाजिक-आर्थिक चरों पर सीधे निर्भर करती हैं। नौकरीपेशा माताएँ जिनके पास अनुकूल व्यक्तित्व लक्षण (बुद्धिमान, सहिष्णु, विचारशील, आदि) हैं, वे उन लोगों की तुलना में बेहतर समायोजित हैं जो उन लक्षणों से रहित हैं।

यादव, राजेश के. एवं निशान्त, डी. (2013) ने भारत के भोपाल में बैंकिंग और शैक्षिक क्षेत्र की 150 कार्ययोजित महिलाओं के बीच कार्य जीवन सन्तुलन और नौकरी सन्तुष्टि पर एक अध्ययन किया। अध्ययन में नौकरी की सन्तुष्टि और संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाने वाली संस्थागत सहायता पर कार्य जीवन सन्तुलन के प्रभाव की जाँच की गई। परिणाम बताते हैं कि नौकरी की सन्तुष्टि और कर्मचारियों को दी जाने वाली संस्थागत सहायता के बीच सम्बन्ध है और यह भी बताते हैं कि कार्य जीवन सन्तुलन प्राप्त करने के लिए कर्मचारी उन्मुख नीतियाँ और सामाजिक समर्थन मुख्य कारक हैं।

जी. विवेक एम. एवं मैया, उमेश (2015) ने अपने अध्ययन में विभिन्न विभागों में काम करने वाली 105 नर्सों के बीच कार्य जीवन सन्तुलन पर अध्ययन किया। इसमें कार्य सम्बन्धी तनाव के प्रकार और तनाव के मुख्य कारक का विश्लेषण किया गया और कार्य जीवन सन्तुलन को प्रभावित करने वाले कारक का पता लगाया गया। परिणामस्वरूप पता चला कि अधिकांश लोगों को कार्य और परिवार के बीच सन्तुलन बनाने में कठिनाइयाँ होती हैं। उत्तरदाताओं ने लम्बे समय तक काम करने और काम की अधिकता के कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का अनुभव किया। परिणाम से कार्य और परिवार के बीच सन्तुलन बनाने के लिए परिवार के अनुकूल नीतियों के कार्यान्वयन की आवश्यकता का पता चलता है।

सुप्रिया एन.डी. एवं एम.वी. (2006) के अध्ययन में आईटी क्षेत्र के 110 पुरुष और महिला कर्मचारियों के बीच कार्य जीवन सन्तुलन के लिंग विभेद की धारणा पर अध्ययन किया गया ताकि कार्य जीवन सन्तुलन से सम्बन्धित मुद्दों को समझाया जा सके। परिणामस्वरूप पता चला कि कर्मचारियों द्वारा काम के बोझ के कारण परिवार के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताने का अभाव है। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में पारिवारिक जीवन ने अधिक प्रभावित किया है। चर और लिंग के बीच कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं है।

वाल्क आर. एवं श्रीनिवासन, वी. (2011) द्वारा भारत के बेंगलुरु में महिला सॉफ्टवेयर पेशेवरों के कार्य-परिवार सन्तुलन पर एक गुणात्मक अध्ययन किया गया। अध्ययन का उद्देश्य आईटी क्षेत्र में काम कर रही भारतीय महिलाओं के कार्य और परिवार के बीच सन्तुलन को प्रभावित करने वाले कारकों को समझना था। परिणामस्वरूप महिलाओं के कैरियर और जीवन का चुनाव परिवार, सामाजिक अपेक्षाओं, पारिवारिक परम्परा, सम्मान और कल्याण से प्रभावित होता है। व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर टकराव महिलाओं के विकास के लिए तनाव पैदा करता है जो महिलाओं के कार्य परिवार सन्तुलन को प्रभावित करने का मुख्य कारण है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि घर और कार्यस्थल पर महिलाओं द्वारा निभाई जाने वाली दोहरी भूमिका के कारण विवाहित महिलाओं को अपनी भूमिका पहचानने में कठिनाई होती है। जिसके परिणामस्वरूप पति के साथ सम्बन्ध खराब होता है।

अध्ययन के उद्देश्य एवं प्रविधि

कार्ययोजित महिलाओं के कार्यस्थल एवं पारिवारिक जीवन में सन्तुलन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को ज्ञात करना ।

प्रस्तुत शोधपत्र वाराणसी जिले के काशी विद्यापीठ ब्लॉक पर आधारित है। इस अध्ययन में निजी स्कूल में कार्यरत 60 महिला अध्यापकों का चुनाव किया गया है, अत: इस अध्ययन को पूर्ण करने के लिए अन्वेषणात्मक सह विवरणात्मक शोध विधि और आंकड़ा संकलन हेतु उद्देश्यात्मक प्रतिचयन का प्रयोग किया गया है। समय सीमा के अन्दर शोध पूर्ण करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक आंकड़े एकत्र करने हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

इस शोधपत्र में प्राथमिक स्रोत के साथ-साथ द्वितीयक स्रोत - पुस्तक, शोधपत्र, आदि की सहायता ली गई है।

क्षेत्र कार्य पर आधारित आंकड़ों का विश्लेषण

मासिक आय के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

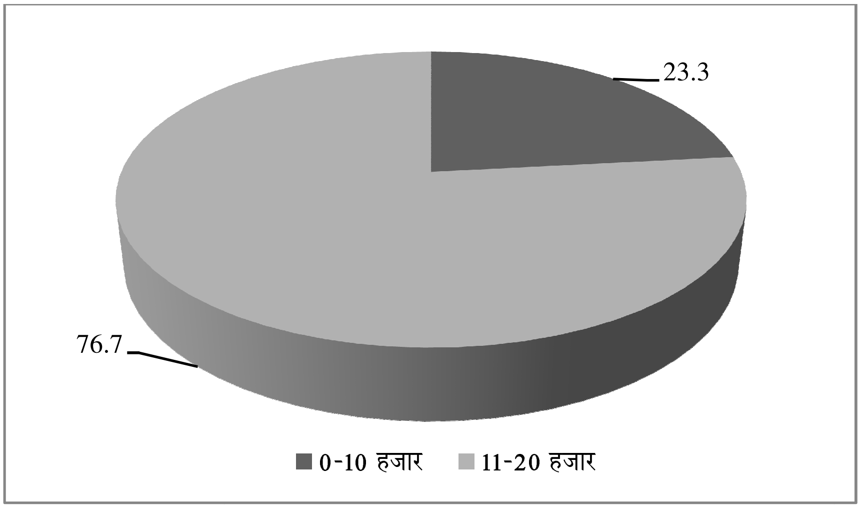

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख के आधार पर कह सकते हैं कि सबसे अधिक 76.7 प्रतिशत उत्तरदाता 11-20 हजार रुपये मासिक आय प्राप्त करती हैं, जबकि 23.3 प्रतिशत उत्तरदाता 0-10 हजार रुपए मासिक आय प्राप्त करती हैं।

आय पारिवारिक सन्तुलन स्थापित करने में एक प्रमुख कारक के रूप में भूमिका निभाता हैं। दिन-प्रतिदिन बढ़ती महँगाई के कारण शिक्षक को अपने व्यक्तिगत एवं पारिवारिक आवश्यकता को पूरा करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है, अधिकांश शिक्षकों को अपनी कमाई और खर्च के बीच असन्तुलन की स्थिति का सामना करना पड़ता है। जब उनकी आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती है तो पूरे महिने कड़ी मेहनत करना उनके लिए कठिन हो जाता हैं।

आय के माध्यम से वह अपने घरेलू कार्यों को करने के लिए आधुनिक उपकरणों को खरीद सकती हैं जिससे उनके कार्य आसानी से हो सकते हैं। अत: उनको कार्य एवं पारिवारिक जीवन में सन्तुलन स्थापित करने में सहयोग मिल पाता है। वह अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकती हैं। इस प्रकार निम्न आय होने पर उन्हें पारिवारिक सन्तुलन स्थापित करने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

परिवार के स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण

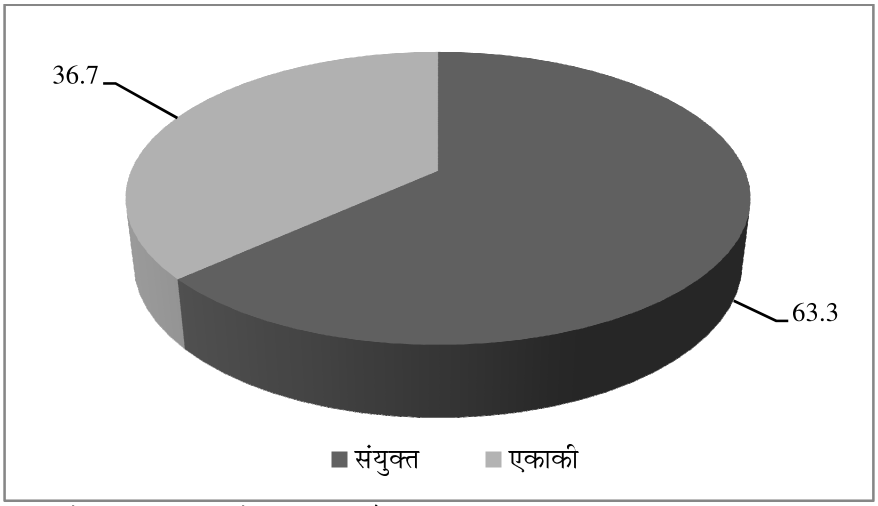

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख से विदित है कि सबसे अधिक उत्तरदाता 63.3 प्रतिशत संयुक्त परिवार से हैं, जबकि 36.7 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार से हैं। संयुक्त परिवार में परिवार के सदस्यों द्वारा घरेलू कार्यों में सहयोग करने से कार्ययोजित महिलाओं को कार्यस्थल एवं घरेलू कार्यों के बीच समायोजन स्थापित करने में मदद मिलती है। वहीं एकाकी परिवार में घरेलू कार्यों की जिम्मेदारी स्वयं महिला पर होती है। इससे उसे कार्यस्थल एवं पारिवारिक जीवन के बीच सन्तुलन बनाने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

कार्यस्थल के वातावरण से सहज महसूस करने के आधार पर वर्गीकरण

अग्र आरेख से ज्ञात होता है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाता हमेशा कार्यस्थल के वातावरण से सहज महसूस करते हैं, जबकि 16.7 प्रतिशत उत्तरदाता कभी-कभी कार्यस्थल के वातावरण से सहज महसूस करते हैं। 3.3 प्रतिशत उत्तरदाता कार्यस्थल के वातावरण से सहज महसूस नहीं करते हैं। अधिकांश उत्तरदाता कार्यस्थल के वातावरण से सहज महसूस करते हैं अर्थात् कार्यस्थल का वातावरण सकारात्मक है। कार्य दशाएँ सकारात्मक होने पर कार्य करने वाले शिक्षक उच्च सन्तुष्टि स्तर के साथ कार्य करते हैं तथा उनका कहना है कि कार्य करने का सकारात्मक वातावरण उनके स्वतन्त्रता, रचनात्मकता और कार्य के प्रति उत्साह को भी बढ़ाता है। वही कार्य दशाएँ नकारात्मक होने पर शिक्षक के कार्य करने की क्षमता और कार्य की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

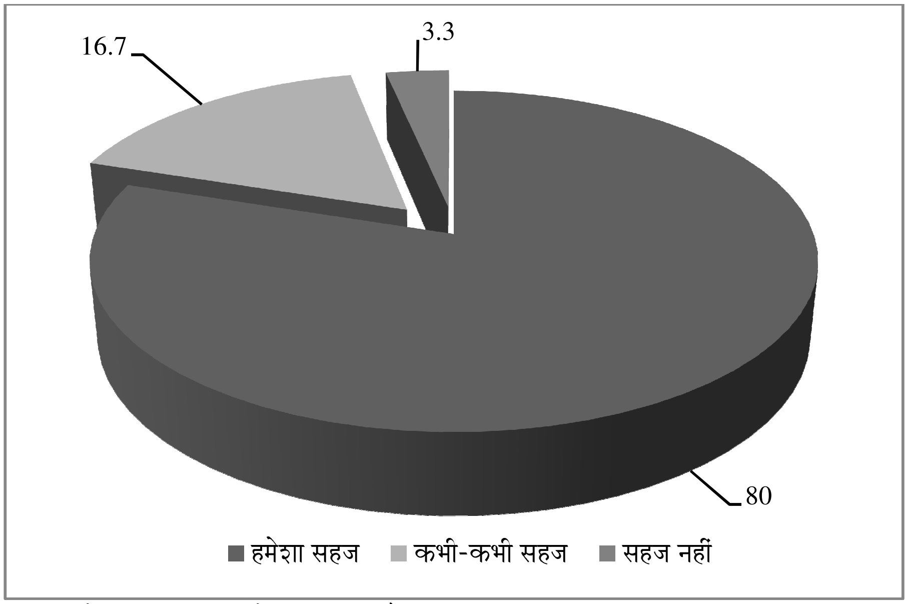

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

कार्यस्थल पर लिंग भेद के आधार पर वर्गीकरण

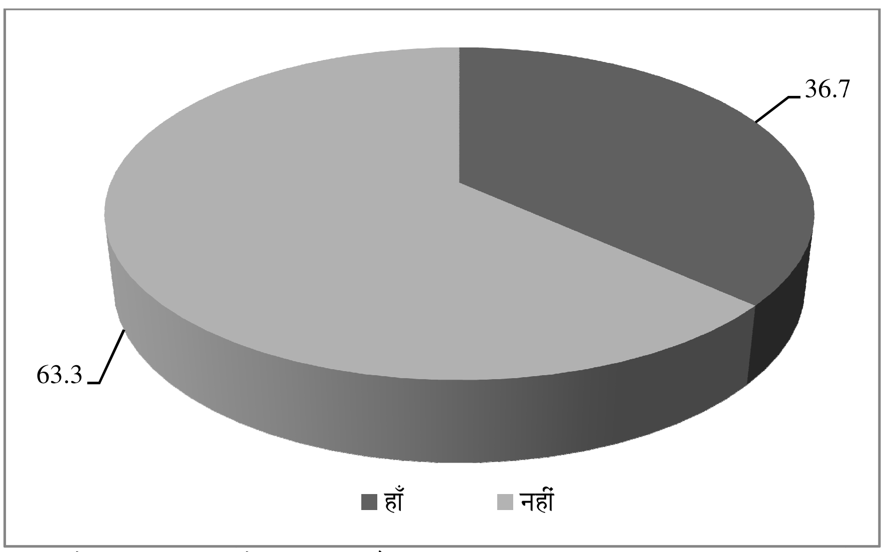

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख से परिलक्षित हैं कि 63.3 प्रतिशत उत्तरदाता ने कार्यस्थल पर लिंग भेद का सामना नहीं किया है, जबकि 36.7 प्रतिशत उत्तरदाता ने कार्यस्थल पर लिंग भेद का

सामना किसी न किसी रूप में किया है, जैसे - निर्णय लेने के सम्बन्ध में 54.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने लिंग भेद का सामना किया है, जबकि वेतन असमानता के रूप में, जिम्मेदारियों के बँटवारे के रूप में, निर्णय लेने के सम्बन्ध में, इन तीनों रूपों में 27.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने लिंग भेद का सामना किया है। 9.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने वेतन असमानता के रूप में लिंग भेद का सामना किया हैं तथा 9.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जिम्मेदारियों के बँटवारे के रूप में लिंग भेद का सामना किया।

कार्यस्थल के काम से उत्पन्न तनाव के आधार पर वर्गीकरण

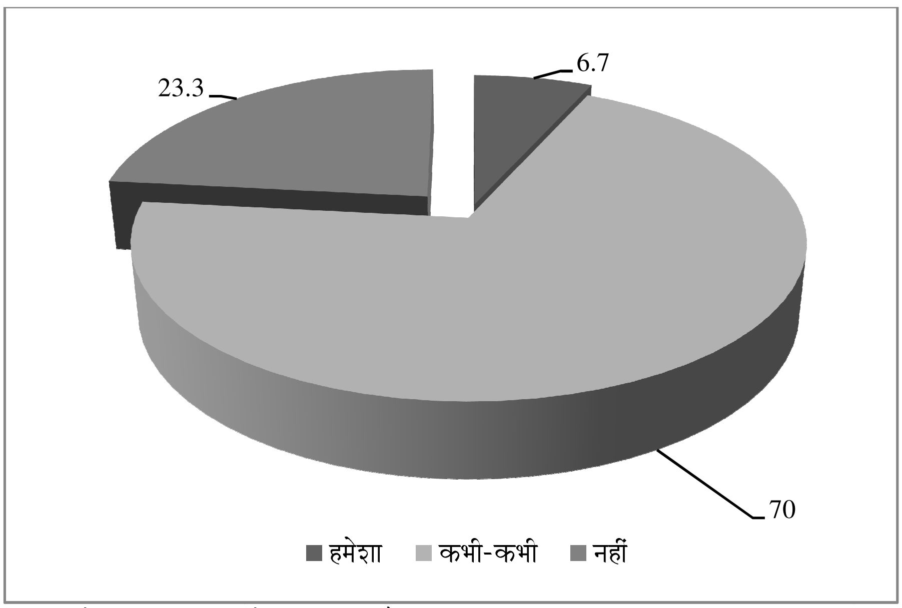

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख के आधार पर कह सकते हैं कि सबसे अधिक 70 प्रतिशत उत्तरदाता कार्यस्थल के काम से कभी-कभी तनाव का सामना करते हैं, जबकि 23.3 प्रतिशत उत्तरदाता तनाव का सामना नहीं करते हैं। 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता हमेशा कार्यस्थल के काम से तनाव का सामना करते हैं। एक शिक्षक न केवल पाठ पढ़ाने, नोट्स देने, परीक्षा आयोजित करने और परिणाम घोषित करने के लिए होता हैं, बल्कि वह छात्र के दूसरे अभिभावक के रूप में भी जाना जाता हैं। शैक्षणिक गतिविधि के अलावा उसे अन्य गतिविधियों, जैसे - क्विज, निबन्ध लेखन, भाषण, समूह चर्चा का भी आयोजन करना होता है।

सहकर्मियों से व्यवहार के आधार पर वर्गीकरण

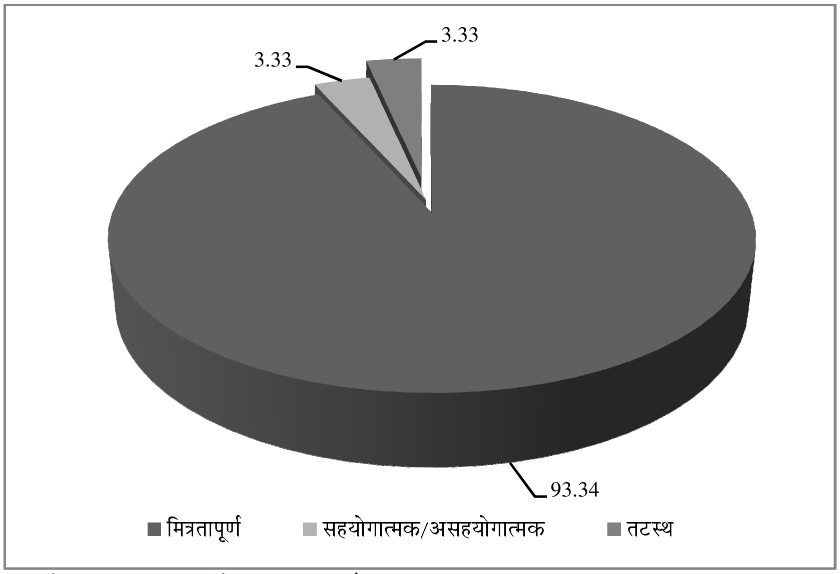

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख से स्पष्ट है कि 93.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का अपने अधिकांश साहकर्मियों से मित्रतापूर्ण एवं सहयोगात्मक व्यवहार है, जबकि 3.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का अपने साहकर्मियों से कुछ से सहयोगात्मक तथा कुछ से असहयोगात्मक व्यवहार है। 3.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि अपने सहकर्मियों से तटस्थ व्यवहार है।

पति के व्यवहार से उत्पन्न तनाव के आधार पर वर्गीकरण

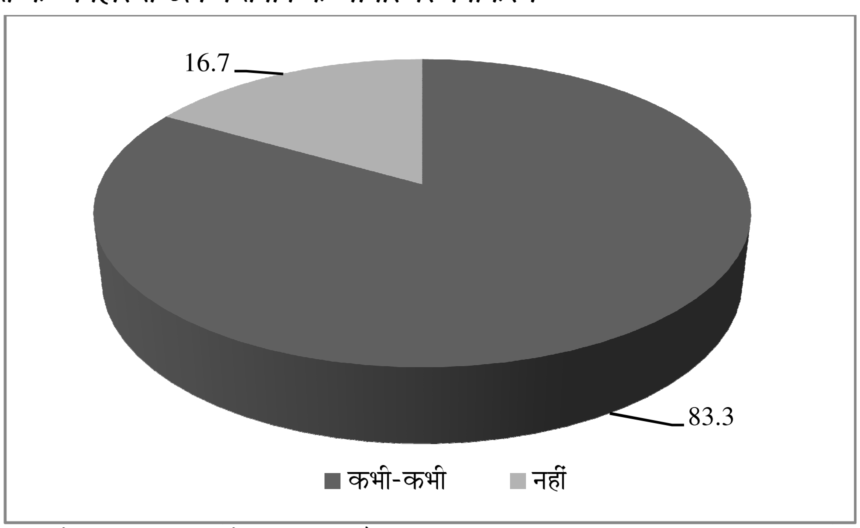

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख से ज्ञात होता है कि 83.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को पति के व्यवहार से कभी-कभी तनाव उत्पन्न होता हैं अर्थात् पति का व्यवहार कभी सहयोगपूर्ण तो कभी असहयोगपूर्ण रहता है जिससे एक कार्ययोजित महिला के लिए कार्यस्थल एवं पारिवारिक जीवन में सन्तुलन बनाने में संघर्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है जबकि 16.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि पति के व्यवहार से तनाव उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् पति का व्यवहार सहयोगपूर्ण रहता है जो एक कार्ययोजित महिला के लिए कार्यस्थल एवं पारिवारिक जीवन में सन्तुलन बनाने के लिए बहुत ही सकारात्मक वातावरण प्रदान करता है।

कार्ययोजित होने से वैवाहिक जीवन पर प्रभाव के आधार पर वर्गीकरण

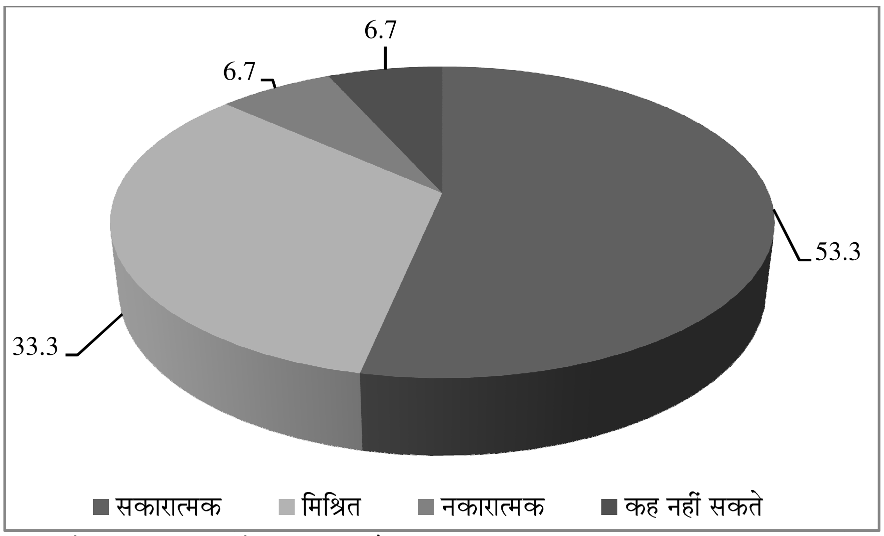

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख से परिलक्षित है कि सबसे अधिक 53.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि कार्ययोजित होने से उनके वैवाहिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जबकि 33.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उनके वैवाहिक जीवन पर मिश्रित (सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों) रूपों में प्रभाव पड़ा है। 6.7 प्रतिशत ने कहा कि कार्ययोजित होने से उनके वैवाहिक जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है तथा 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता अपने वैवाहिक जीवन के प्रभाव के बारे में कह नहीं सकते हैं विकल्प के रूप में उत्तर दिया हैं। अधिकांश उत्तरदाताओं का कहना है कि कार्ययोजित होने से उनके वैवाहिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जबकि कुछ उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके पास समय का अभाव होने के कारण उनके वैवाहिक सम्बन्धों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा कुछ उत्तरदाताओं का कहना है कि परिवार के सदस्यों का दृष्टिकोण और स्वभाव उनके जीवनसाथी के साथ सम्बन्धों को बाधित करता है।

पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन से सन्तुष्टि के आधार पर वर्गीकरण

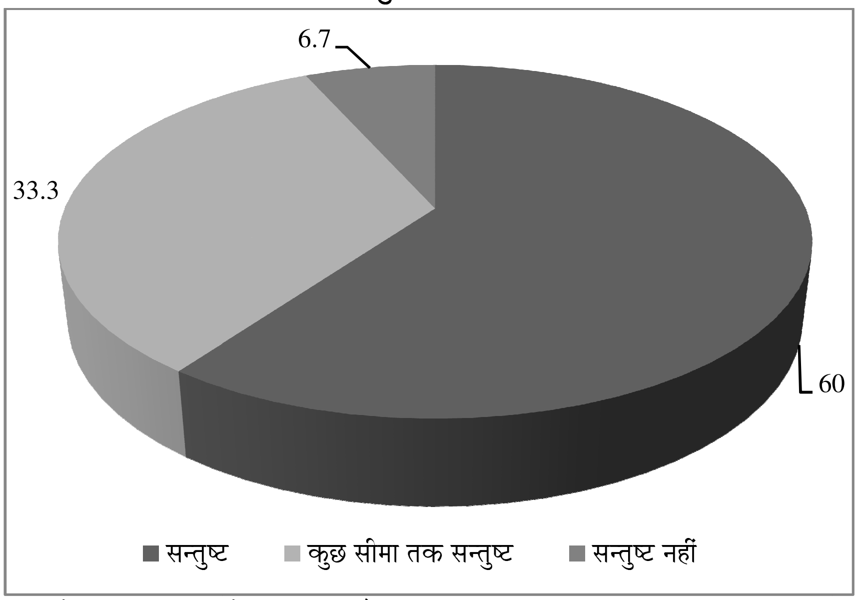

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

उपर्युक्त आरेख के आधार पर कह सकते हैं कि 60 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन से सन्तुष्ट हैं जबकि 33.3 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन से कुछ सीमा तक सन्तुष्ट हैं अर्थात् अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन करने से वह पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हैं। 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन से सन्तुष्ट नहीं हैं, जो कार्यस्थल एवं पारिवारिक जीवन के बीच सन्तुलन बनाने में एक नकारात्मक परिणाम को दर्शाता है।

कार्य एवं परिवार में सन्तुलन स्थापित करने में परिवार के सदस्यों के सहयोग के आधार पर वर्गीकरण

अग्र आरेख के आधार पर स्पष्ट है कि 73.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्य कार्यस्थल एवं परिवार में सन्तुलन स्थापित करने में उनका सहयोग करते हैं जबकि 13.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्य कार्यस्थल एवं परिवार में सन्तुलन स्थापित करने में उनका सहयोग नहीं करते हैं। 13.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्य कार्यस्थल एवं परिवार में सन्तुलन स्थापित करने में उनका कभी-कभी सहयोग करते हैं।

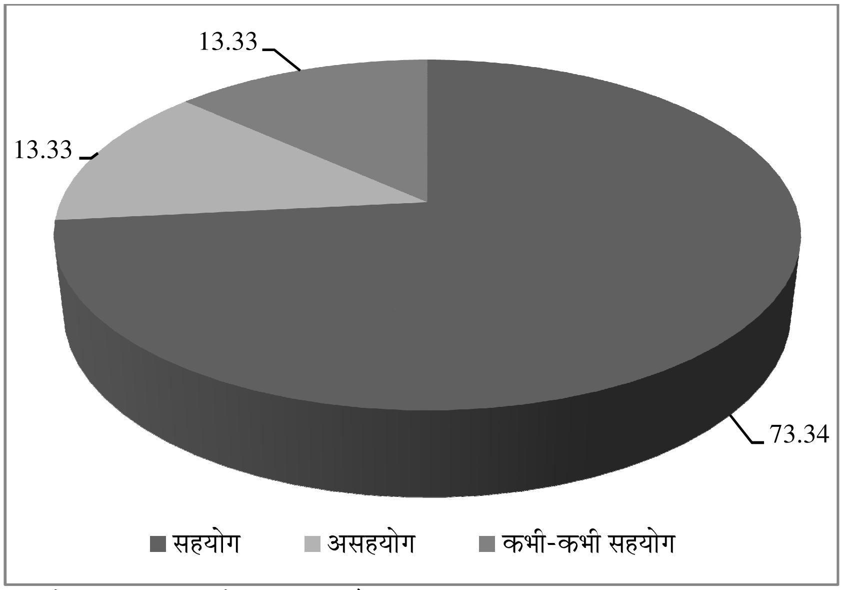

उपर्युक्त आरेख प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है।

निष्कर्ष

कार्य और पारिवारिक जीवन के बीच सन्तुलन एक संवेदनशील विषय हैं। कार्य और पारिवारिक जीवन के कर्तव्यों के निर्वहन में जब लोग सन्तुलन बनाने में असफल होते हैं तब समस्या उत्पन्न होती है, इसके विभिन्न कारक हो सकते हैं।

कार्यस्थल पर कार्य के अधिक दबाव और संस्थान प्रबन्धन द्वारा अधिक से अधिक कार्य करने की अपेक्षा, लिंग भेद और कार्यस्थल के वातावरण उत्तरदात्रियों के प्रति अनुकूल न होने पर वह तनाव महसूस करती हैं। कार्ययोजित महिलाओं द्वारा निर्वहन की जाने वाली बहुल भूमिका उसमें निराशा और तनाव पैदा करती है इस कारण उन्हें अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना बोझ लगने लगता है जो कार्य और पारिवारिक जीवन में सन्तुलन को स्थापित करने में समस्या पैदा करती है। वैवाहिक जीवन सम्बन्ध, पति का व्यवहार और परिवार के सदस्यों का दृष्टिकोण और सहयोग एक महत्वपूर्ण कारक है जो कार्ययोजित महिला के अनुकूल न होने पर कार्य और पारिवारिक जीवन में असन्तुलन पैदा होता है।

कार्य और पारिवारिक जीवन में सन्तुलन को स्थापित करने के लिए शैक्षिक संस्थानों में अनुकूल कार्य वातावरण,अच्छी कार्य करने की स्थितियाँ, संस्थान प्रबन्धन द्वारा अधिक से अधिक कार्य करने के दबाव से छूट की सुविधा प्रदान करने की अत्यधिक आवश्यकता है इसलिए कार्य और पारिवारिक जीवन में सन्तुलन को स्थापित करने के लिए शैक्षणिक संस्थाओं की नीतियों को व्यक्तिगत जरूरतों के अनुसार बनाया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

एरडामर, गुरकू एवं डेमिरेल, हुस्ने (2014) 'इन्वेस्टिगेशन ऑफ वर्क-फैमिली, फैमिली-वर्क कॉन्फ्लिक्ट ऑफ द टीचर्स', *प्रोसीडिया - सोशल एंड बिहेवियरल साइन्स,* 116, 4919-4924.

बेहरा, डी.के. एवं पाधी, आई. (1993) 'रोल-कॉन्फ्लिक्ट ऑफ वर्किंग मदर इन टीचिंग प्रोफेशन', *इंडियन एन्थ्रोपोलॉजिस्ट,* खंड 23, अंक 1, पृ. 7-19.

चांग, आर्टेमिस, मैकडोनाल्ड, पाउला के. एवं बर्टन, पॉलीन एम. (2009) 'मेथडोलॉजिकल चॉइस इन वर्क-लाइफ बैलेन्स रिसर्च 1987 टू 2006 : अ क्रिटिकल रिव्यू', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट.*

जी., विवेक एम. एवं मैया, उमेश (2015) अ स्टडी आन वर्क लाइफ बेलेन्स ऑफ फीमेल नर्स विथ रेफरेन्स टू मल्टी स्पेशियलिटी हॉस्पिटल्स, मैसूर सिटी', *एशिया पैसिफिक जर्नल ऑफ रिसर्च,* I (X xviii), 42.

नईम, मोहम्मद अब्दुल एवं त्रिपाठी, मानस रंजन (2012, अप्रैल) 'वर्क-लाइफ बैलेन्स अमंग टीचर्स ऑफ टेक्निकल इंस्टीट्यूशन', *जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशंस,* खंड 47, अंक 4.

सुप्रिया, एम.वी. एवं ढोबले, निहारिका (2006) 'जेन्डर डिफरेन्स इन द पर्सेप्शन ऑफ वर्क-लाइफ बेलेन्स', 5, 331-342.

वाल्क, आर. एवं श्रीनिवासन, वी. (2011) 'वर्क फैमिली बैलेन्स ऑफ इंडियन वुमन सॉफ्टवेयर प्रोफेनल्स : अ क्वालिटेटिव स्टडी', 23(1), 39-50.

यादव, राजेश, के. एवं निशान्त, डी. (2013) 'वर्क-लाइफ बेलेन्स अमंगस्ट द वर्किंग वुमन इन पब्लिक सेक्टर बैंक : अ केस स्टडी ऑफ स्टेट बैंक ऑफ इंडिया', *इंटरनेशनल लेटर्स ऑफ सोशल एंड ह्यूमैनिस्टिक साइंसेज,* 7, 1-22.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 185-193)
UGC-CARE (Group-I)

भारतीय नारी सशक्तीकरण में डॉ. अम्बेडकर का अतुलनीय योगदान

अनिता कुमारी*

डॉ. अम्बेडकर दलितों के उत्थान के साथ ही भारतीय नारी सशक्तीकरण के प्रति भी गम्भीर थे। उन्होंने नारी सशक्तीकरण के बारे में विस्तृत वर्णन भी किया है। नारी सशक्तीकरण का अर्थ किसी नारी की स्वनिर्णय लेने की योग्यता और आर्थिक आत्मनिर्भरता है। नारी अपने जीवन से जुड़े सारे निर्णय स्वयं ले सके इस हेतु उसे विशेष अधिकार देने और सम्मानित करने की आवश्यकता है। अम्बेडकर नारी की दयनीय दशा के लिए मनु को जिम्मेदार मानते हैं। उनका मानना था कि मनुस्मृति ने भारतीय नारियों की स्थिति को चिन्तनीय बना दिया। बाबा साहेब ने इसी मनुस्मृति को जलाया था। उन्होंने भारतीय नारी की दशा को सुधारने का भरसक प्रयास किया। मूकनायक तथा बहिष्कृत भारत नामक अखबार के माध्यम से जनता को जागरूक किया। अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल तैयार किया, जिसमें स्त्रियों को विवाह, तलाक, सम्पत्ति, दत्तक ग्रहण जैसे अनेक मुद्दों पर अधिकार देने की बात कही गई। हिन्दू कोड बिल नारी सशक्तीकरण की दिशा में काफी महत्वपूर्ण था।

बीज शब्द : नारी, सशक्तीकरण, अम्बेडकर, हिन्दू कोड बिल, स्वतत्वावलोकन, स्वच्छन्दता, प्रव्रज्या, शौर्यगाथा, प्रतिबद्धता।

*सहायक प्राध्यापिका, राजनीति विज्ञान विभाग, रमेश झा महिला कॉलेज, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार), **E-mail: ask119107@gmail.com**

प्रस्तावना

भारतीय संविधान के रचयिता डॉ. अम्बेडकर केवल दलितों के ही नेता नहीं थे, वरन् वह एक ऐसे राष्ट्र पुरुष थे, जिन्होंने समूचे देश के सम्बन्ध में, भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में और समाज के बारे में एक महत्वपूर्ण वैचारिक योगदान दिया है। डॉ. अम्बेडकर एक विद्धान लेखक, समाज सुधारक, विधिवेत्ता, राजनायिक, अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री के रूप में नयी पीढ़ी के सामने एक दैदीप्यमान सूर्य के रूप में उदित होकर आते हैं (मून, 2020)। उनका सम्पूर्ण जीवन-संघर्ष, दमन, शोषण और अन्याय के विरूद्ध क्रान्ति की शौर्य-गाथा है। वे तो एक ऐसे समाज की चाहत रखते थे जहाँ समता एवं मानवता सर्वोच्च हो।

डॉ. अम्बेडकर का नारी सशक्तीकतरण में बहुत ज्यादा योगदान रहा है। उन्होंने अपने पूरे जीवनकाल में नारी को सबल बनाने के लिए अनेक प्रयास किए। वे सदैव ही नारी को पुरुषों के समान ही अधिकार को देने के पक्षधर रहे। अम्बेडकर के अनुसार भारतीय नारी शोषण तथा असमानता का शिकार रही है, जिन्हें समाज में वास्तविक अधिकारों से वंचित रखा गया है। इसके अलावा उन्होंने भारतीय नारी पर विस्तृत रूप में लिखा भी है। इनका मानना था कि मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है और वह स्त्री और पुरुष दोनों के आधार स्तम्भों पर ही टिका है। दोनों का समाज में महत्व है, किन्तु फिर भी दोनों को समाज में समान अधिकार प्राप्त नहीं है। बाबा साहेब का मानना था कि नारी ही समाज का मुख्य आधार स्तम्भ होती है। वह शिक्षा की प्रथम पाठशाला होती है। अत: उन्हें निश्चित ही मानवाधिकारों से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए। नारी को आगे बढ़ने का अवसर देना ही होगा (वर्मा, 2011)।

वैदिक काल में नारी की स्थिति

वैदिक काल में नारी की स्थिति काफी अच्छी थी। भारत वर्ष में स्त्रियों को देवियों की तरह पूजने और सम्मान देने की प्रथा प्राचीन काल से ही रही है। समाज में तथा सभ्यता के विकास में महिलाओं का योगदान सर्वोपरि रहा है। कभी वह बेटी बनकर परिवार की शोभा बढ़ाती है तो कभी माँ की भूमिका का निर्वहन करती है। वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा का समान अधिकार प्राप्त था जिनमें बहुत सी विदुषी थीं, जैसे - लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्वबारा, आत्रेयी, श्रद्धा, अवन्ति आदि। वैदिक युग में तो कुछ महिलाओं को उपनयन संस्कार का भी अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को सम्पत्ति पर भी अधिकार प्राप्त था। गृहस्वामिनी होने के अलावा उनका कार्यक्षेत्र चूल्हा-चौकी तक सीमित नहीं था, वे घर से बाहर भी निकलती थीं। क्षत्रिय स्त्रियों को तो युद्ध में भी पराक्रम दिखाने का अधिकार प्राप्त था। इस युग में सती प्रथा, पर्दा प्रथा एवं बाल-विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथाएँ व्याप्त नहीं थीं। स्त्रियों के विवाह के लिए एक परिपक्व उम्र सुनिनिश्चित थी। स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति आदि पर अधिकार समान रूप से प्राप्त थे।

महात्मा बुद्ध के समय नारी की स्थिति

सर्वप्रथम नारी के प्रति यदि किसी के मन में करुणा का संचार हुआ तो वह महात्मा बुद्ध थे। यह सत्य है कि शुरू में बुद्ध स्त्री के संघ में शामिल होने के विरोधी थे किन्तु बाद में शिष्य आनन्द की प्रार्थना पर स्त्रियों को संघ में शामिल होने की अनुमति दी। बुद्ध ने हमेशा नारी को सम्मान प्रदान करने और उनकी स्थिति में सुधार का प्रयास किया। प्राचीन समय में नारी को संन्यास लेने का अधिकर नहीं था। बुद्ध ने नारी को प्रव्रज्या देकर पुरुष के बराबर लाकर खड़ा कर दिया और भद्रे कहकर सम्बोधित किया। उन्होंने नारी जाति को पुरुषों के बराबर ज्ञानार्जन का अधिकार दिया तथा अपने अन्तर में विद्यमान आध्यात्मिक तेज की पहचान के साथ जानकारी देने का अधिकार दिया। इससे स्त्रियों में स्वत्वावलोकन का अहसास भी जगा। यह सर्वविदित है कि बुद्ध काल में खेमा, महाप्रजापति गौतमी, अम्बपाली, यशोधरा, विशाखा, धम्मदिना आदि अनेक स्त्रियाँ प्रख्यात विदुषी और धर्मशास्त्र पारंगत भिक्खुणी के रूप में बौद्ध इतिहास में प्रसिद्ध हुईं (मेघवाल, 2014)।

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि उस समय बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी, न ही बहु-विवाह की प्रथा थी। तथागत गौतम बुद्ध पहले महामानव थे जिन्होंने नारी को भोग्या एवं प्रजनन की मशीन से परे समाज में महत्वपूर्ण कार्य करने के अधिकार दिए। संसार में स्त्री के महत्व के विषय में बुद्ध ने कहा था - "स्त्री संसार की महानतम् विभूति है क्योंकि उसकी अपरिहार्य महत्ता है। उसके द्वारा ही बोधिसत्व तथा विश्व के अन्य शासक जन्म ग्रहण करते हैं। श्रीमती रीज डेविडस का कहना है कि ईसाई महिलाओं की भाँति भारतीय नारियों को भी इस स्वतन्त्रता और गतिशीलता को प्राप्त करने के लिए उन्हें पुरुषों की छाया के स्थान पर स्वतन्त्र व्यक्तित्व की सत्ता प्राप्त हो गई।" पुरुषों की छाया के रूप में उसे कितनी ही अधिक प्रशंसा, सुरक्षा तथा पोषण क्यों न प्राप्त रहा हो, उसका अपना अस्तित्व नहीं था।

बौद्धों के महान् ग्रन्थ थेरीगाथा में इस बात का उल्लेख मिलता है कि बुद्ध ने स्त्रियों को धर्म की शरण में आने के लिए निमित्त कौमार्य की अनिवार्यता नहीं रखी वरन् विवाहित, अविवाहित, वैश्या एवं विधवा सभी वर्ग की महिलाओं के लिए खुला रखा था (मेघवाल, 2014)।

कौटिल्य के समय की नारी स्थिति

कौटिल्य के समय मे अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि स्त्री की दशा न ही निम्नतर थी न ही सुदृढ़ थी। कौटिल्य के युग में स्त्री 12 वर्ष और पुरुष 16 वर्ष की अवस्था में वयस्क माने जाते थे। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में स्त्री-पुरुष के सम्भोग के लिए आयु के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। यदि कोई पुरुष यह बताए बिना किसी कन्या से विवाह करता है कि उसके किसी अन्य स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध थे, तो वह न केवल आर्थिक दंड का दुगना धन दंडस्वरूप देगा बल्कि जो शुल्क और स्त्री धन उसने वधू को दिया है वह भी जब्त हो जाएगा। कौटिल्य एक विवाह की व्यवस्था करता है परन्तु स्त्री और पुरुष को

विशेष परिस्थिति में पुनर्विवाह का अधिकार था। जिन स्त्रियों की सन्तान नहीं हुई वे दो से चार वर्ष तक प्रतीक्षा करें क्योंकि उनके पति अल्प समय के लिए विदेश गए हैं और जिन्होंने बच्चों को जन्म दिया हो, वे अपने अनुपस्थित पति का एक वर्ष से अधिक समय तक इन्तजार करें। उन्हें भरण-पोषण की राशि दी जाएगी। यदि कोई पति राजा का कर्मचारी है, तो उसकी पत्नी उसकी आजीवन प्रतीक्षा करें। यह कितना आश्चर्यजनक है कि कौटिल्य के समय में कोई पत्नी अपने पति के विरुद्ध प्रताड़ना और मानहानि का दावा कर सकती थी (अम्बेडकर, 2009), तलाक ले सकती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तलाक के लिए मोक्ष शब्द का प्रयोग किया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों को ही तलाक का अधिकार था। उस समय सती प्रथा थी या नहीं, कौटिल्य ने कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया है (मेघवाल, 2014)।

मनु के समय नारी की स्थिति

मनु द्वारा रचित मनुस्मृति में नारी की स्थिति अत्यन्त दु:खद और दयनीय थी। मनु ने स्त्री को उसके व्यक्तित्व से गिराकर इतना अधम और असहाय बना दिया कि वह सदियों से अब तक मर्दवादी जाल से मुक्त नहीं हो पाई है। मनु का कहना है -

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षिति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न पुत्री स्वातत्र्यमर्हति।।

अर्थात् स्त्री की रक्षा उसके बचपन में उसका पिता, युवावस्था में उसका पति, जब उसका पति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसके पुत्र उसकी रक्षा करते हैं। स्त्री कभी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है। यह मनुस्मृति के पाँचवे अध्याय के 148वें श्लोक में लिखा है। मनुस्मृति के अन्तर्गत प्रत्येक क्षेत्र अध्यात्म, विवाह, विवाह-विच्छेद, भरण-पोषण में मानव जगत् को प्राय: आधे हिस्से से नारी जगत् को उपेक्षित कर दिया। मनु ने कहा कि स्त्रियों को वेदाध्ययन न होने के कारण उनके संस्कार वेद-मन्त्रों से नहीं कराये जाते और वेदाध्ययन न होने के कारण वे ज्ञानशून्य भी होती हैं। वेद मन्त्रों के अध्ययन से पाप का नाश होता है, चूँकि स्त्रियाँ उनका उच्चारण नहीं कर सकतीं अत: उनमें असत् का वास होता है। मनु ने ब्राह्मणवाद को सशक्त बनाने हेतु महिलाओं को पुरुष का सहभागी नहीं बल्कि दासी बना दिया। वास्तव में मनुस्मृति के विदित विधानों में स्त्रियों का चित्रण अत्यन्त ही निम्न दर्जे का किया गया है। मनु स्त्री स्वच्छन्दता के कटु आलोचक रहे और समाज के बेहतर संचालन का आधार बनाते हुए हमेशा उसकी पराधीनता की वकालत करते हैं (अम्बेडकर, 2009)। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनु के समय से ही नारी की स्थिति और अधिकारों में ह्रास की शुरूआत हुई। इस काल में पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा और बहु विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित थीं, हालाँकि जैन धर्म जैसे आन्दोलनों ने स्त्रियों को धार्मिक अनुष्ठान में शामिल होने की अनुमति दी। भारत में नारी जाति को दासता और बन्दिशों को झेलना पड़ा, जबकि मनु से पूर्व स्त्रियाँ शिक्षा और ज्ञान के उच्च शिखर पर थीं (पाण्डेय, 2010-11)।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा नारी की स्थिति में सुधार

नारी सशक्तीकरण हेतु डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि महिलाओं और अपने बच्चों को शिक्षित कीजिए, उन्हें महत्वाकांक्षी बनाइए। महान बनना उनकी नियति है, वह महानता तो केवल संघर्ष ओर त्याग से प्राप्त हो सकती है, इसलिए उन्होंने मन्त्र दिया कि शिक्षित बनो संगठित रहो, और संघर्ष करो (हिलसायन, 2016)।

बाबा साहेब एक मानवतावादी विचारक थे, जिन्होंने स्त्रियों की मानसिक स्वतन्त्रता, सामाजिक स्वतन्त्रता, राजनीतिक स्वतन्त्रता आदि के प्रति गहन अध्ययन किया। भारतीय नारी की पीड़ा को उन्होंने बड़े करीब से जाना। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय दलितों के प्रति होने वाले अत्याचारों से दु:खी होकर कहा कि मेरा रोम-रोम चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करता है। इस आधार पर बाबा साहेब ने भारत के स्वतन्त्र होने पर तथा सुअवसर की प्राप्ति के फलस्वरूप अछूतों के अधिकारों, समस्याओं को हल करने के पश्चात् नारियों की समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया (अम्बेडकर, 2009)। बाबा साहेब ने नारियों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए एक और सुधारवादी संग्राम की घोषणा कर दी, वह था हिन्दू कोड बिल। दरअसल वह लम्बे समय से हिन्दू समाज में सुधार की जरूरत को महसूस कर रहे थे और देश के कानून मन्त्री के रूप में मिले इस अवसर का लाभ लेना चाहते थे। अम्बेडकर तो मनु के द्वारा बनाए गए स्त्री और शूद्रों की गुलामी के काले कानूनों को तोड़ना चाहते थे (परिहार, 2017)। नारी जाति को नारकीय जीवन में धकेलने वाली मनुस्मृति को डॉ. अम्बेडकर ने 25 दिसम्बर 1927 को महाड़ के ऐतिहासिक सम्मेलन में जलाकर महिलाओं की क्रान्ति का बिगुल बजा दिया (मेघवाल, 2014)। हिन्दू कोड बिल के माध्यम से वह स्त्रियों को पुरुषों के बराबर सामाजिक और आर्थिक हक दिलाने के लिए कटिबद्ध थे। हिन्दू कोड बिल में कुछ फेर-बदलकर 1948 में यह बिल संविधान निर्मात्री सभा के समक्ष पेश किया। इस बिल पर बाबा साहेब ने दिन-रात एक कर दिया, हालाँकि 1946 में राव कमेटी ने यह बिल तैयार किया था, जिसका मुख्य उद्देश्य हिन्दू कानूनों का संहिताकरण ही था। अम्बेडकर का हिन्दू कोड बिल आज भी भारतीय नारी मुक्ति का दस्तावेज माना जाता है। अम्बेडकर ने इस बिल में हिन्दू स्त्रियों को उत्तराधिकार तथा सम्पत्ति में अधिकार देने के प्रावधान को रखा।

कांग्रेस के अन्दर भी बिल को लेकर कई मतभेद थे। सरदार पटेल भी इस बिल के खिलाफ थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी सरदार पटेल का समर्थन किया तथा पद से तयागपत्र देने की धमकी दे डाली। सावरकर ने कहा कि यदि बिल देश की उन्नति में सहायक है तो इसे जरूर ही पास करना चाहिए (मेघवाल, 2014)। पंडित मदनमोहन मालवीय जैसे हिन्दू नेता बिल के विरोध में संसद के भीतर और बाहर जनमत को जाग्रत कर रहे थे लेकिन कु. पद्मजा नायडू बिल का समर्थन करने और समर्थन जुटाने के लिए सारी ताकत लगा रही थीं। 10 अगस्त 1951 को अम्बेडकर ने पत्र द्वारा अपनी दिनोंदिन गिरती तबीयत के बारे में सूचित किया, इस पर नेहरू ने उन्हें सब्र करने की सलाह दी (मून, 2020)।

अम्बेडकर का हिन्दू कोड बिल

अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल पर जनता के पक्ष को जानने के लिए इस बिल की छह हजार प्रतियाँ विभिन्न भाषाओं में छापकर लोगों में बाँट दी गईं। संविधान सभा में कुछ लोगों ने इस बिल का समर्थन भी किया जिसमें सुचेता कृपालानी, हंसा मेहता, श्रीमती दुर्गाबाई, एच.व्ही. कामत जैसे समाज सेवक भी थे। इसके साथ ही कुछ समाचार पत्रों ने भी बिल का समर्थन किया (यादव, 2016)। इसमें 9 भाग 139 धाराएँ और 7 सूचियाँ थीं। इस बिल में स्त्री को विवाह विच्छेद, अल्पायु में ही विवाह करने पर प्रतिबन्ध, जीवनसाथी का चुनाव एवं अन्तर्जातीय विवाह का अधिकार, सम्पत्ति में बेटे के बराबर बेटी का अधिकार तथा गोद लेने एवं संरक्षता के अधिकार का प्रावधान था (शास्त्री, 2018)। हिन्दू कोड बिल को 16 अगस्त 1951 को संसद के समक्ष पेश किया गया। नेहरू ने हिन्दू कोड बिल के दूसरे भाग जो विवाह और तलाक से सम्बन्धित था, को ही पेश होने दिया। 25 सितम्बर 1951 को इसे पास कर दिया गया। इससे हिन्दू समाज में बौखलाहट फैल गई। तब 26 सितम्बर को 1951 को नेहरू ने इस बिल को बिना पास किए ही वापस ले लिया। डॉ. अम्बेडकर को बहुत दु:ख हुआ। हिन्दू कोड बिल पूरा पास न होने पर बाबा साहेब का स्वप्न भंग हो गया, जिसमें उन्होंने एक ऐसा भारत देखा था जो न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की सौगात लाने वाला था। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि हिन्दू समाज व्यवस्था में ऐसी समानता स्थापित करें जहाँ स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा जैसे भेदभाव न हों। डॉ. अम्बेडकर ने दु:खी होकर 28 सितम्बर 1951 को मन्त्रीमंडल से त्यागपत्र दे दिया। हिन्दू कोड बिल को कानूनी रूप दिए जाने की खातिर न चाहते हुए भी इस विधेयक को मन्त्रीमंडल ने आगे चलकर खण्डों में विभक्त कर पारित किया, जैसे -

1. द हिन्दू मैरिज एक्ट 1955
2. द हिन्दू उतराधिकार एक्ट 1956
3. द हिन्दू माइनारिटी एण्ड गर्जियनशिप एक्ट
4. द हिन्दू एडोप्शन एक्ट 1956

1. द हिन्दू मैरिज एक्ट 1955

इस एक्ट द्वारा विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों को अपना धर्म त्यागने या परिवर्तन किए बगैर विवाह करने का अधिकार दिया गया। इसमें लड़के की उम्र 21 वर्ष तथा लड़की की उम्र 18 वर्ष कर दी गई।

2. द हिन्दू उतराधिकार एक्ट 1956

इस एक्ट के तहत एक विधवा को पुत्र या पुत्री गोद लेने का अधिकार दिया गया। वह अपनी सम्पत्ति को भी वह जिसको चाहे दे सकती है।

3. द हिन्दू माइनॉरिटी एण्ड गर्जियनशिप एक्ट

इस एक्ट के द्वारा माँ को अधिकार है कि वह अपने बच्चों के संरक्षक को बदल सके। नाबालिग बच्चों का संरक्षक नियुक्त करने में पत्नी की अनुमति आवश्यक है।

4. द हिन्दू एडॉप्शन एक्ट 1956

इस एक्ट के अनुसार कोई भी हिन्दू किसी लड़की या लड़के को गोद ले सकता है परन्तु ऐसा करने के पहले अपनी पत्नी की स्वीकृति लेना आवश्यक है परन्तु इस एक्ट के पहले यह सब इतना आसान नहीं था। इस प्रकार बाबा साहेब की बदौलत भारतीय नारी अपने अधिकारों सहित सम्मानपूर्वक जीवन जी सकती है। जीवन पर्यन्त उस धन-सम्पत्ति की अधिकारी होती है जो अपने पति के हिस्से से प्राप्त होती है। इस एक्ट में यह भी प्रावधान किया गया कि कोई अविवाहित लड़की या विधवा भी लड़के को गोद ले सकती है (अम्बेडकर, 2020)।

बाबा साहेब ने नारी जाति को ससम्मान जीवन जीने के लिए हिन्दू कोड की व्यवस्था ही नहीं की बल्कि भारतीय संविधान में नारियों की दासता की बेडियाँ काटने एवं उन्हें समानता का अधिकार दिलाने हेतु कई विधान भी बनाए जिसमें स्त्रियों को सामाजिक, वैधानिक और राजनीतिक स्तर पर पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हो और सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने के बराबर अवसर प्राप्त हो।

अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार)

अनुच्छेद 14 में कहा गया कि भारत के राज्य क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15 (धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर भेद भाव का निषेध)

1. अनुच्छेद 15 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल धर्म, जाति, मूलवंश लिंग या जन्म स्थान को लेकर विभेद नहीं करेगा।
2. राज्य को इस बात की अनुमति होती है कि वह बच्चों या महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था करे जिसमें बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था शामिल हो।

अनुच्छेद 16

1. अनुच्छेद 16 में राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।
2. राज्य नियुक्तियों में आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है या किसी पद को पिछड़े वर्ग के पक्ष में बना सकता है जिनका राज्य में समान प्रतिनिधित्व नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान में इन संवैधानिक आधिकार के अतिरिक्त भी नारी के उत्थान के लिए नीति निर्देशक तत्वों में भी ऐसे प्रावधान किए गए कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में समानता मिले। इस तरह स्त्रियाँ अपने अधिकारों को प्राप्त कर एवं कानून का संरक्षण पाकर सम्मान और स्वनिर्भर होकर स्वतन्त्र जीवन यापन कर रही हैं।

नीति-निर्देशक तत्व

अनुच्छेद 39

1. सभी नागरिकों (चाहे स्त्री हो या पुरुष हो) को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।
2. सामूहिक हित के लिए समुदाय के भौतिक संसाधनों को समान वितरण हो।
3. पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान काम के लिए समान वेतन दिया जाए।
4. स्त्री पुरुष कर्मचारी के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो, बालकों को स्वास्थ्य विकास के अवसर मिले।

अनुच्छेद 42

राज्य का यह दायित्व होगा कि यह काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा।

अनुच्छेद 44

राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के एक समान सिविल संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा (स्त्री पुरुष में बिना भेद भाव के) (लक्ष्मीकान्त, 2019)।

मूल्यांकन

भारतीय नारी उद्धारक बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रयासों से नारी जाति में चेतना उत्पन्न हुई, चिन्तन शक्ति आई, उस बेबस लाचार और बेजुबान को बोलने की शक्ति दी कि उसका जीवन सूर्य के अलौकिक प्रकाश सा जगमगा उठा, इससे सम्पूर्ण भारतीय नारी के जीवन में जागृति उत्पन्न हुई।

डॉ. अम्बेडकर ने वर्षों से बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी को आजाद करने, समानता और सामाजिक न्याय दिलाने का काम किया। डॉ. अम्बेडकर की योग्यता, बुद्धि और प्रतिभा की तो हमेशा प्रशंसा की गई। जवाहरलाल नेहरू ने भी विदेशी राजनीतिज्ञों के सामने अपने विद्वान् साथी अम्बेडकर का परिचय यह देते हुए कहा कि 'ही इज़ द ज्वेल ऑफ माय केबिनेट'। भारतीय नारी सशक्तीकरण में योगदान करने की बात है तो उन महापुरुषों के नाम का उल्लेख न किया जाए जिन्होंने नारी सशक्तीकरण में अपना सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर कर दिया तो अन्याय होगा। नारी सशक्तीकरण की ज्योति को जलाने वालों में राजा राममोहन राय,

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महामना ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले आदि थे। इन्हीं के प्रयासों से समाज व्यवस्था में परिवर्तन का शुभारम्भ हुआ। महामना फूले और प्रथम शिक्षिका सावित्रीबाई फूले द्वारा छोड़े गए अधूरे कार्यों को करने तथा उन्हें कानूनी जामा पहनाने को श्रेय डॉ. अम्बेडकर को जाता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा कही गई बातें या उनके छोड़े गए अधूरे कार्यों को पूरा करके उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि दी जा सकती है। यदि समानता एवं न्याय की आशा है तो डॉ. अम्बेडकर को भारतीय नारी उद्धारक मानना होगा।

सन्दर्भ

अम्बेडकर, भीमराव (2009) *हिन्दू नारी का उत्थान और पतन,* सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली.

अम्बेडकर, भीमराव (2020) *सम्पूर्ण वाङ्मय, हिन्दू संहिता विधेयक* (भाग-1) खंड-31, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मन्त्रालय, दिल्ली.

हिमसायन, सुधीर (2016) *महिला सशक्तीकरण और बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर,* सामाजिक न्याय सन्देश (महिला सशक्तीकरण), खंड-3.

लक्ष्मीकान्त, एम. (2019) *भारत की राजव्यवस्था,* मैकग्रॉ हिल प्रकाशक, न्यूयॉर्क.

मून, बसन्त (2020) *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर,* नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली.

मेघवाल, कुसुम (2014) *भारतीय नारी के उद्धारक : डॉ. बी.आर. अम्बेडकर,* सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली.

पाण्डेय, एस.के. (2010) *मध्यकालीन भारत,* प्रयाग एकेडमी, प्रयागराज.

परिहार, एम.एल. (2017) *बाबा साहेब अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन,* बुद्धम् पब्लिशर्स, जयपुर.

शास्त्री, सोहन लाल (2018) *हिन्दू कोड बिल और डॉ. अम्बेडकर,* सम्यक् प्रकाशन, दिल्ली.

वर्मा, बबीता (2011) *गाँधी अम्बेडकर दलित एवं सामाजिक न्याय,* पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स जयपुर.

यादव, बृजेश कुमार (2016) *महिला सशक्तीकरण की आधारशिला : हिन्दू कोड बिल,* सामाजिक न्याय सन्देश (महिला सशक्तीकरण), खंड-3.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 194-206)
UGC-CARE (Group-I)

अठारहवीं शताब्दी के दौरान मेवात में कृषि उत्पादन प्रणाली : अरसत्ता दस्तावेजों पर आधारित

पूजा साहू*

किसी क्षेत्र की प्राकृतिक स्थिति अर्थात् वहाँ की जलवायु, खनिज पदार्थ, नदियाँ, पर्वत शृंखलाएँ, विभिन्न प्रकार की भूमि एवं कृषि उत्पादन प्रणालियाँ उस क्षेत्र के भूगोल से सम्बन्धित अध्ययन सामग्री होती हैं जो कि उस क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास के निर्माण में सहायक होती हैं। किसी भी क्षेत्र के इतिहास पर उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। हमारा अध्ययन क्षेत्र मेवात अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण इतिहास में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। मेवात क्षेत्र को उसकी मिट्टी की गुणवत्ता एवं वर्षा के पैटर्न के आधार पर अर्ध शुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किया गया है। यहाँ की पारिस्थितिक स्थितियाँ इस क्षेत्र की कृषि उत्पादन प्रणाली को काफी हद तक प्रभावित करती हैं। वर्षा की कमी एवं मिट्टी में लवणता के कारण क्षेत्र में कृषि उत्पादन गम्भीर रूप से प्रभावित रहा। सीमित कृषि उत्पादन के कारण यहाँ के लोगों ने हमेशा सीमित संसाधनों में ही जीवन यापन किया। मुगल साम्राज्य से इसकी निकटता ने क्षेत्र पर नियन्त्रण को महत्वपूर्ण बना दिया इसके अलावा क्षेत्र का आर्थिक महत्व इस तथ्य में निहित था कि ऊपरी गंगा के मैदान को गुजरात के बन्दरगाह से जोड़ने वाले व्यापारिक मार्ग यहीं से गुजरते थे। लेकिन मुगल

*शोधार्थी, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
E-mail: pooja.rs.history@mdurohtak.ac.in

प्रशासन के साथ इसका एकीकरण इसकी अर्थव्यवस्था में केवल सीमित वृद्धि ही ला सका। अठारहवीं शताब्दी के अन्तर्गत मेवात क्षेत्र आमेर राज्य के शासकों द्वारा तनख्वाह जागीर के रूप में लिया गया था। इस समय के ग्रामीण एवं परगना स्तर के अनेक भू-राजस्व अभिलेख जैसे अरसत्ता, याददाश्त, चिट्ठी और अर्जदाश्त मेवात में कृषि उत्पादन की प्रणाली पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में अरसत्ता दस्तावेजों की सहायता से मेवात की कृषि उत्पादन प्रणाली, प्रमुख फसलें, किसान-साहूकार सम्बन्ध, व्यापारिक मार्ग एवं व्यापार वाणिज्य पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द : मेवात, अलवर, कोटला, आमेर, कछवाहा राजपूत।

प्रस्तावना

मेवात दिल्ली से लगभग 64 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह क्षेत्र राजस्थान के अलवर और भरतपुर जिले और वर्तमान हरियाणा के नूंह जिले में विस्तृत है। मेवात के अन्तर्गत वर्तमान में 9 तहसीलें हैं - अलवर जिले में तिजारा, किशनगढ़ और लक्ष्मणगढ़, भरतपुर जिले में डीग, नगर और कामां तथा नूंह जिले में नूंह और फिरोजपुर झिरका। मेवात का अर्थ है मेवों का निवास स्थान। मेव शब्द की उत्पत्ति मवास से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है - लुटेरों के छुपने का स्थान। इसलिए इंडो-पर्शियन इतिहास तथा औपनिवेशिक रेकॉर्ड में इस शब्द को दुष्ट, लुटेरा तथा बदमाश का पर्याय माना जाता है (लाउस, 1988)।

मेवात की प्रमुख भौगोलिक विशेषता उसकी अरावली पर्वत शृंखलाओं से घिरा होना है। काला पहाड़ अर्थात् अरावली पर्वत मेवात के केन्द्र में है, जो हरियाणा को राजस्थान से अलग करता है। काला पहाड़ के बारे में एक लोकप्रिय कहावत मेवात की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करती है -

इत दिल्ली उत आगरा, इत मथुरा और बैराठ।
मेरो कालों पहाड़ सुहावणों, जाके बीच बसे मेवात।।

- मोरवाल, 2005-6

मेवात की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यहाँ का भूगोल है। अरावली पहाड़ियाँ राजस्थान के पश्चिम से उदय होकर हरियाणा के इसी भाग से गुजर कर दिल्ली तक पहुँचती हैं। अरावली पहाड़ियों के बीच उपजाऊ घाटियाँ एवं जलोढ़ मैदान का क्षेत्र है, जबकि पहाड़ियों का ऊपरी हिस्सा बंजर है। यहाँ की मृदा हल्की रेतीली एवं दोमट है (पाउलेट, 1878)।

मेवात उष्णकटिबन्धीय अर्ध शुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। 38 से 48 डिग्री सेल्सियस तापमान के साथ मई और जून वर्ष के सबसे गर्म महिने हैं जबकि 4 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान के साथ जनवरी सबसे ठंडा महिना है। ग्रीष्म काल में यहाँ धूल भरी गर्म हवाएँ (लू) चलती हैं। औसत वार्षिक वर्षा 336 से 440 मिलीलीटर तक होती है जो जुलाई महिने में अत्यधिक होती है। यहाँ की शुष्क हवा में एक मानक विशेषता है जिसके कारण मेवात के अधिकांश भाग में आर्द्रता काफी कम होती है। इस प्रकार शुष्क मौसम की स्थिति

अनियमित वार्षिक वर्षा, वायु में आर्द्रता की कमी एवं मिट्टी में लवणता ने यहाँ के निवासियों को स्वभाविक रूप से कठोर, जिद्दी एवं लड़ाकू प्रवृत्ति का बना दिया है (चैनिंग, 1882)।

यह क्षेत्र खनिज सम्पदा के मामले में भी समृद्ध है। अलवर राज्य के बन्दोबस्त अधिकारी पी.डब्ल्यू. पाउलेट ने अलवर सरकार के अन्तर्गत आने वाली अरावली पहाड़ियों को खनिज सम्पदा के मामले में चार समूहों में विभाजित किया है - मंडन समूह, अजबगढ़ समूह, कुशलगढ़ समूह और अलवर समूह (पाउलेट, 1878)।

अलवर समूह अपनी ऊँची पहाड़ियों एवं खनिज पदार्थों के सबसे बड़े हिस्से को समाहित करने के कारण सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। पूर्व में मंडावर से लेकर राजगढ़ तक और पश्चिम में प्रतापगढ़ तक फैली पहाड़ियों के समूह के साथ-साथ तिजारा पहाड़ियों का पूरा हिस्सा इस समूह के अन्तर्गत समाहित है। इस समूह का प्रमुख खनिज क्वार्टरजाइट है, जबकि कुशलगढ़ समूह में चूना पत्थर का बड़ा फैलाव पाया जाता है (पाउलेट, 1878)।

मेवात क्षेत्र के अन्तर्गत तीन प्रकार की मिट्टी पाई जाती है - रेतीली दोमट, चिकनी दोमट और चिकनी मिट्टी। नूंह, तपूकड़ा, तावडू, किशनगढ़, गोविन्दगढ़, अलवर और रामगढ़ के हिस्से में मुख्यत: इस प्रकार की मिट्टी पाई जाती है जो कि अरावली पर्वतमाला का हिस्सा है। इस मिट्टी को पहाड़ी मिट्टी के रूप में भी जाना जाता है (मिश्रा, 1984)।

तावडू परगने में रेतीली मिट्टी पाई जाती है जो मुख्य रूप से बाजरा एवं दालों के उत्पादन के लिए अच्छी मानी जाती है । परगना कोटला के अन्तर्गत रेतीली दोमट मिट्टी पाई जाती है जिसे दाहर के नाम से भी जाना जाता है जिसके अन्तर्गत 116 गाँव शामिल हैं। इस परगने की मिट्टी कपास, जौं, गेहूँ और चना उगाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है (चैनिंग, 1882)।

मेवात के विभिन्न परगनों में मिट्टी का विभाजन इस प्रकार है-

मिट्टी के प्रकार	परगना वार वर्णन
गहरी उत्पत्ति की हल्की रेतीली से रेतीली दोमट मिट्टी	कोटकासिम का उत्तरी और पश्चिमी भाग, तिजारा का उत्तरी और पश्चिमी भाग, तावडू का दक्षिणी भाग, फिरोजपुर झिरका, नूंह, कोटला
हल्की बनावट की मध्य गहरी मिट्टी	मंडावर और रामगढ़ में
जलोढ़ मूल की उपजाऊ मिट्टी	किशनगढ़, लक्ष्मणगढ़, तिजारा का पूर्वी भाग, उमरई का उत्तरी भाग, फिरोजपुर झिरका, पुन्हाना
भारी चिकनी मिट्टी से चिकनी दोमट मिट्टी	लक्ष्मणगढ़ का पश्चिमी और दक्षिणी भाग, गाजी का थाना, राजगढ़
हाल ही में पैदा हुई दोमट से चिकनी मिट्टी तक खराब निकास वाली पहाड़ी भूमि	गाजी का थाना का पहाड़ी क्षेत्र, राजगढ़ और उमरई

(मिश्रा, 1984)

इस क्षेत्र में साहिबी, रूपारेल, इन्दौरी, चूहड़सिद्ध, लन्दोहा और बाणगंगा मुख्य मौसमी नदियाँ हैं, जिनमें साल में केवल एक-दो महिने के लिए पानी बहता है। इस क्षेत्र में कोई बारहमासी नदी नहीं है, जिसके कारण यहाँ पीने एवं सिंचाई के लिए सदैव पानी की समस्या बनी रहती है। हालांकि लोगों द्वारा इन नदियों से पानी लेकर सिंचाई में प्रयोग किया जाता रहा है। पाउलेट हमें बताते हैं कि अलवर तहसील में रूपारेल और चूहड़सिद्ध सिंचाई के लिए सबसे उपयोगी नाले थे (पाउलेट, 1878)।

मिट्टी के नीचे पाए जाने वाले पानी की गुणवत्ता कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है, जिसके कारण अच्छी फसल उत्पन्न होती है। लेकिन दुर्भाग्यवश मेवात में मीठे पानी का अभाव रहा है। परगना फिरोजपुर झिरका और नूंह में मीठे, खारे और नमकीन तीन प्रकार के जल मिलते हैं। परगना अलवर और तिजारा में भी कई प्रकार के जल पाए जाते हैं। स्थानीय बोलचाल में इन्हें मतवाला, मलमाला, रुकल्ला, मीठा, खारा, तेलिया और बनार तेलिया के नाम से जाना जाता है। मतवाले की तुलना में मलमाला, रुकल्ला और मीठा गुणवत्ता में निम्न माने जाते हैं, लेकिन फसलों की सिंचाई में इनका इस्तेमाल किया जाता है (पाउलेट, 1878)।

इस क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएँ सदैव ही सीमित रहीं। प्रमुख दस्तावेजों से पता चलता है कि कुओं, नालों, झीलों और नदियों के रूप में यहाँ सिंचाई के संसाधन सीमित थे। कुएँ इस क्षेत्र में सिंचाई के प्रमुख साधन थे, जो दो प्रकार के थे - कच्चा और पक्का। अकाल के समय में बड़ी संख्या में कच्चे कुएँ खोदे जाते थे। कुओं से पानी खेतों तक पहुँचाने के लिए चरस और ढेकली का प्रयोग किया जाता था (चैनिंग, 1882)।

पाउलेट ने परगना कोटला में 92 ढेकलियों का संचालन देखा था। कृषि उत्पादन एवं अर्थव्यवस्था को विस्तारित करने में कुओं का महत्व याद्दाश्तियों और अर्जदाश्तों से पता चलता है। 1727 ई. की एक याद्दाश्ती परगना पहाड़ी में कुओं का विवरण प्रस्तुत करती है, जहाँ 33 गाँवों में से कुल तीन गाँवों में ही कुए थे (याद्दाश्ती, वि.सं. 1784/1727 ई.)।

अधिकांश गाँवों में रबी की फसल कुओं की कमी के कारण नष्ट हो जाती थी। इसलिए राज्य ने कृषि उत्पादन स्थिर करने के लिए ऋण प्रदान किए तथा नये कुओं का निर्माण करवाया। उदाहरण के लिए, 1685 में, मेवात में भयंकर अकाल पड़ा, जिसके कारण किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। उस समय प्रशासन ने वित्तीय सहयोग प्रदान करके किसानों द्वारा एक परगने में 100 नये कुओं के निर्माण का प्रयास किया। जो किसान नये कुए खोदते थे, उन्हें भू-राजस्व की दर में छूट भी दी जाती थी। इस प्रकार एक अन्य परगने में 150 नये कुओं का निर्माण किया गया, जिनमें से अधिकांश कच्चे थे (अर्जदास्त, वि.सं. 1742/1685 ई.)।

चैनिंग की रिपोर्ट के अनुसार, परगना तावडू में 91 में से 63 गाँव की 9.6 प्रतिशत भूमि के लिए ही कुए थे जबकि शेष 18 गाँवों में पहाड़ों की निकटता के कारण कुओं का अभाव था। इसी तरह परगना कोटला में अच्छी तरह सिंचित क्षेत्र कम था जो कि कुल फसली

क्षेत्र का 3.4 प्रतिशत मात्र था (चैनिंग, 1882)। परगना कोटला की भूमि दाहर (चिकनौत) कहलाती थी जो तीन झीलों अर्थात् कोटला, चन्देनी और खलीलपुर द्वारा सिंचित थी। यहाँ का पानी इतना खारा था कि उसे सिंचाई के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता था। अधिकांश किसान सिंचाई के लिए नहीं बल्कि नमक बनाने के लिए कुए खोदते थे (चैनिंग, 1882)।

कुछ गाँवों में जो झीलों के आसपास स्थित थे, किसान सिंचाई के लिए ढेकली का प्रयोग करते थे। परगना फिरोजपुर झिरका में, जिसमें 229 मेव गाँव शामिल थे, में से 198 गाँवों में 1225 कुए थे, इस परगने में बड़ी संख्या में पक्के कुए थे (चैनिंग, 1882)।

अठारहवीं शताब्दी की शुरूआत में पानी के प्रयोग को लेकर उठे विवादों का वर्णन भी हमें दस्तावेजों में मिलता है। उदाहरण के लिए परगना खोहरी के सात गाँवों के किसानों ने शिकायत की कि रूपारेल नदी पर बाँध के निर्माण के कारण उन पर अतिरिक्त लगान लगाया जा रहा है, जबकि वे अपने खेतों की सिंचाई के लिए इस बाँध के पानी का उपयोग ही नहीं करते (चिट्ठी, वि.सं. 1782/1725 ई.; वि.सं. 1790/1733 ई.)। खिलोहरा परगना के टप्पा रामगढ़ के किसानों ने शिकायत की कि वे पिछले कई वर्षों से पहाड़ियों से आने वाली जलधारा के पानी का उपयोग कर रहे हैं लेकिन अब घाटी के गाँवों के पंवार राजपूत पटेल जबर्दस्ती अपने गाँवों में पानी ले जा रहे हैं (चिट्ठी, वि.सं. 1789/1727 ई.)।

मध्यकालीन स्रोत इस क्षेत्र में कृषि उपकरणों और प्रचलित प्रथा की प्रकृति पर अधिक प्रकाश नहीं डालते, जिस कारण हमें औपनिवेशिक रिपोर्टों और जिला गजेटियरों पर निर्भर रहना पड़ता है। हमारे अध्ययन की अवधि और इन रिपोर्टों के मध्य लगभग एक सदी के अन्तराल के बावजूद हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि इन रिपोर्टों में दर्ज उपकरण और पद्धतियाँ मध्य काल से ही प्रचलित रही होंगी।

पाउलेट की रिपोर्ट के अनुसार इस क्षेत्र में खरीफ फसल के लिए भूमि तैयार करने के लिए बारिश से पहले एक या दो जुताई किसानों द्वारा की जाती थी ताकि बारिश का पानी आसानी से अवशोषित हो सके। गन्ने की खेती के लिए नवम्बर में एक बार भूमि की जुताई, कपास की खेती के लिए मार्च में एक बार, बाजरा और दालों के लिए दो बार और ज्वार के लिए तीन बार भूमि की जुताई आवश्यक थी। रबी की फसल में गेहूँ के लिए पाँच बार, जौ के लिए चार बार तथा चने के लिए एक या दो बार जुताई की आवश्यकता पड़ती थी (पाउलेट, 1878)।

उन्नीसवीं शताब्दी में किसानों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कृषि उपकरण अठारहवीं शताब्दी में भी लगभग समान ही थे। हल लकड़ी और लोहे के बने होते थे। बाँस के लम्बे हत्थे वाले हाथ के कुदाल का उपयोग बागवानी के लिए किया जाता था। दराती (हँसिया) फसल काटने का प्रमुख औजार था। मांझा बैलों की एक जोड़ी द्वारा खींचा जाता था, जिसका उपयोग जमीन को समतल करने के लिए होता था। दताली का प्रयोग मेड़ बनाने, मिट्टी में खाद्य उर्वरक को फैलाने के लिए किया जाता था। जेली एक बहुउद्देशीय कृषि उपकरण था, जिसका प्रयोग कटी हुई फसल को इकट्ठा करने और बाड़ लगाने के लिए किया जाता था। गंडासी का

प्रयोग झाड़ियों और खरपतवार को साफ करके जुताई बुवाई के लिए खेत तैयार करने के लिए किया जाता था। इसका प्रयोग बाजरे की कटाई करने के लिए भी होता था (पाउलेट, 1878)।

मेवात क्षेत्र में सामान्यत: दो साल का फसल परावर्तन होता था। खरीफ के मौसम में कपास, उसके बाद रबी के मौसम में तम्बाकू, फिर खरीफ के मौसम में बाजरा और अन्त में रबी के मौसम में जौ होता था। अच्छी सिंचित दोहरी फसल वाली भूमि पर खरीफ फसल में ग्वार, बाजरा और रबी फसल में जौ, चना या गेहूँ की खेती की जाती थी। सिंचित भूमि पर जहाँ एक से अधिक फसल की खेती अव्यावहारिक थी, मोंठ और बाजरा की फसल उगाई जाती थी। ज्वार, बाजरा और उड़द भी इस क्षेत्र में परावर्तन के लिए उपयुक्त फसल मानी जाती थी (पाउलेट, 1878)।

मेवात क्षेत्र में पारिस्थितिक एवं भौगोलिक बाधाओं के अनुरूप कृषि करना अपने आप में एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। सूरजभान भारद्वाज उल्लेख करते हैं कि मेवात क्षेत्र में 32 खरीफ तथा 34 रबी फसलों की खेती की जाती थी। प्रत्येक परगने में एक वर्ष में उगाई जाने वाली फसलों की कुल संख्या 40 से 57 तक होती थी, जिसमें सभी प्रमुख खाद्य और नकदी फसलें शामिल होती थी। खाद्यान्नों, दालों और तेल उत्पादक फसलों की पर्याप्त विविधता ने क्षेत्रीय आबादी को सुदृढ़ता प्रदान की। इस प्रकार फसलों की विविधता कृषि उत्पादन की महत्वपूर्ण विशेषता थी (भारद्वाज, 2016)।

अरसत्ता दस्तावेज रबी और खरीफ की विभिन्न फसलों की जानकारी देते हैं। खरीफ और रबी की प्रमुख फसलें अनाज, दालें, सब्जियाँ और नकदी फसलों का मिश्रण थीं। कुछ फसलों का प्रयोग घरेलू कामों के लिए तथा कुछ का उत्पादन बाजारों के लिए किया जाता था। खरीफ की सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसलें ज्वार, बाजरा, मक्का, धान, रागी, कोदोन (कोदो बाजरा), कुरी, सई, वर्ती, कगुनी, रोटिको, रालो इत्यादि थी। मुख्य नकदी फसलें कपास, गन्ना, तिलहन, नील, तम्बाकू, सन थीं। डोडी या अफीम की खेती परगना पिंडयान, मौजपुर और हरसाना में की जाती थी। दालों में मुख्य फसलें मोंठ, मूँग और उड़द थीं। बड़ी संख्या में सब्जियाँ जैसे तोरई, बैंगन, आरिया, गाजर, प्याज, शकरकन्दी, तरबूज, खरबूज, छोला और चीना उगाई जाती थी। इसके अतिरिक्त सभी परगनों में चारा फसलों की खेती भी की जाती थी। रबी के मौसम में गेहूँ और चना के साथ-साथ नकदी फसलों जैसे सरसों, अजवाइन, तम्बाकू, धनिया और भाँग आदि उगाए जाते थे। अधिकांश परगनों में गाजर, मूली, तोरई, बैंगन और प्याज उगाई जाती थी (भारद्वाज, 2016)।

सूरजभान भारद्वाज उल्लेख करते हैं कि रबी के मौसम में यहाँ मिश्रित फसलों की खेती भी होती थी। जैसे कि गोचनी (चने और जौ का मिश्रण), गोजरा (गेहूँ और जौ का मिश्रण), बेझरी (चने और जौ का मिश्रण)। मिश्रित फसलों के कुछ लाभ भी थे। पहला, असमान और पथरीले भूभाग के कारण सिंचाई के सीमित साधनों को देखते हुए मिश्रित फसल को एक विशेष फसल के विफल होने की सम्भावना के विरुद्ध एक सुरक्षा तन्त्र के रूप में

अपनाया गया। दूसरा, अरसत्ताओं से यह स्पष्ट है कि राज्य मिश्रित फसलों पर जब्ती प्रणाली की तुलना में बटाई प्रणाली के तहत कम दर पर भू-राजस्व वसूल करता था। इस प्रकार मिश्रित फसलों ने किसानों को राजस्व अधिकारियों से बचाया। किसानों ने एकल फसल की तुलना में मिश्रित फसल उगाने पर अत्यधिक बल दिया, क्योंकि एकल फसल की तुलना में इन फसलों पर उन्हें कम करों का भुगतान करना पड़ता था (भारद्वाज, 2016)।

बाजरा और ज्वार मुख्य खरीफ फसलें थीं, जो अन्य फसलों की तुलना में बड़े क्षेत्र में होती थीं। खाद्य फसलों का मवेशियों के चारे के रूप में भी प्रयोग किया जाता था। मानसून की पहली बारिश के बाद ही इनकी खेती होती थी। रबी की फसलों में जौ और चने को गेहूँ की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती थी, इसलिए यह अन्य फसलों की तुलना में बड़े क्षेत्र में उगाए जाते थे (भारद्वाज, 2016)।

गुरुग्राम जिले की ब्रिटिश बन्दोबस्त रिपोर्ट के अनुसार नकदी फसलों में कपास, तिजारा सरकार के अन्तर्गत उगाई जाती थी। गन्ना एवं नील, मेवात के सभी परगनों में नहीं उगाये जाते थे। आईन-ए-अकबरी में तिजारा सरकार के परगने कोटला, उमरा उमरी, उजीना, साकरस, पिनगवां और फिरोजपुर झिरका में नील की खेती के साक्ष्य मिलते हैं (फजल, 1978)।

भारद्वाज अरसत्ताओं पर आधारित आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि परगना पिरागपुर को छोड़कर सभी परगनों में रबी फसलों के मुकाबले खरीफ फसलों के तहत कम क्षेत्र था। दोनों प्रकार की फसलों को उगाने के लिए जलवायु परिस्थितियाँ भी अलग-अलग थीं। खरीफ की फसलें मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर थीं जबकि रबी की फसलें शीत ऋतु में होती थी और उन्हें कृत्रिम सिंचाई, बीज, हल, उर्वरक तथा बैल की आवश्यकता पड़ती थी, जो केवल अमीर किसान ही रखते थे। इसलिए गरीब किसानों के लिए रबी की फसल उगाना सम्भव नहीं था। परगना पिरागपुर और अटेला भाबरा में अपेक्षाकृत बड़े क्षेत्र में रबी फसलें उगाई जाती थीं। भौगोलिक रूप से ये दोनों क्षेत्र मैदानी इलाकों में स्थित थे, जहाँ उपजाऊ भूमि और सिंचाई के लिए कुओं की उपलब्धता ने रबी फसलों को अत्यधिक प्रोत्साहित किया (भारद्वाज, 2016)।

अमीर एवं गरीब किसानों द्वारा अपनाई गई फसल पद्धति में भी बहुत अन्तर था। गरीब किसान की जोत पर फसल पद्धति में मुख्य रूप से उनकी निर्वाह आवश्यकता को पूरा करने के लिए उगाई जाने वाली फसलें ही प्रमुख थीं जबकि धनी वर्गों ने अपनी जोत का एक हिस्सा नकदी फसलों और बेहतर खाद्य फसलों की खेती के लिए समर्पित किया हुआ था। खरीफ मौसम में परगना मौजपुर में खेती के तहत कुल क्षेत्रफल 1810 बीघा था जिसमें से 752 बीघा और 958 बीघा में क्रमश: साधारण किसानों और अमीर किसानों द्वारा खेती की जाती थी (अरसत्ता, वि.सं. 1771/1714 ई.)।

महँगी नकदी फसलों की व्यापक खेती अमीर किसानों की जोत तक ही सीमित थी। यही हाल नील की खेती का भी था। परगना वजीरपुर के एक गाँव में 30 बीघा नील की खेती

को समर्पित थे, जिसमें से 29 बीघा में अमीर किसानों द्वारा खेती की जाती थी (अरसत्ता, वि. सं. 1769/1712 ई.)।

इस तथ्य के बावजूद की किसानों का अमीर वर्ग, छोटे किसानों की तुलना में एक लाभप्रद स्थिति में था, दस्तावेज बताते हैं कि कृषि उत्पादन की व्यवस्था में छोटे किसानों का वर्चस्व था। जिन किसानों के पास एक बैल यानि आधा हल था, उन्हें असामी (काश्तकार राजस्वदाता) कहा जाता था। ऐसे किसान जिनके पास एक हल या दो से तीन बैल होते थे, उन्हें हम छोटे किसान मान सकते हैं। जिन किसानों के पास दो से अधिक हल या चार बैल होते थे, उन्हें धनी किसान माना जाता था (याद्दाश्ती, वि.सं. 1723/1666 ई.)।

कृषि के विकास और बढ़े हुए अधिशेष के परिणामस्वरूप मेवात क्षेत्र में कई नये कस्बे भी फले-फूले। नील और कपास के उत्पादन के कारण कुछ कस्बे व्यापार केन्द्रों के रूप में उभरे। अकबर द्वारा मेवात के मुगल राज्य में राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण के बाद दिल्ली, आगरा, अलवर, तिजारा, सांगानेर, अवेरी, बसवा और राजगढ़ जैसे शहर और कस्बे शहरी आपूर्ति केन्द्र के रूप में उभरे। ये कस्बे क्षेत्र में किसानों द्वारा काफी कृषि अधिशेष के कारण विकसित हुए जो कि यहाँ के किसानों की अच्छी खेती को भी दर्शाते हैं। आईन-ए-अकबरी में मेवात क्षेत्र से प्राप्त होने वाली 41 फसलों का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि किसान न केवल खाद्य फसलें उगाते थे बल्कि नील, कपास, गन्ना और तिलहन जैसी नकदी फसलें भी उगाते थे (फजल, 1989)।

तिजारा सरकार के कोटला, बिसरू, उमरा-उमरी, उझीना, पहाड़ी और खिलोरा के परगनों में नील की खेती प्रभावशाली थी (हबीब, 1982)। फिरोजपुर झिरका, नूंह, कोटला और पुन्हाना के इलाकों में कपास का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता था। फिरोजपुर घाटी की कपास को सबसे अच्छा माना जाता था, इस क्षेत्र में 3.5 से 6.5 मन उपज प्रति एकड़ होती थी (चैनिंग, 1882)। गन्ना कोटला झील के किनारे और फिरोजपुर झिरका घाटी में उगाया जाता था, लेकिन मुख्य रूप से परगना वजीरपुर और खोहरी के गाँवों में उत्पादित किया जाता था (अरसत्ता, वि.सं. 1770/1713 ई.; वि.सं. 1774/1717 ई.; वि.सं. 1771/1714 ई.)। इस प्रकार नकद फसलों का उच्च मूल्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि व्यापारियों की बढ़ती माँग ने किसानों को ऐसी फसलें उगाने के लिए प्रोत्साहित किया।

अरसत्ता दस्तावेज हमें मेवात क्षेत्र में परगनावार नील की खेती पर सांख्यिकीय डेटा प्रदान करते हैं। 1665 में परगना कोटला में नील का उत्पादन 29.631 मन था (अरसत्ता, वि. सं. 1712/1665 ई.)। वि.सं. 1666 में परगना खोहरी के किसानों ने 615 बीघे में नील की खेती की थी (अरसत्ता, वि.सं. 1723/1666 ई.)। परगना पहाड़ी के 1139 बीघे में से 449 बीघे में इसका उत्पादन किया जाता था (अरसत्ता, वि.सं. 1723/1666 ई.)। कस्बा वजीरपुर के 456 बीघा में से केवल 31 में ही नील होती थी (अरसत्ता, वि.सं. 1723/1666 ई.)। इस प्रकार 16वीं-17वीं शताब्दी में मेवात में नील का व्यापार काफी मात्रा में फला फूला, लेकिन

अठारहवीं शताब्दी की शुरूआत में इसमें गिरावट आई। ऐसा इसलिए था क्योंकि कैरेबियन क्षेत्र में इसके उत्पादन के कारण अन्तरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय नील की माँग गिर गई थी।

अरसत्ता दस्तावेज हमें मेवात क्षेत्र के कई परगनों में कपास उत्पादन पर सांख्यिकी आंकड़े भी प्रदान करते हैं। 1664 में परगना खोहरी में कपास का उत्पादन कुल उत्पादन का 3.5 प्रतिशत था जबकि 1716 में यह बढ़कर 10 प्रतिशत हो गया (अरसत्ता, वि.सं. 1721/1664 ई., वि.सं. 1773/1716 ई.)। 1717 में परगना वजीरपुर और जलालपुर में यह कुल उत्पादन का क्रमशः 14 और 17 प्रतिशत था (अरसत्ता, वि.सं. 1774/1717 ई.)।

उपर्युक्त तथ्यों से पता चलता है कि मेवात में किसान कपास, नील, गन्ना और तिलहन जैसी नकदी फसलें उगाते थे, जिन्हें पास के कस्बों में निर्यात किया जाता था। हर कस्बों में महाजन रहते थे और सीधे किसानों से उपज खरीदते थे। यहाँ तक कि राज्य का हिस्सा किसानों द्वारा भुगतान किए गए भू-राजस्व के रूप में राज्य के अधिकारियों द्वारा स्थानीय महाजनों को बेच दिया जाता था (भारद्वाज, 2014)। वि.सं. 1739 में कस्बा पहाड़ी के तातरा और हरकिशन नामक महाजनों ने किसानों से 3798 मन अनाज खरीदा (अरसत्ता, वि. सं. 1796/1739 ई.)। वि.सं. 1666 में कस्बा पिंडयान के करमचन्द और चतरा नामक महाजनों ने किसानों से 1400 मन रबी की फसल खरीदी (अरसत्ता, वि.सं. 1723/1666 ई.)। वि.सं. 1666 में किसानों ने कस्बा जलालपुर के महाजनों को तिल, मूँग, मोठ और उड़द बेची थी (अरसत्ता, वि.सं. 1723/1666 ई.)। इस प्रकार प्रत्येक गाँव के किसानों का निकटतम कस्बों के महाजनों से सीधा सम्बन्ध था। महाजन न केवल किसानों से कृषि उपज खरीदते थे बल्कि वे बुवाई के मौसम और अभाव की अवधि के दौरान जरूरतमन्द किसानों को ऋण भी देते थे।

मेवात के कई कस्बों में तेल कोल्हू मिले थे, जिनमें सरसों और तिलहन से तेल निकाला जाता था। किसान स्वयं के उपभोग के लिए तेल निकालने के लिए अपने तिलहनों को कस्बों में लाते थे। अरसत्ता दस्तावेजों के अनुसार मौजपुर, पिंडयान, पहाड़ी, हरसाना, मंडावर और वजीरपुर कस्बों में क्रमशः 17, 10, 7, 6, 5 और 4 तेल कोल्हू थे (अरसत्ता, वि. सं. 1787/1730 ई.)। इन तेल कोल्हू को तेलियों द्वारा स्थापित किया गया था, जो व्यापारियों को तेल बेचते थे। तेलियों को राज्य को एक उपकर देना पड़ता था, जिसे 'हासिल घाना तेली' के नाम से जाना जाता था। राज्य घाना तेली उपकर दो से चार रुपए की दर से वसूल करता था (अरसत्ता, वि.सं. 1799/1742 ई.)।

मेवात के कुछ गाँवों में किसानों ने स्वयं के गन्ना कोल्हू (लहरी) स्थापित किए जिसमें गुड़ बनाने के लिए गन्ने से रस निकाला जाता था। दस्तावेजों में उल्लेख है कि किसानों ने परगना वजीरपुर के छह गाँवों में 30 लहरिया (गन्ना कोल्हू) स्थापित की थीं (अरसत्ता, वि. सं. 1770/1713 ई.)। किसान प्रत्येक लहरी पर चार रुपए की दर से 'हासिल गुड़ घाना' कर राज्य को अदा करता था (अरसत्ता, वि.सं. 1774/1717 ई.)।

महाजन किसानों से गुड़ खरीदते थे, हालांकि सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण मेवात क्षेत्र में गन्ने की खेती व्यापक नहीं थी। इस प्रकार स्थानीय महाजन ग्रामीण इलाकों से कृषि उपज खरीद कर कस्बा में संचालित करते थे। महाजनों ने न केवल किसानों से नकदी फसलें खरीदी बल्कि आसपास के गाँवों में उनके स्वामित्व वाली कृषि भूमि में फसलों का उत्पादन भी किया। कुल मिलाकर इस प्रक्रिया में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बहुत मजबूत किया और कस्बों तथा नगरों के विकास की सुविधा प्रदान की (भारद्वाज, 2014)।

महाजन ज्यादातर कस्बों में रहते थे और व्यापार के साथ-साथ खेती में भी लगे रहते थे। उदाहरण के लिए कस्बा पहाड़ी के महाजन जैसे हरकिशन, खुशहालीराम, सीताराम और तारा व्यापार के साथ-साथ खेती भी करते थे (अरसत्ता, वि.सं. 1792/1735 ई., वि.सं. 1798/1741 ई.)।

अरसत्ता दस्तावेज हमें यह भी बताते हैं कि कई मामलों में महाजन किसानों से अग्रिम रूप से कपास और नील जैसी नकदी फसलें भी खरीदते थे। वि.सं. 1641 में, सांगानेर के महाजनों ने परगना कोटला के किसानों से 30 मन नील अग्रिम रूप में 25 रुपए प्रति माह की दर से खरीदा (अर्जदाश्त, वि.सं. 1698/1641 ई.)। वि.सं. 1683 में, हिंडौन के महाजनों ने मेवात के किसानों से 75 मन नील अग्रिम रूप में खरीदा था (अर्जदाश्त, वि.सं. 1740/1683 ई.)। पेल्सर्ट ने उल्लेख किया है कि मेवात के कस्बे सालाना नील की 1000 गाँठों का निर्यात करते थे (पेल्सर्ट, 1925)।

दूरदराज के क्षेत्रों के व्यापारी नील और कपास खरीदने के लिए मेवात के मुख्य शहरों में आते थे। भेरा और कसाब (पाकिस्तान) के बलोच व्यापारी आमेर के राजा के लिए 800 ऊँटों पर लादकर फिटकरी लाए थे और लौटते समय उन्होंने मेवात के कस्बों से कपास खरीदा था (अर्जदाश्त, वि.सं. 1755/1698 ई.)।

मेवात की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि दिल्ली और जयपुर तथा दिल्ली और आगरा के बीच व्यापार मार्ग मेवात से होकर गुजरता था। मेवात के कई छोटे मार्ग थे, जो इन दो प्रमुख मार्गों को आपस में जोड़ते थे। ऐसा ही एक मार्ग पुन्हाना होता हुआ गुरुग्राम से फिरोजपुर झिरका तक जाता था। एक अन्य मार्ग फिरोजपुर को तिजारा से जोड़ता था। इसके साथ अलवर सरकार में कई मार्ग थे जो दिल्ली-जयपुर मार्ग में विलय हो गए। उनमें से एक किशनगढ़ से अलवर तक चला और दूसरा लक्ष्मणगढ़ से चलकर मौजपुर होते हुए मालाखेड़ा पहुँचा। दिल्ली-जयपुर मार्ग में शामिल होने से पहले मौजपुर से रामगढ़ तक एक और मार्ग था। कस्बा राजगढ़ दिल्ली जयपुर मार्ग पर स्थित था और सात छोटे मार्गों से जुड़ा हुआ था। कुछ छोटे व्यापार मार्ग बसवा, मछेरी, लक्ष्मणगढ़, राजगढ़ आदि से चलते थे। इस प्रकार मध्यकालीन मेवात में कई छोटे व्यापार मार्ग बिखरे हुए थे, जो दो प्रमुख व्यापार मार्ग दिल्ली-जयपुर और दिल्ली-आगरा में शामिल हो गए थे। जिनका देश में ग्रामीण राष्ट्रीय व्यापारिक स्तर पर काफी महत्व था (चैनिंग, 1882)।

इन व्यापारिक मार्गों पर ही मेवात में बहुत सारे कस्बे फले-फूले जो व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र थे। ग्रामीण किसान अपनी फसल इन कस्बों में आकर बेचते और पर्याप्त लाभ कमाते। इन व्यापारिक मार्गों पर ही बड़े-बड़े काफिले चलते थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रमुख स्रोतों और अरसत्ता दस्तावेजों के माध्यम से हमने मेवात क्षेत्र में कृषि उत्पादन प्रणाली के सभी पहलुओं का अध्ययन किया है। मिट्टी के प्रकार, खनिज सम्पदा, नकदी एवं खाद्यान्न फसलों का उत्पादन, सिंचाई के लिए कुओं और ढेकलियों का प्रयोग, खेती में काम आने वाले औजार इत्यादि जानकारियाँ अरसत्ता दस्तावेजों में सुरक्षित मिलती हैं।

इन दस्तावेजों के माध्यम से हम मेवात क्षेत्र में 17वीं-18वीं शताब्दी के दौरान कृषि उत्पादन प्रणाली को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। खाद्यान्न और नकदी फसलों का मेवात में अधिशेष उत्पादन होता था जो दिल्ली और आगरा जैसे बड़े शहरों में खाद्य आपूर्ति को पूरा करता था। लेकिन मेवात क्षेत्र में प्राकृतिक एवं मानव निर्मित कारकों ने कृषि उत्पादन को भारी नुकसान पहुँचाया है। मीठे पानी का अभाव एवं विषम जलवायु क्षेत्र में कृषि उत्पादन के पिछड़ेपन का मुख्य कारण रहा है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तर्गत इस क्षेत्र को आमेर के कछवाहा राजपूत शासकों को इजारा पर दिए जाने के कारण कृषि उत्पादन में कमी आई। जागीरदारों ने इजारा प्रणाली का सहारा लेकर किसानों पर अनेकों गैर-परम्परागत कर लगाए तथा अत्यधिक भू-राजस्व इकट्ठा करने का प्रयास किया जिसके कारण किसानों ने न केवल खेती करना छोड़ दिया बल्कि इस क्षेत्र से बड़ी संख्या में पलायन भी किया। जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में काफी गिरावट आई और मेवात क्षेत्र पिछड़ेपन का शिकार होता चला गया।

सन्दर्भ

आमिल की चिट्ठी, परगना खिलोहरा, कार्तिक सुदी 5, वि.सं. 1789/1727 ई.

आमिल की चिट्ठी, परगना खोहरी, अषाढ़ बदी 7, वि.सं. 1782/1725 ई.; वैशाख बदी 4, वि.सं. 1790/1733 ई.

अर्जदाश्त, कार्तिक वदी 3, वि.सं. 1742/1685 ई.; कार्तिक बदी 9, वि.सं. 1742/1685 ई.

अर्जदाश्त, पौष सुदी 7, वि.सं. 1740/1683 ई.

अर्जदाश्त, सावन सुदी 3, वि.सं. 1698/1641 ई.

अर्जदाश्त, फागुन सुदी 4, वि.सं. 1755/1698 ई.

अरसत्ता दस्तावेज - राजस्थान राज्य अभिलेखागार में जयपुर राज्य से सम्बन्धित अरसत्ता दस्तावेज राजस्व रेकॉर्डों की सबसे महत्वपूर्ण श्रेणी है। यह मेवात की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं, प्रत्येक परगने में गाँव की कुल संख्या, सैनिकों को भेजे गए गाँव की कुल संख्या, प्रत्येक परगने की अनुमानित आय, बकाया, राजस्व की वसूली, परगने के विभिन्न खर्चे, बटाई, जिंसी और जब्ती

फसलों की खेती आदि का रिकॉर्ड है, जो एक परगना के फसल पैटर्न और राजस्व प्राप्तियों पर उपयोगी जानकारी प्रदान करता है।

अरसत्ता परगना जलालपुर, वि.सं. 1723/1666 ई.

अरसत्ता परगना खोहरी, वि.सं. 1721/1664 ई व 1773/1716 ई.

अरसत्ता परगना खोहरी, वि.सं. 1723/1666 ई.

अरसत्ता, परगना कोटला, वि.सं. 1712/1665 ई.

अरसत्ता परगना मौजपुर, पिंडयान, पहाड़ी, हरसाना, मंडावर, वजीरपुर, वि.सं. 1787/1730 ई.

अरसत्ता परगना मौजपुर, वि.सं. 1771/1714 ई.

अरसत्ता परगना पिंडयान, वि.सं. 1723/1666 ई.

अरसत्ता परगना पहाड़ी, वि.सं. 1723/1666 ई.

अरसत्ता परगना पहाड़ी, वि.सं. 1792/1735 ई., वि.सं. 1798/1741 ई.

अरसत्ता परगना पहाड़ी, वि.सं. 1796/1739 ई.

अरसत्ता परगना पहाड़ी, वि.सं. 1799/1742 ई.

अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1723/1666 ई.

अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1769/1712 ई.

अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1770/1713 ई.

अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1770/1713 ई.; अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1774/1717 ई.; अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1771/1714 ई.

अरसत्ता परगना वजीरपुर, वि.सं. 1774/1717 ई.

अरसत्ता परगना वजीरपुर, जलालपुर, वि.सं. 1774/1717 ई.

भारद्वाज, सूरजभान (2014), *कस्बा इन मेवात इन द मेडिएवल पीरियड,* सिटीज इन मेडिएवल इंडिया, प्राइमस बुक, न्यू दिल्ली, पृ. 322-23.

भारद्वाज, सूरजभान (2016), *कंटेस्टेशन एंड अकोमोडेशन : मेवात एंड मियोज इन मुगल इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 54-79.

चैनिंग, एफ.सी. (1882), *लैंड रेवेन्यू सेटेलमेंट ऑफ द गुरुग्राम डिस्ट्रिक्ट,* सेंट्रल जेल प्रेस, लाहौर, पृ. 6-153.

फजल अबुल (1978), *आईन-ए-अकबरी,* ट्रांसलेटेड एच.एस. जरैट, कलकत्ता रॉयल एशियाटिक सोसायटी, खंड-2, पृ. 78,103.

फजल अबुल (1989), *आईन-ए-अकबरी,* ट्रांसलेटेड बाय ब्लोचमैन, लॉ प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली, खंड-2, पृ. 76, 78, 105, 108, 114, 117.

फ्रांसिस्को पेल्सर्ट (1925), *जहांगीर इंडिया : द रिमॉन्सट्रेनिटा ऑफ फ्रांसिस्को पेल्सर्ट,* कैंब्रिज, पृ. 10-14.

हबीब, इरफान (1982), *एटलस ऑफ द मुगल एम्पायर,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली.

लाउस सीताराम (1988), *राजस्थान हिन्दी संक्षिप्त शब्दकोश,* राजस्थान ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, जोधपुर, खंड-2, पृ. 415.

मिश्रा प्रतिभा (1984), *सॉइल प्रोडक्टिविटी एंड क्रॉप पोटेंशियल, ए केस स्टडी (डिस्ट्रिक्ट अलवर, राजस्थान),* कॉन्सेप्ट, न्यू दिल्ली, पृ. 35.

मोरवाल भगवानदास (2005-6), *मेवाती लोक साहित्य में जीवन दर्शन एवं सृजन,* सम्पा. चन्दाराम मीणा, बाबू शोभा राम गवर्नमेंट कॉलेज, अलवर, पृ. 96.

पाउलेट, मेजर पी. डब्ल्यू. (1878), *गजेटियर ऑफ अलवर,* टूबनर एंड को., लन्दन, पृ. 88-181.

याद्दाश्ती हल बैल, परगना कोटला, वि.सं. 1723/1666 ई.

याद्दाश्ती हल बैल, परगना पहाड़ी, वि.सं. 1784/1727 ई.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 207-217)
UGC-CARE (Group-I)

पुस्तक समीक्षा

भाषा का बुनियादी ताना-बाना : एक संकलन

हृदयकान्त दीवान तथा रजनी द्विवेदी (सम्पा.)
एकलव्य फाउंडेशन भोपाल, 2020, पृ. 240, रु. 200
ISBN 978-93-87926-43-1

सुमित गंगवार*

'भाषा का बुनियादी ताना-बाना' पुस्तक भाषा, उसकी प्रकृति को समझने और भाषा सिखाने के दृष्टिकोणों पर विमर्श पर विवेचन का एक अद्भुत संकलन है। इस संकलन में सम्मिलित लेखों के माध्यम से भाषा का हमसे, समाज से, संस्कृति तथा हमारी पहचान को सम्बन्धों को समझने में मदद मिलती है। इस संकलन में सम्मिलित लेख और साक्षात्कार भाषा की उत्पत्ति, इंसान द्वारा भाषा के अर्जन, भाषा और विचार आदि मुद्दों के सन्दर्भ में बनी समझ और उनकी सीमाओं की चुनौतियों को प्रस्तुत करते हैं। इस संकलन में कुल 25 लेखों को सम्मिलित कर चार प्रमुख खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक खंड में खंड की प्रकृति के अनुरूप कुछ चयनित लेख हैं। कुछ मूल अंग्रेजी लेखों का हिन्दी अनुवाद है साथ ही कुछ अन्य लेखों को इसी संकलन हेतु लिखा भी गया है।

संकलन का पहला खंड 'भाषा की प्रकृति' है। इस खंड में सात (लेख संख्या 1-7) लेखों के माध्यम से मानवीय भाषा की उत्पत्ति, मानव के जीवन में उसकी महत्ता, भाषा की विशेषताएँ तथा उन विशेषताओं को समझाने का प्रयास किया गया है।

---

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail: sumitgangwarhnbgu@gmail.com

'भाषा की प्रकृति' खंड का पहला लेख अपना सर थपथपाना तथा पेट को मलना है। यह लेख 'भाषा बोलने की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है और इस प्रक्रिया के इतना जटिल होने के बावजूद भी हम भाषा को बोलने में कैसे सक्षम है?' जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर हमारी समझ विकसित करने में मदद करता है। इस लेख में बताया गया है कि जब हम बोलते हैं तब हमारे शरीर में तीन क्रियाएँ और प्रक्रियाएँ एक साथ सम्पन्न होती हैं। जिसमें पहली प्रक्रिया ध्वनि का उत्पादन; दूसरी आगे आने वाले वाक्यांशों की धवन्यात्मक तैयारी (अर्थात् उसमें शामिल आवाजों के बारे में सोचना); तथा तीसरी शेष वाक्य की रचना की योजना और अवचेतन में उसका प्रतिपादन है। हम बातचीत के दौरान न केवल ध्वनियों का उच्चारण करते हैं बल्कि बोली जाने वाली ध्वनियों के क्रम, शब्दों के उपयोग एवं आगे आने वाले वाक्यों का अनुमान भी लगाते हैं। लेख में आगे बताया है कि बोलने का सही क्रम ऐसे नियमों के तहत होता है जो उत्पादन को लयबद्ध करते हैं, यह नियम सभी भाषाओं को बोलने में मदद करते हैं।

दूसरे लेख बृहस्पति के पैरों वाले कीड़े में आइचिसन की पुस्तक 'द आर्टिकुलेट मैमल' के एक लेख 'सेलीस्टियल अनइनटेलिजिबिलिटी' की चर्चा की गई है। इस लेख में भाषा के विकास एवं संयोजन के सन्दर्भ में चॉम्स्की की परिकल्पना को प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि भाषा में नये वाक्यों तथा विमर्श का सृजन यान्त्रिक ढँग से कुछ शब्दों, वाक्यों तथा नियमों को याद करके नहीं किया जा सकता, बल्कि भाषा में कुछ निश्चित तत्व होते हैं, जिनको एक-दूसरे साथ बहुत तरीके से जोड़ा जा सकता है। हमारे द्वारा जो भी बोला जा रहा है उसके प्रत्येक वाक्य को याद करना असम्भव है। एक मूलभूत वाक्य के साथ बहुत से उपवाक्य जोड़े जाते हैं इस प्रक्रिया को संयोजीकरण कहा जाता है। लेख में आगे यह भी बताया गया है कि सभी वाक्य सीधे तौर पर शब्दों की 'लड़ियाँ' हैं जो कि शब्दों को एक के बाद एक पिरोने से बनते हैं और इनमें शब्दों के क्रम के बारे में पूरे तौर पर तो नहीं मगर आंशिक तौर पर पहले से अनुमान लगाया जा सकता है।

तीसरे लेख भाषा के डिजाइन फीचर्स में भाषा के मूल तत्वों पर चर्चा की गई है। इस लेख में बताया गया है कि मानवीय भाषा एक ऐसा उपकरण है जो हमारे व्यक्तित्व, व्यवहार, समाज तथा अन्य सभी ढाँचों एवं सम्पूर्ण जीवन का संचालन करती है। अगर हम गौर से देखें तो प्रतीकों, शब्दों, चिह्नों तथा संकेतों को मिलाकर ही सभी सम्प्रेषण सम्भव होते हैं। भाषा की पैटर्न में द्विविधता, विस्थापन, खुलापन, प्रसारण और दिशात्मक अभिग्रहण, क्षणिकता, विनिमेयता, पूर्ण प्रतिपुष्टि, विशिष्टीकरण, अर्थवत्ता, मनमानापन, पृथकता, उत्पादकता, परम्परागत हस्तान्तरण, वाक् छल, आत्मचेतना, सीखने की योग्यता, पुनावार्तिता, आदि गुण शामिल किए जाते हैं जो निश्चित पैटर्न में भाषा का निर्माण करते हैं।

चौथा लेख मस्तिष्क में भाषा का निरूपण भाषा की प्रकृति के बारे में चॉम्स्की की परिकल्पना के तहत कहे गए कुछ आधारीय तथ्यों को उजागर करता है। लेख में बताया गया है कि जैसे शरीर के अंगों का विकास होता है भाषा का विकास भी ठीक वैसे ही होता है। यह इंसान की अन्तर्जात क्षमता है। चॉम्स्की कहते हैं कि मानव के मस्तिष्क में भाषा संकाय होता

है जिसमें व्याकरण के सभी सिद्धान्त समाहित होते हैं। जिस तरह हमारे शरीर के अंग अलग-अलग होते हैं लेकिन साथ मिलकर काम करते हैं ठीक उसी तरह मस्तिष्क में भी अलग-अलग भाग होते हैं जो सभी साथ मिलकर काम करते हैं। अत: शिक्षक प्रत्यक्ष तौर पर छात्रों को भाषा सिखाने के लिए कुछ नहीं कर सकता। शिक्षक महज यही कर सकता है कि बच्चे को एक अनुकूल वातावरण में रखे ताकि भाषा अर्जन आरम्भ हो जाए और उसे इस अनुकूलित वातावरण से सहायता मिले जिससे वह स्वत: ही भाषा से सम्बन्धित व्याकरण विकसित करे जो शिक्षक उसे सिखाना चाहता है।

पाँचवाँ लेख भाषा हमारे अस्तित्व का मूल नोम चॉम्स्की के साक्षात्कार पर आधारित है। यह साक्षात्कार विज्ञान पत्रिका 'डिस्कवर' में 29 नवम्बर, 2011 को प्रकाशित हुआ था। वेलरी रॉस द्वारा लिए गए इस साक्षात्कार में चॉम्स्की बताते हैं कि मनुष्य के पास भाषा एक अनूठी क्षमता है। चॉम्स्की आगे कहते हैं कि हर भाषा अनूठी है तथा इन भाषाओं में समानताएँ भी हैं। भाषा हमारी कल्पनाशील बौद्धिक जीवन के बड़े हिस्से का बुनियादी तत्व है। इसी की सहायता से हम योजनाएँ बना पाते हैं, सृजनात्मक कला करते हुए जटिल समाज का निर्माण करने में सक्षम हो पाते हैं।

छठा लेख भाषा का विकास, भाषा के विकास क्रम और समय के साथ उनमें आए हुए बदलाव पर प्रकाश डालता है। इस लेख में बताया गया है कि भाषा के विकास एवं बदलाव का इंसान के जैविक, सांस्कृतिक और सामाजिक बदलाव के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त यह लेख यह भी बताता है कि भाषाओं में सांस्कृतिक रीति-रिवाजों, इतिहास तथा सामाजिक स्तरीकरण की झलक दिखती है। यह भाषा को समाजीकरण के दायरे में रखते हुए समाज को भाषा विकास का आधार मानते हुए कहता है कि भाषा का विकास मनुष्य एवं प्रकृति के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों और सामाजिक विकास के कारण हुआ है। लेख में इस बात पर जोर दिया है कि जब मानव को श्रम के समय सहयोग के लिए एक-दूसरे से सम्प्रेषण की आवश्यकता महसूस हुई साथ ही दूसरे मनुष्यों तथा अपने बच्चों को औजार बनाना सिखाना जरूरी समझते हुए इनका उपयोग करना सिखाया तो इसी उद्देश्य ने उसे भाषा विकसित करने के लिए बाध्य किया।

सातवाँ लेख भाषा की प्रकृति और संरचना पर है। इस लेख में भाषा की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में दो प्रमुख मत प्रचलित हैं। पहला मत एंड्रयू कारस्टेयर्स-मैकार्थी का प्रकार्यवादी मत है, जिसके अनुसार भाषा मानवीय आवश्यकताओं के चलते चरण दर चरण और बहुत ही धीमी प्रक्रिया से विकसित हुई है। भाषा का जन्म और विकास मानव मस्तिष्क के आकार में वृद्धि के साथ साथ हुआ है। एंड्रयू का मानना है कि भाषा एक धीमी विकास क्रमिक प्रक्रिया का प्रतिफल है। यह प्रतिफल मनुष्य के दो पैरों पर चलना शुरू करने के बाद हुए स्वरयन्त्र के विकास से हुआ। इससे हमारे पूर्वजों द्वारा निकाली जा सकने वाली ध्वनियों में वृद्धि हुई जिससे वाक्य-विन्यास का विकास हुआ। भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में दूसरा मत नोम चॉम्स्की का है। चॉम्स्की का मानना है कि इंसान

के साथ ही भाषा भी एकदम से विकसित हो गई इसका सम्बन्ध होमो सेपियंस के उत्थान से जुड़ा है अर्थात् दोनों एक ही साथ उत्पत्तित एवं विकसित हुए हैं।

संकलन का दूसरा खंड 'भाषा तथा समझ के विकास' पर केन्द्रित है। इस खंड के सात (लेख संख्या 8-14) लेखों में भाषा, विचार और अवधारणा के विकास और इनके आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए भाषा, मानवीय तर्क और सोच के अन्तर्सम्बन्धों के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। इस खंड में शामिल किए गए कुल सात लेख अवधारणाओं के बनने तथा उनके विकसित होने में भाषा के योगदान का भी ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त इस भाग में प्राथमिक स्तर की शिक्षा में मातृभाषा की महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है।

'भाषा तथा समझ के विकास' खंड का पहला लेख भाषा की महत्ता है। इस लेख में मनुष्य, उसके सीखने, उसकी अवधारणाओं के निर्माण और भाषा के बीच के अन्तर्सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि भाषा न केवल सम्प्रेषण और शिक्षा का एक माध्यम अथवा साधन है, बल्कि यह मनुष्य के विचार करने एवं निर्णय लेने का भी आधार है। भाषा ही मनुष्यों के अनुभवों को अर्थ देती है। वास्तव में भाषा 'जोड़ने की प्रक्रिया' है जो दुनिया की तमाम चीजों को अर्थ प्रदान करती है। भाषा महज एक 'उपकरण' नहीं है बल्कि यह तो मनुष्य के मस्तिष्क और आत्मचेतना का समुच्चय है जो समझ के विकास के साथ-साथ विकसित होता है और जब समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है तो इसका विकास भी अवरुद्ध हो जाता है।

खंड के दूसरे लेख मातृभाषा के मायने में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा का स्वरूप कैसा होना चाहिए? मातृभाषा में सामग्री निर्माण कौन और कैसे करे? अगर एक कक्षा में अलग-अलग पृष्ठभूमि और मातृभाषाओं के बच्चे हों तो उस कक्षा की मातृभाषा कैसी हो? जैसे अति संवेदनशील एवं महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर खोजने की कोशिश की गई है। लेख में बताया गया है कि यदि स्कूल की भाषा में उपयोग किए जा रहे शब्द हमारे मस्तिष्क में बसी भाषा से समरूपता प्रदर्शित करते हैं तो हमें वह सम्प्रत्यय समझने में आसानी होती है। अत: मातृभाषा में अध्ययन सामग्री का निर्माण करते समय निर्माणकर्ता को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यह सामग्री विद्यार्थियों के दैनिक जीवन के अनुभवों को आधार बनाकर विकसित की गई हो। यदि कक्षा में अलग-अलग मातृभाषाओं के बच्चे हों तो शिक्षक द्वारा प्रत्येक भाषा और प्रत्येक बच्चे के अनुभवों को कक्षा में स्थान दिया जाए, उनकी बातों को सुना जाए और अभिव्यक्ति के अधिकाधिक अवसर दिए जाएँ। कक्षा में बच्चों को ऐसी चुनौतियाँ मिलें जिनमें उन्हें स्वाभाविक रूप से सोचकर अपने विचारों का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण करने का अवसर प्राप्त हो सके। लेख के अन्त में कहा गया है कि जब तक अध्ययन सामग्री भारतीय भाषाओं के ग्राह्य रूप में उपलब्ध नहीं होगी तब तक यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि शिक्षा और उससे जुड़े पहलुओं पर विमर्श भारतीय भाषाओं में हो।

खंड का तीसरा लेख भाषा का विचार है। इस लेख में भाषा एवं विचारों के बनने तथा उनको व्यवस्थित करने सम्बन्धी मुद्दे पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि भाषा विचारों के निर्माण में और उन को व्यवस्थित करने में मदद करती है। लेख में विलियम वॉन हमबोल्ट की 'विश्व-दृष्टिकोण' नामक परिकल्पना को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि भाषा तथा विचार को अलग नहीं किया जा सकता। भाषा पूरी तरह विचारों को निर्धारित करती है। भाषाओं में अर्थ सम्बन्धी गहरे अन्तर होते हैं और भाषा की संरचना वक्ता के विश्व-दृष्टिकोण और संज्ञान को प्रभावित करती है। हमबोल्ट इस विचार को 'भाषाई सापेक्षता' और 'सांस्कृतिक सापेक्षता' का नाम देते हैं। हमबोल्ट के इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक इंसान का भाषा के साथ गहरा रिश्ता होता है। उसके संज्ञान तथा दुनिया में घटित हो रही घटनाओं को देख पाने का दृष्टिकोण भी उसकी भाषा पर निर्भर करता है। भाषा प्रदीपन, विचार एवं उसको ग्रहण तथा विश्लेषण से भी गहरा सम्बन्ध होता है। व्यक्ति, भाषा एवं उसकी संस्कृति एक दूसरे की रचना करते हैं और एक दूसरे को निखारते हैं। लेख में आगे कहा गया है कि भाषा और समाज एक दूसरे में इस तरह गुँथे हुए हैं कि एक को दूसरे के बिना समझ पाना असम्भव है। ऐसा कोई मानवीय समाज नहीं है जो भाषा पर निर्भर न करता हो, उससे प्रभावित न होता हो और स्वयं उसे प्रभावित न करता हो।

इस खंड का चौथा लेख 'भाषा और विचार का सम्बन्ध' है जो भाषा और विचार के रिश्ते को समझने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता है। लेख में बताया गया है कि संस्कृति, सोच, आदत और भाषा सभी साथ-साथ विकसित होते हैं। भाषा की सहायता से ही हम अपने उन अनुभवों की भी एक मानसिक छवि गढ़ सकते हैं और उसकी अनुभूति कर सकते हैं जिनको शब्दों में वर्णित करना मुश्किल होता है। हमारी भाषा हमें बाध्य नहीं करती है कि हम वही देखें जिनके लिए हमारे पास शब्द हैं लेकिन हम चीजों का समूह में किस तरह वर्गीकरण करते हैं उसे कहाँ रखते हैं इसे भाषा प्रभावित कर सकती है।

पाँचवाँ लेख भाषा व्यक्ति के लिए क्यों आवश्यक है में बताया गया है कि भाषा संवाद और सम्प्रेषण का माध्यम है, चाहे वह बोलचाल के रूप में हो, चाहे लेखन के रूप में हो या फिर संकेतों के रूप में हो। यह प्रतीकों के निर्धारित ढाँचे पर आधारित है। भाषा की आवश्यकता हमें दूसरों से बात करने, उन्हें सुनने, पढ़ने तथा लिखने के लिए होती है। भाषा हमें भूत की घटनाओं का विस्तृत वर्णन करने तथा भविष्य की योजनाएँ बनाने के लिए तैयार करती है। भाषा ही पीढ़ी दर पीढ़ी सूचना एवं समझ को हस्तान्तरित करती है और एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर बनाती है। हम जो भाषा उपयोग करते हैं वह न केवल हमारी संस्कृति को प्रभावित करती है बल्कि हम दुनिया के बारे में कैसे सोचते हैं, इसे भी प्रभावित करती है। लेख में चॉम्स्की के भाषा उत्पत्ति के विचार को उद्धृत करते हुए बताया गया कि भाषा मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमता है। प्रकृति ने प्रत्येक बच्चे के मस्तिष्क में सार्वभौमिक व्याकरण का स्वरूप पहले से ही डाल रखा है जो उन्हें किसी भी भाषा के बुनियादी नियमों को समझने और

जो सुन रहे हैं उन पर लागू करने की क्षमता प्रदान करता है। इस प्रकार वे भाषा की संरचना के तर्कों को जाने बिना ही भाषा सीख जाते हैं।

छठा लेख भाषा, स्वचेतना, तर्क और इंसान है। इस लेख में भाषा, स्वचेतना और तर्क के आपसी सम्बन्धों पर बात की गई है। लेख में बताया गया है कि मनुष्य में स्वचेतना होने का कारण भाषा ही है। क्योंकि भाषा मनुष्यों को 'यहाँ और अब' तथा 'कार्य-कारण' के बन्धन से मुक्त करती है। भाषा ही प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था प्रदान करती है जो मनुष्यों को अनुभवों एवं विचारों की अभिव्यक्ति, संरक्षण, उन्हें स्मृति में रखने, इच्छा एवं आवश्यकतानुसार उनमें बदलाव करने के साथ-साथ विचार श्रृंखला को आगे बढ़ाने की शक्ति देती है। लेखक आगे भाषा, तर्क और गणित के आपसी सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि भाषा, तर्क और गणित का सम्बन्ध और भाषा की स्वचेतना में भी भूमिका है। स्वचेतना हमें इस बात के लिए तैयार करती है कि हम सचेत होते हैं और अपनी सचेतता के बारे में भी सचेत होते हैं - यही स्वत्व और व्यक्ति होने का आधार है। लेखक का मानना है कि भाषा के आने से ही तर्क का उद्‌भव हुआ होगा क्योंकि भाषा की अनुपस्थिति में विचार श्रृंखला को आगे बढ़ाना कठिन है। इसी तरह यदि गणित और भाषा के आपसी रिश्ते के विषय में बात करें तो गणित की जो विशुद्ध श्रेणियाँ हम बना पाते हैं, वे हम इसलिए बना पाते हैं क्योंकि भाषा हमें हमारे मूर्त अनुभवों तथा इन्द्रियजनित अनुभवों को एक विचार श्रृंखला में पिरोने में मदद करती है।

सातवाँ लेख भाषा संज्ञान और समझ : आरम्भिक पड़ताल है। यह लेख भाषा, गणित तथा संगीत विषय पर 2009 में विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में आयोजित संगोष्ठी में हुई चर्चाओं पर आधारित है। इसमें यह बताया गया है कि मनुष्य की भाषा सीखने की क्षमता एक विशिष्ट और अन्य क्षमताओं से अलग एक विलक्षण क्षमता है और इंसान में भाषा की उपस्थिति का सबसे प्रमुख कारण प्रजातिगत शारीरिक संरचना है। भाषा सीखने की शुरूआत मनुष्य की मिलजुलकर काम करने की आवश्यकता और उससे जनित इंसानी प्रकृति के विकास के कारण हुई है। इंसान की सोचने, मनन करने, जटिल विचारों को उत्पन्न कर पाने, उनका विश्लेषण कर पाने के वे सभी गुण जो संज्ञान के अन्तर्गत आते हैं, इन सब में भाषा की भूमिका होती है लेकिन इसके लिए मनुष्य में सकर्मकत्व एवं उत्कंठा का होना भी महत्वपूर्ण है। इसी सकर्मकत्व एवं उत्कंठा ने मनुष्य को भाषा सीखने के लिए अभिप्रेरित किया। भाषा, गणित, संगीत एक दूसरे के साथ गुम्फित हैं क्योंकि चाहे हम भाषा का शिक्षण कर रहे हों, चाहे गणित शिक्षण या संगीत शिक्षण, प्रत्येक में अमूर्त पैटर्नों के साथ काम करने की योग्यता आवश्यक है और यही योग्यता प्रत्येक शिक्षण के केन्द्र में निहित होती है। अत: हम गणित शिक्षण, कविता अध्ययन या फिर किसी अन्य अमूर्त धारणाओं पर बात करें तो हम सुनिश्चित करें कि बच्चे इन अवधारणाओं को कक्षा से बाहर वास्तविक जीवन से जोड़ते हुए इनकी समझ को पुख्ता कर सकें।

संकलन का तीसरा खंड 'भाषा, व्याकरण तथा वैज्ञानिक विश्लेषण' है। इस खंड में सम्मिलित छह (लेख संख्या 15-20) लेखों के माध्यम से भाषा के विश्लेषण के आरम्भिक तरीकों को बताया गया है और उनके आधार पर भाषाई गुण तथा नियम पहचानने के तरीके भी दिखाए गए हैं। यह खंड भाषाई और व्यक्तिगत दोनों स्तर पर भाषाओं के उपयोग में व्याकरण के नियमों के पालन की क्षमता के अन्तर्निहित सम्बन्ध की चर्चा करता है। इससे यह स्पष्ट तौर पर सूचित होता है कि हर भाषा का अपना एक व्याकरण होता है, उसके कुछ नियम होते हैं और हर बच्चे में इन्हें सीखने एवं उपयोग करने की क्षमता होती है। इस क्षमता का विकास बच्चे के परिवेश की आवश्यकता और सीखने अथवा विद्यालय में मिले प्रोत्साहन के आधार पर होता है।

तीसरे खंड 'भाषा, व्याकरण तथा वैज्ञानिक विश्लेषण' का पहला लेख भाषा क्या है? में दो प्रमुख बिदुओं पर चर्चा की गई है। ये दोनों बिन्दु छोटे संकेतों को जोड़कर अर्थपूर्ण संकेत बनाने से सम्बन्धित हैं। पहला बिन्दु बताता है कि संकेतों को तोड़ने और अलग-अलग ढँग से जोड़ने की जो क्षमता मानवीय भाषा में दिखती है वह अन्य जीवों की भाषा में बिल्कुल नहीं दिखती। मानवीय भाषा, मानवीय संज्ञान के साथ-साथ इसकी आकांक्षा से भी जुड़ी है। मानवीय भाषा में असीमित उत्पादकता और सृजनात्मकता है। दूसरा बिन्दु यह बताता है कि मनुष्य की भाषाई उत्पादकता पशु-पक्षियों से कहीं अधिक है पर यह सटीक नियमों से संचालित होती है ताकि यह एक-दूसरे की समझ में आ जाए। यदि भाषा बरतते समय इन नियमों का पालन नहीं किया जाएगा तो हम जो कह रहे हैं या लिख रहे हैं उसका अर्थ या तो कोई और समझ भी नहीं पाएगा और यदि समझेगा भी तो बहुत प्रयास के बाद ही समझ पायेगा। यदि भाषा में ऐसा कोई नियम नहीं हो तो सम्भवतः उसकी सृजनात्मकता एवं विविधता तो बढ़ जाएगी लेकिन एक ही बात को कहने के बहुत से तरीके हो जाएँगे और एक ही बातों से बहुत से अर्थ निकाले जा सकेंगे इसीलिए भाषा में नियमों का पालन अनिवार्य हो जाता है।

दूसरा लेख भाषा-विज्ञान और बौद्धिक विकास है। यह लेख व्याकरण और व्याकरणिक नियमों को एक तार्किक अन्वेषण की दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है और यह स्पष्ट करता है कि व्याकरण जानना तथा भाषा के व्याकरणिक नियमों को याद करना या रटना भाषा समझने या जानने में मदद नहीं करता। वरन् रोचक एवं खोजपूर्ण अभ्यासों से बच्चे इन नियमों को खोज सकते हैं और समझ सकते हैं। इस लेख में इस बात पर भी बल दिया गया है कि भाषा के गुणों को समझने में वैज्ञानिक खोज जैसे तरीकों का उपयोग किया जाना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार विज्ञान की प्रक्रिया निश्चित पैटर्न पर चलती है और इस पैटर्न के निष्कर्ष में हम एक नियम बनाते हैं तथा बने नियम का प्रयोग हम अपने परिवेश में करते हैं ठीक यही प्रक्रिया भाषा के माध्यम से बहुत ही सरल तरीके से कक्षा में सिखाई जा सकती है।

तीसरा लेख भाषा और विज्ञान है। इस लेख में बताया गया है कि विभिन्न विषयों को सीखने के बारे में जिस तरीके का दृष्टिकोण, जिसमें विद्यार्थी अलग-अलग विषयों की विभिन्न अवधारणाओं का सीखने की अलग-अलग प्रक्रियाओं के प्रति जुड़ाव, सम्बन्ध एवं सम्बन्ध की प्रकृति को देख पाते हैं, समझ पाते हैं वह न केवल विषयों के सीखने को आसान बनाता है बल्कि विद्यार्थियों की सोच का दायरा भी बढ़ाता है। इस लेख में कक्षा में भाषा और विज्ञान की प्रक्रिया दोनों एक साथ कैसे सीखी जाएँ, विषय पर चर्चा की गई है। इस लेख में अंग्रेजी और हिन्दी भाषा में बहुवचन बनाने में तार्किक नियमों को आधार बनाते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि विज्ञान के तौर-तरीकों को समझने के लिए भाषा का सफल उपयोग किया जा सकता है। भाषा की संरचना वैज्ञानिक होती है और हर बच्चे के पास भाषा का भंडार होता है अत: वैज्ञानिक विधि को समझने के लिए भाषा एक बहुत ही सरल और सहज रूप से उपलब्ध माध्यम है और इस प्रकार एक परिस्थिति में सीखे गए ज्ञान की सहायता से दूसरी परिस्थिति में ज्ञान के सृजन को आसान बनाया जा सकता है।

चौथा लेख बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता (भाग-1) है। इस लेख में इस बात पर बल दिया गया है कि बच्चे अपनी भाषा को अच्छी तरह से सीखने और उपयोग करने की क्षमता रखते हैं। ध्वनि संरचना के विभिन्न नियमों को तीन-चार साल का बच्चा भी निश्चित रूप से जानता है और यह समझ जाता है कि अधिकतर शब्दों की संरचना व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर से होती है और यह रचना ध्वन्यात्मक मूल्य स्थान के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। इस लिहाज से बच्चों को भाषा सीखने की प्रक्रिया में दो चीजें आवश्यक हो जाती हैं, पहली - सीखने की सहजात क्षमता और ऐसा वातावरण जिसमें भाषा तो खूब हो लेकिन स्पष्ट तौर पर नियम और व्याकरण न हों। कक्षा की अधिगम पारिस्थितिकी ऐसी हो कि बच्चे को कुछ बोझ महसूस न हो, बोरियत न लगे और मजबूरी न हो। बच्चे का ध्यान व्याकरण के नियमों और भाषा की शुद्धता की अपेक्षा मौके की बात पर हो। अत: शिक्षकों को अपनी भाषा की कक्षाओं में इन दो बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इस खंड का पाँचवाँ लेख भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण : भाषा शिक्षण हेतु निहितार्थ है। इस लेख में इस बात पर जोर दिया गया है कि भाषा सीखना एक बहुत ही चिन्तनशील प्रक्रिया है और इसमें औपचारिक निर्देश शामिल होते हैं। शिक्षकों को भाषा के नियम कैसे बनते हैं, बहुवचन कैसे बनते हैं, निषेध वाक्यों में क्या समझना है आदि जिनके बारे में वे बच्चों से बात करना चाहते हैं - इसकी ऐसी समझ बनी होनी चाहिए कि वे इन नियमों का बच्चों के समक्ष सरल और सहज तरीके से प्रस्तुतीकरण करते हुए व्याख्या कर सकें। इस लेख में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि शिक्षक स्वयं भाषा के अवलोकन का विश्लेषण करते हुए विभिन्न भाषाई नियमों को समझ सकते हैं कि भाषा पूरी तरह नियमबद्ध होती है इसमें अपवाद नहीं होते हैं।

तीसरे खंड का छठा लेख बहुभाषी कक्षा में व्याकरण के नियमों को ढूँढना है। इस लेख में भोपाल की एक गैर सरकारी संस्था की बहुभाषी कक्षा में शिक्षकों के अनुभवों को

साझा करते हुए बहुभाषी कक्षा में व्याकरण के नियमों के अन्वेषण को समझाया गया है। इस कक्षा में गोण्डी, पारधी, अगरिया आदि आदिवासी समुदायों के साथ-साथ मंग/मतंग और अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे पढ़ते थे। ये सभी विद्यार्थी विभिन्न भाषाएँ बोलते थे। विद्यार्थियों से बात करने के उपरान्त लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कक्षा में बच्चों की प्रथम भाषाओं को इस्तेमाल करते हुए व्याकरण के नियमों की खोज से जुड़ी प्रक्रियाओं को सीखने के कई मौके बनाए जा सकते हैं। अपने अनुभवों में शिक्षकों ने पाया कि कक्षा में बच्चे वास्तविक दुनिया की वास्तविक बातें बोलते हैं अत: शिक्षकों को बहुभाषी कक्षा में भाषाओं को वरीयता नहीं दी जानी चाहिए अर्थात् किसी एक भाषा के ऊपर दूसरी भाषा को प्राथमिकता नहीं दी जानी चाहिए। इस प्रकार की कक्षा का वातावरण बच्चों को उनकी पहचान और वे क्या-क्या जानते हैं, इसको साझा करने की उत्सुकता को बढ़ावा देती है। साथ ही इस प्रकार के उपायों से बहुभाषी कक्षा में लोकतान्त्रिक संस्कृति और बराबरी का माहौल भी निर्मित होता है।

संकलन का चौथा खंड 'भाषा और समाज' है। इस खंड में पाँच (लेख संख्या 21-25) लेखों के माध्यम से भाषा तथा समाज के अन्तर्सम्बन्धों को दर्शाते हुए भाषा की शक्ति और उसके आधार की विवेचना की गई है। इस खंड में बोली वो जिसकी लिपि नहीं है, साहित्य नहीं है, इतिहास और संस्कृति नहीं, या अमुक भाषा दूसरी भाषा से श्रेष्ठ अथवा अमुक भाषा सभी भाषाओं की जननी अथवा बोलियाँ भाषा से अपभ्रंश होकर बनी हैं आदि ज्वलन्त मुद्दों को उठाया गया है। यह खंड इन सब मुद्दों पर तर्क और उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इस बात की पुष्टि करता है कि भाषाओं की ताकत का प्रश्न भाषाई नहीं वरन् राजनीति और सत्ता का प्रश्न है।

इस खंड का पहला लेख कौन भाषा कौन बोली है। यह लेख भाषा और बोली के बीच माने गए अन्तर की पड़ताल करता है और यह मानता है कि यह अन्तर वास्तविक और उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त यह लेख भाषाओं के बारे में मान्यताओं और इन मान्यताओं के आधार की जाँच भी करता है। इस लेख में कहा गया है कि भाषाई दृष्टि से भाषा और बोली में कोई अन्तर नहीं है। दोनों का व्याकरण होता है। दोनों नियमबद्ध होते हैं। किसको भाषा कहा जाए और किसको बोली यह एक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्न है। सत्ताधारी तथा पैसे वाले लोग अक्सर जो बोली बोलते हैं वह भाषा कहलाने लगती है। उसी के व्याकरण के शब्दकोश लिखे जाते हैं। उसी में साहित्य लिखा जाता है। वही बोली स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बनकर मानकीकृत भाषा बन जाती है। उसी से मिलते-जुलते बातचीत करने के अन्य तरीके उस 'भाषा की बोलियाँ' कहलाने लगते हैं। शायद इसीलिए कहा गया है कि 'भाषा केवल एक सशस्त्र बोली है'। लेख में इस बात को भी बताया गया है कि अक्सर लोग ऐसे बातें करते हैं जैसे भाषा और लिपि में कोई जन्मजात सम्बन्ध हो जबकि वास्तव में संसार की सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जा सकती हैं और एक ही भाषा को लिखने के लिए हम संसार की सभी लिपियों का प्रयोग भी कर सकते हैं। इन सभी अवधारणाओं को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट

होता है कि लिपि, व्याकरण, साहित्य के विस्तृत क्षेत्र का व्यापक प्रयोग आदि के आधार पर भाषा और बोली में अन्तर करना उचित नहीं है।

दूसरा लेख बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता (भाग-2) है। इस लेख में देवनागरी लिपि को शिक्षा का माध्यम बनाकर विद्यालयों द्वारा दिए जाने वाले शैक्षणिक निर्देशों को उपयोग में लाते समय अर्थात् पढ़ने-लिखने तथा सीखते समय बच्चों के समक्ष कौन-कौन सी चुनौतियाँ आती हैं और क्यों आती हैं? इसके बारे में विशद चर्चा की गई है। हिन्दी की वर्तनी व्यवस्था और इस व्यवस्था के नियमों की जटिलता के बारे में बताते हुए यह लेख कहता है कि बच्चों को इन नियमों को सीखने में समय लगता है साथ ही सभी बच्चे एक तरीके से ही लिखना सीखते हैं यह भी सम्भव नहीं है अत: वर्तनी व्यवस्था की जटिलता को समझते हुए बच्चों के साथ काम करने के लिए अध्यापकों को एक विस्तृत और प्रभावी योजना बनानी चाहिए।

तीसरा लेख भारतीय भाषाओं के बारे में एक नोट है। जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं का उदाहरण लेते हुए यह समझाने का प्रयास किया गया है कि अलग-अलग भारतीय भाषाओं में क्या-क्या समानता है और क्या-क्या विभिन्नताएँ हैं। साथ ही लेख में इन समानताओं और विभिन्नताओं के होने के सम्भावित कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। लेख में इस बात पर जोर दिया गया है कि बाहरी तौर पर हमें भाषाएँ भिन्न दिखाई देती हैं, लेकिन आन्तरिक तौर पर उनमें कई समानताएँ होती हैं। लेख में हिन्दी, तेलुगु, उड़िया तथा मिज़ो भाषाओं से अलग-अलग अवयवों के उदाहरण लेकर भाषा की आन्तरिक समानताओं को प्रस्तुत किया गया है। इस लेख में चार भारतीय भाषा परिवारों, यथा - आर्य भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार, तिब्बतो-बर्मन भाषा परिवार तथा ऑस्ट्रो-एशियाटिक या मुंडा भाषा परिवार का भी जिक्र किया गया है। इसके अतिरिक्त इस लेख द्वारा भाषाएँ अलग-अलग होती है अत: बच्चों को भाषा सीखने में कठिनाई होती है, एक भाषा का दूसरी भाषा के सीखने को बाधित करती है, बहुभाषी कक्षा सम्भव नहीं है जैसी अनेक मान्यताओं को निराधार साबित करने की कोशिश भी की गई है। लेख के अन्त में कहा गया है कि भारतीय भाषाएँ भले ही अलग-अलग परिवार की हों और भले ही बाह्य रूप से एक-दूसरे से अलग दिखाई देती हों लेकिन फिर भी इनमें कई बातों में सदृशता है और इस सदृशता की दो प्रमुख वजह हैं। पहली वजह यह है कि भारतीय भाषाएँ क्रिया-अन्त भाषाएँ हैं तथा दूसरी वजह यह है कि विभिन्न भाषा परिवारों की भाषाएँ एक ही देश में ढाई हजार साल से अधिक समय तक एक साथ रही हैं इस कारण इनमें व्याकरणिक लक्षणों का आदान-प्रदान हुआ है। भारत में बहुभाषिकता न कभी बाधक रही है और न ही रहेगी।

चौथा लेख भारतीय भाषाएँ : विकासशील समाज में पहचान का माध्यम है। यह लेख भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में भाषा और पहचान पर कुछ बातें करते हुए स्पष्ट करता है कि छोटे से छोटा समुदाय भी अपनी भाषा को सजीव रखने का प्रयास करता है। भाषा के प्रति लगाव का स्वरूप जकड़न एवं मुक्त और उदार दोनों रूपों में हो सकता है। यह लेख भाषा की

पहचान से रिश्ते एवं उससे उत्पन्न संघर्षों तथा अलगावों को भी उभारता है। विभिन्न समुदाय भाषा और बोलियों का प्रयोग अपने आप को एक सूत्र में पिरोने और साथ ही दूसरे समुदाय से अपने को अलग रखने एवं अपनी अलग पहचान बनाए रखने के लिए भी करते हैं। भाषा के आधार पर झगड़े भी देखने को मिलते हैं। भारत में भाषाई झगड़े होने के बाद भी भारतीयों में भाषा के प्रश्न पर असीम सहिष्णुता है जिसके कारण सभी भाषाएँ जीवन्त हैं और द्विभाषियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

चौथे खंड तथा इस संकलन का अंतिम लेख बहुभाषिकता : भाषा नीति एवं संविधान सभा के बहस-मुबाहिसे है। यह लेख भारत में भाषा सम्बन्धी मुद्दों पर संविधान सभा में हुई बहसों तथा भारतीय संविधान में भाषा सम्बन्धी प्रावधानों पर एक विस्तृत नजर डालते हुए भारत की भाषा नीति तथा शिक्षण के लिए उसके निहितार्थ पर चर्चा करता है। लेख संविधान सभा में हुई बहस-मुबाहिसे के हवाले से गाँधी, नेहरू तथा अयंगर फार्मूले पर चर्चा करता है और संविधान में भाषा सम्बन्धी प्रावधानों का उल्लेख करते हुए अनुच्छेद 15(1), 16(1, 2), 29 (1, 2), 30 (1) तथा 350 के अन्तर्गत वर्णित सम्प्रत्ययों को उजागर करता है। लेख भाषा के घेरे में घिरी बहुभाषिकता की नीति पर भारत के कई आयोगों तथा समितियों के हस्तक्षेप को भी सम्मिलित करते हुए इस बात को उजागर करता है कि वर्ष 1956 में शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुशंसित और सन् 1961 में मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन में अनुमोदित 'त्रिभाषा सूत्र' इस मान्यता के साथ एक समझौते की तरह उभर कर आया है कि 'भाषा' है। यह सूत्र मूलत: हिन्दी-भाषी और गैर-हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भाषा के अध्ययन को लेकर बराबरी स्थापित करने के साथ-साथ अंग्रेजी के माध्यम से एक आधुनिक नजरिया बनाने का उद्देश्य लिए हुए था। लेख का अन्त बहुभाषिकता और शिक्षा पर हुए काम पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 तथा भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर तैयार आधार पत्रों का जिक्र करते हुए स्पष्ट करता है कि भाषा-नीति के पारिभाषिक मानकों में परिवर्तन आया है, जो संविधान सभा की बहस-मुबाहिसों के सदस्यों की बुद्धिमत्ता को तो स्वीकार करता है लेकिन यह भी समझता है कि संविधान सभा की बहसों पर आधारित सिफारिशों और नीतियों से बाहर निकलकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

चार खण्डों में विभक्त यह पुस्तक भाषा की प्रकृति, भाषा तथा समझ का विकास, भाषा, व्याकरण और वैज्ञानिक विश्लेषण एवं भाषा और समाज के अन्तर्सम्बन्धों को परत-दर-परत खोलते हुए अपने पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। भाषा हमारी पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों, सीखने-सिखाने की विधियों/प्रविधियों का आधार है ऐसे में यह पुस्तक भाषा और उसे सीखने के बुनियादी ताने-बाने की समझ विकसित करने, भाषा सीखने के दौरान बच्चों के समक्ष आने वाली चुनौतियों को जानने एवं उनको दूर करने में सहायता करेगी।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 218-223)
UGC-CARE (Group-I)

पुस्तक समीक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा : व्यक्तित्व विकास के विविध चरण

आशुतोष दुबे (सम्पा.)
लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2021, प. 127, रु. 395
ISBN 978-93-92186-27-1

प्रिया जौहरी*

प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा रूपी भवन की नींव है, जिस पर चिरकाल तक शिक्षा रूपी भवन सुदृढ़ रहता है। प्राथमिक स्तर के शिक्षक छात्रों के शैक्षिक मार्ग को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे उनके सीखने और ज्ञान के हस्तान्तरण की नींव के रूप में कार्य करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक प्रारम्भिक शिक्षा के नवीन आयामों और शिक्षकों की भूमिका को उजागर करती हैं। पुस्तक के विभिन्न लेखों में प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़े सभी मुद्दों की विस्तृत परिपेक्ष्य में चर्चा की गई है। यह पुस्तक प्राथमिक शिक्षकों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। इस पुस्तक में कुल 12 लेखों को संकलित किया गया है।

प्रथम लेख 'बच्चे का व्यक्तित्व निर्माण घरेलू परिवेश तथा प्रारम्भिक विद्यालय' बताता है कि बालकों के व्यक्तित्व का निर्माण करने में आनुवांशिक गुणों, पर्यावरणीय प्रभाव के साथ-साथ सामाजिक अनुवांशिकता की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। जहाँ जैव

*पूर्व ग्रस्ट फैकल्टी, सीएमपी डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उ.प्र.)
E-mail: priyajohryau@gmail.com

अनुवांशिकता माता-पिता से प्राप्त होने वाले गुणसूत्रों मे निहित होती है वहीं सामाजिक अनुवांशिकता में भाषा, धर्म, प्रथा परम्परा और सामाजिक सामंजस्य की रीतियाँ आदि समाहित हैं। इस लेख की मान्यता है कि आनुवांशिकता, पर्यावरण और सामाजिक अनुवांशिकता बालक के व्यक्तित्व का नियमन और सर्जन करते हैं। अभिभावक, घरेलू वातावरण, प्रातिवेशिक वातावरण, समुदाय तथा विद्यालय, सभी मिलकर बालक के व्यक्तित्व को न केवल पोषण प्रदान करते हैं प्रत्युत उसके स्वरूप को भी निर्धारित करते हैं। फिर भी, इन सब में विद्यालय की भूमिका अन्यतम होती है। उसके व्यक्तित्व के परिमार्जन तथा पोषण की दृष्टि से विद्यालय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

दूसरा लेख 'जीवन कौशल के विकास में शिक्षक की भूमिका' में लेखक ने बालकों में शान्तप्रिय जीवन जीने की कला, धैर्य, संवेदनशीलता, सह-अस्तिव की प्रवृत्ति, और निर्णय लेने की क्षमता जैसे जीवन कौशलों के विकास में वातावरण और शिक्षक की भूमिका को दर्शाया हैं। इस पुस्तक की अन्तर्निहित मान्यता है जीवन कौशलों के विकास में वातावरण की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उच्च मानवीय गुण और मूल्यों से समन्वित व्यक्तित्व के निर्माण के लिए बच्चों को उचित परिवेश प्रदान किया जाना अति आवश्यक है। यदि छात्र का व्यक्तित्व सुदृढ़ होता हो तो वो वह जीवन की समस्याओं का सामना धैर्यता के साथ कर पाता है। इसलिए यह जरूरी है कि बचपन से ही उनमें धैर्य, सहनशीलता तथा तार्किक चिन्तन जैसे गुणों का आधान किया जाए। शिक्षक इस कार्य को करने में अपनी महती भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षक को इस कार्य को छात्रों की आयु, क्षमता, सहज प्रवृत्तियों तथा परिवेश को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।

तीसरा लेख 'प्रारम्भिक शिक्षा तथा व्यक्तित्व विकास के विविध चरण' के अनुसार शिक्षक का दायित्व बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है। छात्रों के व्यक्तित्व विकास को सही रूप देने के लिए व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं और मनोवैज्ञानिक विकास के क्रम की सही जानकारी शिक्षक के लिए आवश्यक है। प्रत्येक आयु की कतिपय शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विशेषताएँ होती हैं जिसका ज्ञान शिक्षक को होना चाहिए। व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित विविध वयजन्य विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जीवन में आयु के अनुसार मानसिक तथा शारीरिक विशेषताओं का परिलक्षित होना स्वाभाविक है। हर अवस्था की अपनी अनोखी विशेषताएँ होती हैं जिसे अभिभावक, शिक्षक और छात्र के सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को सहजता के साथ स्वीकार करना चाहिए। माता-पिता और शिक्षकों को विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप ही छात्रों के साथ व्यवहार करना चाहिए।

चौथा लेख 'प्रारम्भिक विद्यालयीय शिक्षण तथा उसकी विषयवस्तु' में लेखक की मान्यता है कि प्रारम्भिक स्तर पर विषयवस्तु ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति करते हुए उनकी विश्लेषणात्मक तथा रचनात्मक क्षमता का विकास करे। लेखक की मान्यता के अनुसार विषयवस्तु का निर्धारण करते समय मनोविज्ञान

सिद्धान्तों, क्षेत्रीय विषयवस्तु, प्रचलित परम्परा तथा सामाजिक मूल्यों को महत्व दिया जाना चाहिए। शिक्षकों को तार्किक ढंग से विषयवस्तु की पाठ्यसामग्री को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। इस स्तर के बच्चे परिवेशीय ज्ञान, चित्र और कहानियों से सबसे अधिक सीखते हैं। पाठ्यसामग्री में गुड्डे-गुड़िया, चित्र, परिवेशीय पौधे, पशुओं-पक्षियों, पोस्टर और कठपुतलियों आदि का प्रयोग किया जाना उचित होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुस्तक यह सुझाव देती हुई नजर आती है कि पूर्व प्राथमिक स्तर पर खिलौने तथा खेल के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। लेखक का सुझाव है कि बच्चों से ऐसी गतिविधियाँ करवानी चाहिए जिससे उन्हें अधिक से अधिक बोलने का अवसर प्राप्त हो सके।

पाचवाँ लेख 'प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में मूल्यांकन तथा परीक्षा का औचित्य' के अनुसार शिक्षक, शिष्य और शिक्षण विषयवस्तु की दृष्टि से मूल्यांकन अति महत्वपूर्ण है। लेखक का मानना है कि तटस्थता तथा शुद्धता के साथ किए गए मूल्यांकन का परिणाम लाभकारी होता है। इस लेख में मूल्यांकन के प्रचलित सन्दर्भ में कई तर्क और वितर्क के साथ मूल्यांकन के नकारात्मक प्रभावों की भी चर्चा की गई है। लेख में परीक्षा के औचित्य को विभिन्न तथ्यों के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक स्तर पर परीक्षा के नये विकल्प के रूप में सतत आन्तरिक मूल्यांकन के आयामों की भी चर्चा की गई है। लेखक की मान्यता है कि कक्षा 1 से 8 तक के छात्रों की आयु में प्रत्येक बच्चे का सतत मूल्यांकन किया जाना चाहिए। कक्षा 5 के स्तर पर बच्चों की वार्षिक परीक्षा में ऐसे प्रश्नपत्र होने चाहिए जिनसे उनके विषय ज्ञान और उनके शुद्ध लेखन का परीक्षण किया जा सके। माध्यमिक स्तर की वार्षिक परीक्षा में बहुविकल्पीय तथा लघु-स्तरीय के साथ विस्तृत उत्तर की अपेक्षा वाले प्रश्न दिए जाने चाहिए।

छठा लेख 'शिक्षक और उसका बहुआयामी व्यक्तित्व' की मान्यता है कि शिक्षक का बहुआयामी व्यक्तित्व बच्चों के बहुमुखी विकास का आधार है। लेखक का मानना है कि छात्र सबसे अधिक अपने शिक्षक से प्रभावित होते हैं इसलिए शिक्षक को न केवल विषय का ज्ञान हो बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण है कि वह छात्रों के समक्ष उच्चकोटि के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करे। आजकल विद्यालय में अलग-अलग समुदाय से छात्र आते हैं जिनकी मान्यताएँ अलग-अलग प्रकार की होती हैं। इनसे प्रभावित बच्चों को उनसे दूर करना कठिन होता है। ऐसी परिस्थितियों का सामना होने पर एक योग्य शिक्षक छात्र के समुदाय से सम्पर्क करना लाभकारी हो सकता है ताकि वह सामुदायिक गतिविधियों को सहज रूप में समझ सके। एक सफल शिक्षक को सामुदायिक संगठनकर्ता की भाँति समुदाय से सम्बन्ध स्थापित कर उसकी व्याख्या, स्पष्टीकरण और अन्तर्दृष्टि विकास आदि के साथ पर्यावरणीय परिशोधन हेतु प्रेरित कर बच्चों को सीमित सोच की परिधि से निकालने का प्रयास करना चाहिए।

सातवाँ लेख 'मानसिक मन्दता : लक्षण तथा निदान' में बताया है कि उन कारणों को ज्ञात करना आवश्यक है जो बालकों की दुख:दायी मानसिक विकृति के लिए उत्तरदायी हैं। मानसिक विकृतियों में विद्यमान दोषों की जानकारी प्राप्त करके सम्यक् उपचारों द्वारा रोग से

मुक्ति सम्भव है। लेखक के मतानुसार किसी रोग के वास्तविक कारण का पता लगाना ही निदान है। लेखक के अनुसार वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता को समग्र एवं सूक्ष्म दृष्टि से सेवार्थी से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन करना चाहिए। इन सूचनाओं के साथ चिकित्सकीय और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का पूर्व विश्लेषण करके मानसिक विकार के कारकों का पता लगना चाहिए। इस प्रकार अध्ययन के आधार पर समस्या की प्रस्तुति, मानसिक मन्दता की प्रकृति तथा विषय की जैविक, दैहिक तथा सामाजिक और पर्यावरणीय कारणों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान करते हुए उपचार की रणनीति को सुनिश्चित करना चाहिए।

आठवाँ लेख 'आधिगमिक दुर्बलता तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षक के कर्तव्य' में डिस्लेक्सिया, डिसग्राफिया, गणितीय अक्षमता तथा ध्यानाभाव एवं अतिसक्रियता विकार आदि ऐसी आधिगमिक दुर्बलताएँ जिससे छात्र का विकास प्रभावित होता है, दी गई हैं। लेखक का मत है कि मानसिक रुग्णता तथा मन्दता के अतिरिक्त विपरीत पारिवारिक परिस्थितियाँ और बुरा पर्यावरणीय परिवेश भी बालक के सीखने की क्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। शिक्षक को इन्हें ज्ञात करके उसका उचित समाधान प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि छात्रों की व्यक्तिगत पत्रावली बनाए तथा उनके व्यवहारों का निरीक्षण करते हुए उनका लेखा-जोखा तैयार करे। शिक्षक को प्रत्येक बच्चे के परिवार, आस-पड़ोस और उसकी दैनिक गतिविधियों का भी लेखन करना चाहिए जिससे उसे उनके विषय में यथेष्ट जानकारी प्राप्त हो सके।

नौवाँ लेख 'पूर्व प्राथमिक शिक्षा : महत्व तथा कार्यान्वयन' के अनुसार पूर्व प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य आनन्द स्थिति को प्रदान करते हुए बच्चों को विद्यालय औपचारिक शिक्षा हेतु तैयार करना है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा के सफल कार्यान्वयन के लिए भौतिक आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था आवश्यक है। सामग्री से युक्त कक्षा कक्ष, दृश्य-श्रव्य साधनों से युक्त पुस्तकालय, शुद्ध पेयजल और शौचालय आदि आधारभूत सुविधाएँ कक्षा में उपलब्ध होनी चाहिए। इसके साथ ही, बच्चों के समग्र विकास हेतु उन्हे उचित समय और व्यवहार प्रदान किया जाना अति महत्वपूर्ण है। इस लेख में बच्चों के शिक्षण हेतु कुछ बिन्दुओं को भी इंगित किया गया है। शिक्षकों को बच्चों को मानसिक समर्थन प्रदान करने वाली तथा उनके दोषों को दूर करने वाली शिक्षण शैली को उपयोग करना चाहिए।

दसवाँ लेख 'पूर्व प्राथमिक शिक्षा तथा आधिगमिक दुर्बलता' के अनुसार शैक्षिक अवस्था में अधिगम पिछड़ेपन के कई कारण हो सकते हैं। परिवेशजन्य से वाचन के शिकार बच्चों को भी कक्षीय कार्य में पिछड़ा होने के आधार पर मानसिक मन्द मान लिया जाता है इसलिए प्रत्येक बच्चे की समझ और बोधात्मक दुर्बलता का अध्ययन और विश्लेषण करना चाहिए। लेखक के विचार में समस्या के कारणों को आरम्भ में ही समाप्त किया जा सकता है। वास्तव में प्राथमिक स्तर पर अध्यापन करने वाले शिक्षकों का कार्य अत्यन्त संवेदनशील और नितान्त महत्वपूर्ण हैं। उसे स्तरीय भूमिका का निर्वहन करना चाहिए, पहला बच्चों के स्तर पर

बाल मनोवैज्ञानिक के रूप में, द्वितीय अभिभावक तथा समुदाय के लिए परामर्शक के रूप में तथा तीसरा अभिप्रेरक के रूप में बच्चों के अधिगम और सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए।

ग्यारहवाँ लेख - 'सेवारत प्रशिक्षण : आवश्यकता तथा उपादेयता' में अभिमत है कि बोधात्मक तथा पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण शिक्षकों के अद्यतन नवीन ज्ञान की प्राप्ति में सहायक है। प्रशिक्षण से माध्यम से शिक्षकों को नवीन ऊर्जा से ऊर्जान्वित किया जा सकता है। करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान अर्थात् लेखक की मान्यता है कि निरन्तर अभ्यास से जड़ बुद्धि सुजानता को प्राप्त कर लेती है अर्थात् ज्ञानवान हो जाता है। सेवारत प्रशिक्षण में शिक्षक न केवल नवीन विधियों से परिचित होता है बल्कि वह उनका अभ्यास भी करता है। वर्तमान समय के वैश्विक समाज में प्रशिक्षण प्रविधियों को इंटरनेट एवं संचार माध्यमों के द्वारा उपलब्ध कराने की व्यवस्था है जो निरन्तर अद्यतन भी होता रहता है। पुस्तक इस तथ्य को प्रमाणित करती हुई देखती है कि प्रशिक्षण में पारस्परिक प्रत्यक्ष अन्त:क्रिया का अमिट प्रभाव है। लेखक का मानना है कि शिक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है पुनर्बोधात्मक तथा समसामयिक प्रशिक्षण स्थानीय समस्यों को ध्यान मे रख कर दिया जाए। लेखक के अनुसार शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य विचार गोष्ठियों, सम्मेलनों, सेमिनारों और कार्यशालाओं आदि का आयोजन करके सम्पन्न किया जाना चाहिए।

बारहवाँ लेख 'शोध तथा विद्यालयीय शिक्षा' के अनुसार वर्तमान समय में समस्या समाधानार्थ शोध की नवीन प्रवृत्तियाँ उपयोग की जा रही है। क्रियात्मक शोध विद्यालय कक्षा शिक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण तन्त्र है। जब क्षेत्रीय भाषा और घरेलू परिवेश को प्रारम्भिक शिक्षा के लिए अनिवार्य तथा उपादेय माना जा रहा है तो क्रियात्मक शोध पद्धति की महत्ता बढ़ जाती है। लेखक का मत है कि वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में ट्रांसडिसीप्लिनरी शोधों को करने की आवश्यकता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब विविध विशेषज्ञ दूसरे से प्रभावित होते हुए अपने परामर्शों एवं कार्यों में परिवर्तन करने के लिए तत्पर हों। सहयोगात्मक तथा समन्वयात्मक भावों को प्रदर्शित करते हुए सामूहिक रूप से हम की भावना के साथ इस प्रकार के शोधों को किए जाने की आवश्यकता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस लेख में शैक्षिक शोध के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों को चिह्नित किया गया है जिनमें शोध किए जाने की आवश्यकता है, जैसे - विद्यालय शिक्षा में वयोनुरूप पाठ्यक्रम का निर्धारण, क्षेत्रीय और जातीय वंश परम्परागत ज्ञान के सदुपयोग, सामुदायिक संगठन, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यवर्धन, इत्यादि।

इस पुस्तक में बच्चों की पूर्व प्राथमिक शिक्षा हेतु शिक्षकों के कर्तव्य, दायित्व, नीति, पाठ्यक्रम, एवं मन्दित तथा आधिगमिक बच्चों तक की समस्या का निदान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस कृति में लेखक ने सभी प्राय: अंग्रेजी में प्रयुक्त किये जाने वाले शब्दों के अनुवाद करके हिन्दी शब्द प्रयोग किये हैं, साथ ही अन्त में हिन्दी-अंग्रेजी-पर्याय में हिन्दी शब्दों के लिये अंग्रेजी शब्द की सूची दे कर पाठकों के लिये पढ़ना सुलभ कर दिया है। लेखक ने जगह-जगह पर आवश्यकतानुसार विभिन्न सन्दर्भों एवं उद्धरणों से अपने तथ्यों को

सिद्ध करने का प्रयास किया है जो कृति की प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता को बढ़ाते हैं। परम्परागत पाठ्यपुस्तक की तरह यह पुस्तक केवल तथ्यात्मक जानकारी के साथ परीक्षा की तैयारी के लिए नहीं लिखी गई है बल्कि विषय से सम्बन्धित समकालीन विमर्श से परिचित कराते हुए पाठक की मननशीलता को संवर्धित करती है। कुल मिलकर यह पुस्तक भारतीय सन्दर्भों मे प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़े मुद्दों और बहसों को अन्तरानुशासनात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 22, अंक 1, जून 2024, पृ. 224-227)
UGC-CARE (Group-I)

पुस्तक समीक्षा

नीला कॉर्नफ्लॉवर

वीरेन्द्र प्रताप यादव
आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला
ISBN 978-81-19528-92-9

अमित राय*

कहने के लिए वीरेन्द्र प्रताप यादव का यह पहला उपन्यास है नीला कॉर्नफ्लावर, लेकिन पृथ्वी के भविष्य को बचाने की उनकी चिन्ताएँ आखिरी हैं। ये आखिरी चिन्ताएँ ही एकमात्र विकल्प हो सकती हैं, जो उनके उपन्यास में दिखती हैं। नीला कॉर्नफ्लावर विभिन्न संस्कृतियों की टकराहट का उपन्यास है, जिसमें एक ओर 'उपभोग' की संस्कृति है तो दूसरी ओर 'उपयोग' की खूबसूरत आदिवासी संस्कृति। ग्यारह अध्यायों में समेटे गए इस उपन्यास के दस शीर्षक यूरोप की और अमेजन वर्षावनों की मुख्य और सहायक नदियों पर हैं, यह इस मायने में विशेष है कि नदी किनारे बसी संस्कृतियों के मर्म में ही पाक्स (शान्ति) (आखिरी अध्याय का शीर्षक) की तलाश सम्भव हो सकती है। उपन्यास इन नदियों के किनारे बसी आदिवासी संस्कृतियों खासकर 'हीहो' और 'नुआ' जनजाति की संस्कृतियों की सहभागी अवलोकन से शोधपरक साहित्यिक व्याख्या करते हुए मानवशास्त्र और साहित्य के बीच सेतु की तरह है। यह उपन्यास विभिन्न संस्कृतियों का एथनोग्राफिक विवरण उपलब्ध कराता है।

*एसोसिएट प्रोफेसर,महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, क्षेत्रीय केन्द्र कोलकाता
E-mail: raiamit14@gmail.com

उपन्यास में लेखक की कल्पना का एक राष्ट्र है सौमेट्र, जो कहने के लिए पहाड़ियों की एक सीमा में है लेकिन वे मानते हैं कि 'नक्शा एक पिंजरा होता है, जिसमें सभी राष्ट्र कैद हैं'। उपन्यास का नायक मार्टिन इसी सौमेट्र के एक गाँव बोलोवा का रहने वाला है जो अपनी प्राकृतिक सुन्दरता और संस्कृति को पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं से होने वाले आक्रमणों को झेलता हुआ अपने अस्तित्व को बचाने की जद्दोजहद में ऐतिहासिक रहा है। मार्टिन शिक्षा से मिलने वाले रोजगार से दुनिया बदलने और उसे खूबसूरत बनाने के सपने को लेकर नीदरलैंड जाता है जहाँ वह मानवशास्त्र के अध्ययन की बारीकियों को समझता है और संस्कृति के विमर्श में हिस्सा बनता है, अपनी ही संस्कृति के परायेपन का एहसास लेकर वह नस्लीय भेदभावों से दो-चार होता है। यह भेदभाव केवल भिन्न रंग, कपड़े या शारीरिक बनावट के आधार पर नहीं होता बल्कि अपने ही देश में मूल निवासियों के साथ के व्यवहार को रेखांकित करता है जो बताता है कि सत्ता के लालच में संस्कृतियों का पतन होता है। यह अपने ही देश के महामानवों की उपेक्षा को रेखांकित करता है। सबसे अभागा वह समाज होता है जो अपने महापुरुषों को उचित सम्मान देने की तमीज नहीं विकसित कर पाता। अध्ययन के बाद क्षेत्र कार्य के दौरान उसे अमेजन के जंगलों में आदिवासी जनजाति हीहो के पास जाने का अवसर मिलता है और वहाँ की संस्कृति से परिचित होता है, लौटकर साम्राज्य की उपभोग की संस्कृति के चलते फिर अपने राष्ट्र के उजाड़ की वीरानी को महसूस करते हुए पुनः उन्हीं जंगलों की ओर ले जाती है जहाँ इस बार उसे नुआ जनजाति पर अध्ययन का मौका इसलिए मिलता है ताकि उस जनजाति के अध्ययन से प्राप्त जानकारी से वहाँ दबे सोने की खानों से अपने लालच को पूरा किया जा सके। लेकिन मार्टिन के 'हीहो' जनजाति के साथ के अनुभव और 'नुआ' जनजाति के साथ के प्रत्यक्ष अनुभव उसे किस तरह विकास के मॉडलों के खोखलेपन का एहसास कराते हैं और किस में उसे शान्ति मिलती है, किस में उसे अपनी सभ्यता का विकल्प मिलता है, इसकी पहचान उसे अपनी पूरी शिक्षा से अर्जित ज्ञान की अज्ञानता का सीमा में ले जाती है जहाँ उसे एहसास होता है कि 'तुम ज्ञान के पीछे पागल हो भाग रहे थे और उसे ही सब कुछ समझ रहे थे, तुम समझ नहीं पाए कि कई बार ज्ञान से जरूरी अज्ञानता होती है'।

उपन्यास अपनी शैली में मुख्यतया प्रकृति और संस्कृति प्रधान है, उपन्यास का मुख्य पात्र केवल मार्टिन है बाकी मुख्य सहायक पात्र लक्ष्मी उसकी क्लासमेट, प्रोफेसर टिम और मिचाऊ नुआ जाति की एक महिला है। ये पात्र भी उसी रूप में आये हैं जिससे नस्लीय बोध की झलक मिल सके या संस्कृति की झलक मिल सके।

जिस तरह फिल्मों में एक एक फ्रेम महत्वपूर्ण होता है उसी तरह उपन्यास में लेखक ने शब्दों से चित्रकारी कर उसमें विभिन्न रंग भरे हैं जो उपन्यास को खास बनाते हैं। लेखक प्रकृति को अपने रंगों से रचता है। नीला कॉर्नफ्लावर का नीला रंग दो सभ्यताओं के बीच रंगों के विभेद को स्पष्ट करता है। पूर्वी सभ्यता में नीला रंग जहाँ 'ज्ञान' का प्रतीक है वहीं पश्चिमी सभ्यता इससे 'अकेलेपन' को अभिव्यक्त करती है। उपन्यास में इन रंगों का बखूबी इस्तेमाल

किया गया है। गाँव के चारों ओर बर्फीली चोटियों वाले पहाड़ हैं। पहाड़ की चोटियाँ सूर्योदय से सूर्यास्त तक लगातार अपना रंग बदलती रहती हैं। चोटियाँ सुबह सिन्दूरी होती हैं तो दिन निकलते-निकलते नीली हो जाती हैं, दोपहर को वे सफेद हो जाती थीं और शाम होते-होते पीली और अन्त में नारंगी होकर ओझल हो जाती हैं और जब भी हवा गाँव में आती थी, एक खास प्रकार का संगीत बजता था। गाँव को पहचानने की दृष्टि यदि मोसेस का तेल है (जिसकी गन्ध हमेशा पसरी रहती थी) तो नीला कॉर्नफ्लावर (फूल) में तो पूरा राष्ट्र समाया हुआ था। मार्टिन को हमेशा प्रकृति के रंग ही समझ आते हैं। लाल रंग का सूरज, लाल चटख रंग की साड़ी, लाल रंग की बिन्दी, काले रंग का स्लीवलेस ब्लाउज, पेंटिंग में नीले रंग का अस्त-व्यस्त व्यक्ति और यहाँ तक कि उसे लक्ष्मी की हरी आँखों में अपनी गहरी काली आँखों से झाँकते हुए समाज और सत्ता को देखने की शक्ति मिलती है और जब कोई रंग नहीं होता तब उसकी क्लासमेट लक्ष्मी कह पाती है कि “तुम दुनिया के किसी भी परिवार की वंशावली तैयार करो, उनके पूर्वजों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी सूची बनाओ, तो पता चलेगा कि वे उस खास देश के मूल नागरिक हैं ही नहीं। मानवता पुरानी है और राष्ट्र एवं नागरिकता नयी अवधारणाएँ हैं”। लक्ष्मी की बाहों का साँवला रंग उसके जिस्म से उतरकर रात में बदल जाता है। यह वाक्य तो बार-बार आता है कि ‘जंगल में चटख रंग समझ लीजिये कि कुदरत द्वारा आगाह किया जा रहा है कि दूर रहिये, इसी में सबकी भलाई है’।

उपन्यास की खूबसूरती रंगों और चित्रों के अलावा ‘हीहो’ और ‘नुआ’ जनजाति के प्रकृति के साथ तादात्म्य के रोचक रीति-रिवाज और तौर-तरीके हैं जो इस उपन्यास को एक खास शक्ल देते हैं। नुआ मान्यता है कि इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु किसी एक की नहीं है। बल्कि उस पर पृथ्वी के सभी जीवों का अधिकार है। आखिर प्रकृति भी तो यही करती है। जंगल का कोई भी पेड़ किसी एक व्यक्ति के लिए फल नहीं देता। सूरज का प्रकाश किसी एक के लिए नहीं होता। बारिश की बूँदें किसी एक के लिए नहीं गिरतीं। इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वह सबका साझा है। जनजातीय जीवन के इस भाव का विस्तार हमें गाँधी में भी दिखाई देता है जब वे कहते हैं कि पृथ्वी के पास इतने संसाधन हैं कि वह सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति तो कर सकती है लेकिन किसी एक के लालच की नहीं।

उपन्यास का एक खास पक्ष अमेजन वर्षावनों की खूबसूरती और उनके रहस्यों को परत-दर-परत खोलता है जो काफी दिलचस्प है, जो बताता है कि हम अपने देशज ज्ञान को कितना कम जानते हैं। मार्टिन की कहानी हमें इस ज्ञान से समृद्ध भी करती है। साथ ही उस वर्षावन में रहने वाले लोगों की हम तथाकथित विकसित समाज के लोगों के बारे में सोच को भी बताती है। नीओ समाज का बूढा शमन मार्टिन से कहता है कि ‘हमें पता है कि बाहरी लोग हमारे बारे में क्या ख्याल रखते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि वे हमें अच्छा नहीं मानते। वे हमसे डरते हैं। उनका हमसे डरना जरूरी है। जिस दिन यह डर समाप्त हो जाएगा, उस दिन यह वर्षावन भी समाप्त हो जाएगा। जिस दिन वर्षावन समाप्त हो जाएगा, उस दिन देवता नाराज हो

जाएँगे और उनके क्रोध से सब मर जाएँगे। यह जो स्वर्ण यहाँ चारों ओर तुम देख रहे हो, वही एक दिन हमारे पतन का कारण बनेगा'।

उपन्यास किसी भौगोलिकी में बँधा हुआ नहीं है। इसे पढ़कर शुरूआत में आपको 'वाइकिंग्स' की शृंखलाओं से लेकर यूनानी मान्यताओं की याद दिलाती है। इसके सफर के साथ यह आदिवासी जीवन के एडवेंचर पर बनी फिल्मों से होकर अभी हाल में अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह की जनजातियों पर आई सीरीज 'काला पानी' से होते हुए अमेजन के वर्षावनों की ओर ले जाकर अपने ज्ञान की सीमाओं के यथार्थ पर लाकर खड़ा करेगी और आपको सभ्यतागत प्रश्नों के साथ छोड़ देती है, जो आपको सोचने पर मजबूर कर देती है कि विकास के असल मायने सभ्यताओं के संरक्षण में हैं। यह मानव जीवन के अस्तित्व के सवाल हैं।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
के स्वामित्व एवं अन्य विवरण के सन्दर्भ में घोषणा

फार्म - 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, 6, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन (म.प्र.) 456010
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया
	क्या भारत के नागरिक है?	:	हाँ
	(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)	:	लागू नही
	पता	:	6, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन (म.प्र.) 456010
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया
	क्या भारत के नागरिक है?	:	हाँ
	(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)	:	लागू नही
	पता	:	6, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन (म.प्र.) 456010
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया
	क्या भारत के नागरिक है?	:	हाँ
	(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)	:	लागू नही
	पता	:	6, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन (म.प्र.) 456010
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हो, तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	निदेशक, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान 6, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन (म.प्र.) 456010

मैं डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गये विवरण सत्य हैं।

डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया
प्रकाशक के हस्ताक्षर

लेखकों के लिए अनुदेश

मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल में समाज विज्ञान से सम्बन्धित सैद्धान्तिक आलेख, अनुभवजन्य शोध आधारित आलेख, टिप्पणियाँ और पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित की जाएँगी। लेखकों से निवेदन है कि अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु प्रेषित करते समय निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखें -

- कृपया अपनी रचना को यूनीकोड फॉन्ट में टंकित कर एमएस-वर्ड फाइल में mpissrhindijournal@gmail.com अथवा mailboxmpissr@gmail.com पर ई-मेल के माध्यम से प्रेषित करें। शोध आलेख की शब्द सीमा 3500 से 5000 के बीच होना चाहिए। शोध आलेख के साथ 100-150 शब्दों में शोध आलेख का सारांश भी अनिवार्य है।
- विशेष परिमाण संख्या जैसे 2 प्रतिशत या 5 किलोमीटर को सूचित करने के अतिरिक्त इकाई अंकों (1-9) को शब्दों में ही लिखें जबकि दहाई एवं उससे अधिक की संख्या को अंकों में लिखें।
- किसी भी वर्तनी के लिए एकरूपता महत्वपूर्ण होती है। सम्पूर्ण रचना में एक ही शब्द को विभिन्न प्रकार से नहीं लिखा जाना चाहिए। इसमें प्रचलन और तकनीकी सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- रचना में उद्धृत वाक्यांशों को दोहरे उद्धरण चिह्न ("...") के मध्य दें। यदि उद्धृत अंश तीन वाक्यों से अधिक का हो तो उसे अलग पैरा में दें। उद्धृत अंश में लेखन की शैली और वर्तनी में कोई भी परिवर्तन अपनी ओर से न करें।
- सभी टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ शोध आलेख के अंत में दिये जाएँ तथा शोध आलेख में यथास्थान उनका आवश्यक रूप से उल्लेख करें। सन्दर्भ सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके न लिखें। सन्दर्भों को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ में हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा का मिश्रण हो तो सन्दर्भ को लिप्यान्तरित कर देवनागरी लिपि में ही लिखें।
- समसामयिक प्रासंगिकता, स्पष्ट एवं तार्किक विश्लेषण, सरल एवं बोधगम्य भाषा, उचित प्रविधि आदि शोध आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकृति के मानदण्ड होंगे। प्राप्त रचनाओं की समीक्षा प्रकाशन से पूर्व विषय विशेषज्ञों द्वारा की जाती है। यदि समीक्षक रचना में संशोधन हेतु अभिमत देते हैं तो रचनाकार को वांछित संशोधन करने होंगे। किसी भी शोध आलेख को स्वीकृत/अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादक का होगा।
- पत्र व्यवहार का पता : सम्पादक, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल, म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, 6, प्रो. रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (म.प्र.)।

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित स्वायत्त शोध संस्थान है। कार्य एवं स्वरूप की दृष्टि से मध्यप्रदेश में यह अपनी तरह का एकमात्र शोध संस्थान है। समाज विज्ञानों में समकालीन अन्तरशास्त्रीय संदृष्टि को बढ़ावा देते हुए समाज विज्ञान मनीषा का सशक्त संवाहक बनना संस्थान का मूल उद्देश्य है।

अपनी संस्थापना से ही यह संस्थान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं विकास की विभिन्न समस्याओं, मुद्दों और प्रक्रिया ओं पर अन्तरशास्त्रीय शोध को संचालित और प्रोत्साहित करते हुए सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत महत्त्व की शोध परियोजनाओं को क्रियान्वित करता है।

संस्थान की शोध गतिविधियाँ मुख्यतः पंचायत राज एवं ग्रामीण विकास, अनुसूचित जाति एवं जनजाति से सम्बन्धित मुद्दे, विकास एवं संस्थापन, पर्यावरण अध्ययन, सामाजिक न्याय, लोकतन्त्र एवं मानवाधिकार, सूचना तकनीकी तथा समाज, शिक्षा एवं बाल अधिकार एवं नवीन आर्थिक नीतियाँ आदि संकेन्द्रण क्षेत्रों पर केन्द्रित हैं।

परिसंवादों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि अकादमिक अनुष्ठानों का आयोजन, समाज विज्ञानों में अनुसन्धानपरक नवोन्मेष एवं नवाचारों का प्रवर्तन, मन्त्रालयों एवं अन्य सामाजिक अभिकरणों को परामर्श एवं शोधपरक सहयोग प्रदान करना संस्थान की अन्य प्रमुख गतिविधियाँ हैं। संस्थान में एक संवर्द्धनशील पुस्तकालय एवं प्रलेखन केन्द्र है जिसमें समाज विज्ञानों पर पुस्तकें, शोध जर्नल्स और प्रलेख उपलब्ध हैं।

संस्थान शोध कार्यों को अवसरिक पत्रों, विनिबन्धों, शोध-पत्रों एवं पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करता है। इसके अतिरिक्त दो षाण्मासिक शोध जर्नल - मध्यप्रदेश जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज़ (अँग्रेजी) एवं मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल (हिन्दी) का प्रकाशन भी संस्थान द्वारा किया जाता है।

यह जर्नल UGC-CARE - Group-I में सूचीबद्ध है

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय में
पं.क्र. MPHIN/2003/10172 द्वारा पंजीकृत

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान के लिए
डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया द्वारा
6, रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश) से
प्रकाशित एवं मुद्रित